मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा



डा० आर० के० वशिष्ठ

भारतीय कला परम्परा के उद्भव एवं विकास में मेवाड क्षेत्र का अपना एक विशिष्ट योगदान रहा है। यहां की भावप्रवण प्रतिमाएं भव्यप्रासाद, विशाल झीले तथा शौर्य एवं पराक्रम के उन्नायक गुहिल शासकों की कला-परम्परा का निरूपण कर लेखक ने इस ग्रंथ में मणि-कांचन योग प्रस्तुत किया है।

कलाओं में प्रवर चित्रकला के चार सहस्र वर्ष पूर्व निर्मित मृद् पात्र तदनन्तर विभिन्न प्रकार के उच्चित्र, आलेखन, शिलोत्कीर्ण रेखांकन, सचित्र-ग्रन्थ एवं लघुचित्र आदि प्रारम्भिक राजस्थानी चित्रकला के मूल स्रोत हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ "मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा" में प्राचीन शिल्प, प्राकृत साहित्य एवं चित्र-पुष्पिकाओं से चित्रों की प्रमाणिकता मूल्यांकित की गई है, जिसमें 1229 ई. के तिथियुक्त उत्कीर्ण रेखांकन यहां के आधार स्तम्भ हैं। लेखक ने ग्रन्थ में यह भी प्रयास किया है कि 16 वीं सदी में निर्मित 'भागवत, गीत-गोविन्द एवं चौरपंचाशिका' के चित्र चावंड में 1605 ई. में चित्रित 'रागमाला' की भांति इसी भूखण्ड की महत्वपूर्ण उपज है।

सचित्र ग्रन्थों एवं लघुचित्रों की स्थानीय विशेषताओं को विभिन्न कला-केन्द्रों के रूप में वर्गीकृत करने का भी इस ग्रन्थ में महत्वपूर्ण प्रयास है। चित्रण के विविध विधि-विधान एवं रंग निर्माण की स्थानीय पद्धतियों के साथ-साथ 50 से अधिक चित्रकारों के कला-व्यक्तित्व को भी इस ग्रन्थ के माध्यम से प्रथम बार उजागर किया जा रहा है।

चित्र-समीक्षा के क्रम में मेवाड़ के कुछ महत्वपूर्ण चित्रों का कलावादी विश्लेषणात्मक अध्ययन निश्चय ही कला शोधार्थियों में एक नवीन दृष्टि का शुभारम्भ करेगा तथा प्राचीन एवं मध्य कालीन भारतीय चित्रकला के शृंखला बद्ध अध्ययन में इस ग्रन्थ का एक विशेष योगदान सिद्ध होगा।

□

मूल्य : तीन सौ रुपये

मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा

[MEWAR KI CHITRANKAN PARAMPARA]

मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा

[राजस्थानी चित्रकला की प्रारम्भिक पृष्ठभूमि]

डा. राधाकृष्ण वशिष्ठ
चित्रकला विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर



यूनिक ट्रेडर्स जयपुर

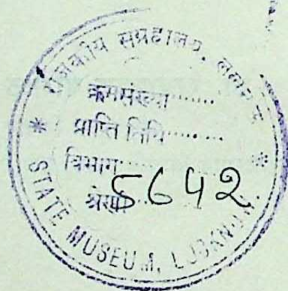
संस्करण	::	1984
कृति	::	मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा
कृतिकार	::	डा. राधाकृष्ण वशिष्ठ
प्रकाशक	::	यूनिक ट्रेडर्स चौड़ा रास्ता, जयपुर
मुद्रक	::	एलोरा प्रिण्टर्स पं. शिवदीनजी का रास्ता, जयपुर
ब्लॉक मुद्रण	::	सुरेन्द्र एण्ड कपूर शाहदरा, देहली

MEWAR KI CHITRANKAN PARAMPARA
by
Dr. RADHAKRISHNA VASHISTHA



शौर्य, पराक्रम एवं सृजन के प्रेरक भगवान श्री एकलिंगजी को

सादर समर्पित...



संस्करण	::	1984
कृति	::	मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा
कृतिकार	::	डा. राधाकृष्ण वशिष्ठ
प्रकाशक	::	यूनिक ट्रेडर्स चौड़ा रास्ता, जयपुर
मुद्रक	::	एलोरा प्रिण्टर्स पं. शिवदीनजी का रास्ता, जयपुर
ब्लॉक मुद्रण	::	सुरेन्द्र एण्ड कपूर शाहदरा, देहली

MEWAR KI CHITRANKAN PARAMPARA
by
Dr. RADHAKRISHNA VASHISTHA



शौर्य, पराक्रम एवं सृजन के प्रेरक भगवान श्री एकलिंगजी को

सादर समर्पित...

Foreword

It gives me great pleasure to introduce to the world of scholars Dr. Radhakrishna Vashistha's Hindi work, "Mewar ki Chitrankan Parampara", which was his Doctoral Thesis. He has revised and re-edited his Thesis and tried to make it upto date.

His attempt, following Dr. Moti Chandra's Mewar Painting, tries to trace the history and growth of Mewar Painting from all available sources. In all such attempts differences of opinions or view points are bound to exist and with every new evidence discovered theories and conclusions often need revision. But as it is, the present attempt of Dr. Vashistha is indeed praiseworthy. He presents to us a history of Mewar Painting, fully documented with illustrations and references.

Dr. Vashistha has traced the history of Mewar Painting upto modern times and has included some contemporary paintings as well. He has also included the available wall-paintings of Mewar. His main approach is that of an artist.

I am confident his work will draw the attention of scholars to the art of Mewar and will stimulate further research and explanation.

Umakant P. Shah
Chairman,
I. A. A. H., Baroda.

Preview

I have had the pleasure of going through the book of Dr. Radhakrishna Vashistha on "Mewar Ki Chitrankan Parampara" Dr. Vashistha teaches in the Painting Department of Rajasthan University, Jaipur, and has obtained a doctoral degree from Agra University in 1975 for the same topic. Since then Dr. Vashishta has been working consciously to improve and expand the material.

As far as I am aware his is the first attempt to work out a continuous story of the Pictorial tradition in Mewar.

He has traced the beginning of the artistic heritage in Mewar from the painted pottery sherds of Ahar done nearly 4000 years ago through the Gupta and Medieval periods including the references to visual arts in literary tents. He has analysed the formation of Mewar style taking off from the Western Indian Jain Painting and its continuous dilectic with the pictorial developments in the Mughal Court. Thus he has contributed to the discussion that has emerged on the formation of Rajasthan school. Dr. Vashistha then proceeds through the developments which took place during eighteenth, nineteenth and early twentieth centuries. Through-out Dr. Vashistha has delegently brought together documentary material of colophons and dated landmarks which give an authenticity to his discussion.

Not only has he discovered new inscriptions or unearthed artists not known before, especially certain artists working at the turn of the century in whose work we notice the meeting of the Indian tradition and the European realism. But the high light of Dr. Vashistha's book is the very perceptive and sensitive analysis he has given of a number of crucial paintings which makes them very alive. More over he has added to the utility of his book by adding information on collections, geneologies of rulers and artists, and the large number of illustrations of dated Paintings with their colophons. This is a unique contribution in Hindi language on a major area of Indian art History.

Ratan Parimoo
Professor & Head
Deptt. of Art History
Faculty of Fine Arts,
M. S. University, Baroda.



शुभकामनाओं सहित

इन्दिरा गांधी

1982

[इस ग्रन्थ का विमोचन भारत की प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा सम्पन्न हुआ]

प्राक्कथन

कला के क्षेत्र में परम्परागत चित्र-शैलियों का शास्त्रीय एवं तकनीकी अध्ययन यथेष्ट महत्व रखता है। प्राकृतिक दृश्यों से परिपूर्ण मेवाड़ भूखण्ड प्राचीन काल से ही शौर्य, पराक्रम एवं सृजनात्मक कलाओं के विकास का प्रमुख केन्द्र रहा है। मेवाड़ के चित्रकार घराने में जन्म लेने व चित्रण के संस्कारों से मैं सदैव यहां के चित्रों व चित्रकारों के तकनीकी पक्ष की ओर आकृष्ट होता रहा हूं। कतिपय विद्वानों ने यद्यपि इस क्षेत्र की चित्रकला से सम्बद्ध रचनाओं में अपने मौलिक विचार प्रस्तुत किये हैं फिर भी यहां के चित्रों व चित्रकारों पर विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता रही है अतः प्रस्तुत ग्रन्थ मेवाड़ की कला परम्परा तक ही सीमित न होकर यहाँ की चित्र कृतियों से सम्बन्धित विविध धारणाओं, अज्ञात चित्रकारों व उनकी कृतियों के विश्लेषणात्मक अध्ययन का उद्देश्य लिये हुये है।

आहड़ के पात्रावशेषों में प्राप्त आलेखन, इस केन्द्र की प्राचीनता का बोध कराते हैं, प्रथम शताब्दी ई. से यहां क्रमशः विविध कलारूपों के आधार मिलते हैं। नान्दसा के यूपस्तम्भों एवं नगरी के अभिलेखों की सौन्दर्यात्मक लिपि तथा सातवीं सदी के शिल्पावशेषों में कला की एक सशक्त परम्परा रही है। इस युग की कला व संस्कृति से संदर्भित कला रूपों व तकनीकों की तत्कालीन प्राकृत ग्रन्थों में भी व्याख्या मिलती है जिनसे उन कला कृतियों की तकनीकी समीक्षा के आधार निर्धारित किये जा सकते हैं।

प्राप्त अभिलेखों एवं पुष्पिकाओं के आधार पर चित्रों का प्रमाणिक क्रम 1229 ई. के शिलोत्कीर्ण रेखांकनों, श्रावक प्रतिक्रमण, सूत्रचूर्णि, कल्पसूत्र, सुपासनाहचरियम, ज्ञानार्णव, रसिकाष्टक, गीतगोविन्द आदि सचित्र ग्रन्थों से मेवाड़ में मध्यकालीन कलाकृतियों की एक व्यापक श्रृंखला बनती है। इसी क्रम में 16वीं सदी के 'भागवत' एवं 'चोरपंचाशिका' समूही चित्रों के विवाद को हल करने का भी प्रयास किया है। इस वर्ग के चित्रों में विविध कला अभिप्रायों एवं शैलीगत रूपों का अध्ययन कर, उन्हें उत्कृष्ट लघु चित्रों के क्रम में विशेष स्थान दिया है, जो इस भूखण्ड की महत्वपूर्ण देन कही जा सकती है।

ग्रन्थ का प्रथम अध्याय, ऐतिहासिक एवं भौगोलिक पृष्ठभूमि के साथ ही सांस्कृतिक एवं शिल्प की पुष्ट परम्परा को स्पष्ट करता है। द्वितीय अध्याय प्रारम्भिक राजस्थानी एवं पश्चिमी भारतीय शैली के तत्कालीन-साहित्यिक संदर्भों एवं पुष्पिकाओं के आधार पर यहां के प्रारम्भिक चित्रों को तिथिक्रम में बांधता है। इसी में भागवत एवं चोरपंचाशिका समूही चित्रों पर भी तर्क प्रस्तुत किये हैं। तृतीय अध्याय मेवाड़ चित्र शैली के क्रमिक विकास की महत्वपूर्ण सामग्री लिये हुये हैं। चतुर्थ अध्याय प्रमुख चित्रण केन्द्रों एवं भित्तिचित्रावशेषों की मूल सामग्री सर्वेक्षण पर आधारित है। पंचम अध्याय विषयवैविध्य में मेवाड़ के सांस्कृतिक पक्ष

को उजागर करता है। षष्ठ अध्याय में चित्रसंयोजन के विश्लेषणात्मक विवेचन के साथ ही मेवाड़ के प्रमुख चित्रों का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। सप्तम अध्याय चित्रण सामग्री के तकनीकी स्वरूप एवं उसके निर्माण पद्धति में स्थानीय चित्रकारों के योगदान पर आधारित है। अष्ठम अध्याय मेवाड़ के प्रमुख चित्रकारों एवं उनके कृतित्व को पुष्पिकाओं सहित कला-जगत को समर्पित है। ग्रन्थ के अन्तिम भाग में मेवाड़ के शासकों का तिथिक्रम एवं अप्रकाशित चित्र-सम्पुटों से चित्रों की तत्कालीन गणना के आधार पर एक सुस्पष्ट विवरण 'परिशिष्ट' के रूप में प्रस्तुत है। फलतः मैं अपने इस ग्रन्थ में मेवाड़ की चित्रकला से सम्बन्धित अद्यावधि प्राप्त सभी महत्वपूर्ण स्रोतों की सामग्री का यथासम्भव अध्ययन प्रस्तुत कर रहा हूं।

ग्रन्थ प्रकाशन के अवसर पर मैं अपने शोधनिदेशक स्व. प्रो. आर. पी. शुक्ला, भू. पू. अध्यक्ष, चित्रकला विभाग, आगरा कालेज एवं प्रो. चन्द्रप्रकाश शर्मा भू. पू. अध्यक्ष, चित्रकला विभाग, धर्म समाज कालेज, अलीगढ़ को सादर नमन करता हूं जिनके संरक्षण में यह शोध कार्य सम्पन्न किया तथा आगरा विश्वविद्यालय से 1975 ई. में पी एच. डी. की उपाधि प्राप्त हुई।

इस कार्य में विविध सर्वेक्षणों के अवसर पर मुझे शताधिक विद्वानों का सहयोग प्राप्त हुआ, उनके प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करता हूं। उनमें सर्व श्री डा० रोबर्ट स्केल्टन, कार्ल खंडालावाला, स्व० डा० सत्यप्रकाश, कु० संग्रामसिंह, रामवल्लभ सोमानी एवं प्रकाश परिमल के नाम उल्लेखनीय हैं।

मैं मेवाड़ के महाराणा साहब श्री भगवतसिंहजी का विशेष आभारी हूं जिन्होंने अपने दुर्लभ एवं अप्रकाशित चित्रों 'ज्योतदान' की महत्वपूर्ण कृतियों को इस ग्रन्थ में प्रथम वार प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान की। निदेशक राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली, पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग, जयपुर तथा प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान शाखा उदयपुर से सामग्री प्राप्ति में वांछित सहयोग एवं शोधग्रन्थ प्रकाशनार्थ विश्वविद्यालय अनुदान आयोग नई दिल्ली का आर्थिक योगदान साभार स्मरणीय रहेगा।

डा. उमाकान्त पी. शाह एवं डा. रतन पारीमू का भी मैं विशेष आभारी हूं जिन्होंने इस ग्रन्थ का पूर्व अध्ययन कर अपने विचारों से लाभान्वित किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ कला के क्षेत्र में होने वाले शोध कार्यों के साथ ही कलाविदों एवं अन्वेक्षकों को नवीन तथ्य पूर्ण सामग्री दे सका तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूंगा।

—राधाकृष्ण वशिष्ठ

विषयसूची

—:o:—

1. विषय-प्रवेश

ऐतिहासिक एवं भौगोलिक पृष्ठभूमि

कला एवं साहित्य पर भौगोलिक स्थिति एवं स्थानीय वातावरण का विशेष प्रभाव पड़ता है। मेवाड़ भूखण्ड अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है। यहां की छोटी-बड़ी नदियां, ऊंचे-नीचे पहाड़, हरे-भरे मैदान, तालाबों तथा पावस की घनघोर घटाओं का अद्‌भूत सौन्दर्य, यहां के चितेरों का ध्यान आकृष्ट कर उन्हें चित्रण के लिए उत्प्रेरित करता रहा है। उनकी तूलिका से निर्मित चित्रावशेषों में ये सभी रूप, अभिप्राय एवं प्रतीक स्वतः अंकित होकर चिरस्थायी हो गये हैं। हरिभद्र सूरि द्वारा चितौड़ में लिखे गये आठवीं सदी के ग्रन्थ **समराइच्चकहा**[1] के कला सन्दर्भों से इस भूखण्ड की ठोस चैत्रिक परम्परा बनती है इस काल से मेवाड़ के कलाकारों की सौन्दर्यानुभूति ने चित्रकला एवं स्थापत्य की अभिवृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

अरावली पर्वत श्रृंखलाओं के मध्य स्थित मेवाड़ भूखण्ड प्राचीनकाल से ही विभिन्न संस्कृतियों का प्रमुख केन्द्र रहा है। 'मेव' अथवा 'मेर' जाति के चिरकाल तक इस क्षेत्र में निवास करने के कारण इसे **मेवाड़** एवं **'मेदपाट'** शब्द से सम्बोधित किया जाता रहा है। इसके प्राचीनतम उल्लेख **'धम्म परिक्खा'** वि. सं. 1044[2], हथूण्डी शिलालेख वि. सं 1053[3], **जम्मु सामी चरियु'** वि. सं. 1076 आदि में मिलते हैं। अतः उक्त दोनों शब्द 10वीं सदी से प्रचलित रहे हैं।[4]

मेवाड़ राजस्थान के दक्षिण भाग में $23^{0}\ 49'$,$25^{0}\ 28'$ उत्तरी अक्षांश और $73^{0}\ 1'$ एवं $75^{0}\ 49'$ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। इस भू-खण्ड को पश्चिम में अरावली पर्वत श्रृंखलायें मारवाड़ से अलग करती हैं। दक्षिण में छप्पन एवं बांगड़ प्रदेश सीमा बनाता है, उत्तर में प्राकृतिक सीमा निर्धारित नहीं होने से सीमायें प्रायः घटती-बढ़ती रही हैं। पूर्व में हाड़ौती व मालवा स्थित है।

---

1. हर्मन जेकोबीसम्पादित—हरिभद्र सूरिकृत समराइच्चकहा बं.ए.सो. कलकत्ता, 1926 ई. पंक्ति 5 से 8 पृष्ठ 608।
   अहतं दट्ठूण पडं पीइभरिज्जयन्तलोयणजुएण।
   भणियं गुणचन्देणं अहो कलालवगुणो तुज्भं॥
   जई एस कलाए लवो तां संम्पूणा उ करिसी होई।
   सुन्दर असंभवो च्चिय अन्नोवरं चित्तायम्मस्स ॥
2. 'इह मेवाड़ देसे जण संकुले सिरिउच्जपुर निग्गय धक्कड कुले' 'धम्म परिक्खा' - महावीर भवन, जयपुर में सुरक्षित।
3. एपिग्राफिआ इण्डिका, भाग 10, पृष्ठ 10।
4. रा. व. सोमानी—हिस्ट्री ऑफ मेवाड़, जयपुर 1976 पृष्ठ 1-2।

यह क्षेत्र आज चितौड़, उदयपुर एवं भीलवाड़ा जिलों में वर्गीकृत है। इसके अतिरिक्त हमारा अध्ययन क्षेत्र मुख्यतः भूतपूर्व 'मेवाड़ राज्य' से है जो सन् 1948 ई. में राजस्थान में विलय हुआ था, साथ ही मेवाड़ की प्राचीन विस्तृत सीमाओं को भी मानचित्र में यथास्थान महत्व दिया गया है। इस क्षेत्र में विकसित स्थानीय चित्र शैली को **मेवाड़ी चित्रकला** नाम से सम्बोधित करना,[1] उपयुक्त है।

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

राजस्थान का यह भूखण्ड आदि मानव का क्रीड़ास्थल रहा है। चितौड़ क्षेत्र से प्राप्त **पाषाणयुगीन** उपकरण लगभग एक लाख वर्ष पूर्व स्थित मानव की प्राचीनता के द्योतक हैं।[2] कालान्तर में नगरीय सभ्यता का विकास एवं नगरों में चित्रकला की परम्परा हमें ताम्र पाषाण कालीन (चालकोलिथिक) संस्कृति में सिन्धु सभ्यता के उत्खनन से प्राप्त मृद्-भाण्ड की भाँति आहड़ एवं गिलूण्ड के पुरातात्विक उत्खननों से महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुई है जो भारतीय पुरातत्व की महत्वपूर्ण निधि है।[3] यहां से उपलब्ध काले व लाल मृद्-भाण्डों के अवशेष चित्राँकन एवं अलंकरण की परम्परा के महत्वपूर्ण प्रमाण हैं, जो लगभग 1800 ई. पूर्व के हैं। इन पर **बिच्छू या मानवाकृति** की लयबद्ध रेखायें तथा ज्यामितीय अंकन हैं, जिससे यह कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र के आदिकालीन मानव का कलाओं से भरपूर लगाव रहा है। **फलक सं. 1 व 2)**। इस भू-भाग के चितौड़गढ़ क्षेत्रीय पर्वत मालाओं में पिंड ग्राम (बड़ी सादड़ी) चितौड़िया मगरी, फिनोदरा एवं मोरवन में पुरातत्व की महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुई है किन्तु उनमें चित्रित शिलाश्रयों की खोज अभी भी अपूर्ण है, हाड़ौती के निकटवर्ती क्षेत्रों से प्राप्त चित्रित फलकों एवं शिलाचित्रों की भांति मेवाड़ में भी गुहा चित्र मिलने की सम्भावना की जा सकती है। उक्त आहड़ के चित्रित पात्र मेवाड़ भूखण्ड में प्राचीनतम चित्रण एवं आलेखन की सामग्री प्रस्तुत करते हैं जिससे उस काल की कला पद्धति का आभास हो जाता है।

चित्तौड़गढ़ के समीप–'नगरी'[4] 'आंवलेश्वर' (प्रतापगढ़) से प्राप्त दूसरी शताब्दी ईस्वी पूर्व के अभिलेख यह सिद्ध करते हैं कि यह क्षेत्र भागवत की वैष्णव परम्परा का प्रमुख केन्द्र रहा है। नगरी से प्राप्त प्राचीनतम विष्णु मन्दिर के अवशेष एवं आंवलेश्वर में विद्यमान भागवत स्तम्भ इस भूमि की धार्मिक कला परम्पराओं के परिचायक हैं। नान्दसा के सं. 282 के यूप स्तम्भों से सुविदित हो चुका है कि यह वैदिक परम्परा का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था।[5] ये स्तम्भ प्रस्तर कला के सुन्दर नमूने हैं। नगरी से प्राप्त वि. सं. 481 के अभिलेख[6] से स्पष्ट है कि नगरी में भागवत् महापुरुष (विष्णु) के चरण चिह्नों की पूजा प्रचलित थी, जिसके प्रमाण मझमिका के कई गुप्त-कालीन मन्दिरों व मूर्तियों के ध्वंसावशेषों में विद्यमान हैं। उक्त विष्णु मन्दिर सत्य, सूर्य, श्रीगन्ध और दास बन्धुओं ने बनाया था। इसमें पकाई हुई मिट्टी से निर्मित बतख एवं पक्षियों के प्रतिरूप तत्कालीन कला के पुष्ट प्रमाण हैं (चित्रफलक सं. 3)।

शिल्पावशेष

गुप्तोत्तर युग में इस क्षेत्र के अमझेंरा, तनेसर, जगत, वेदला आदि स्थानों से प्राप्त कोमल पत्थर में निर्मित मूर्तियां अपने कला सौष्ठव एवं सजीवता से गुप्तकालीन कला की स्मृति को बरबस सजग कर देती है। बसंतगढ़ का खीमेल माता मन्दिर 625 ई. तथा यहां से प्राप्त विक्रम सं. 744 की धातु प्रतिमायें शिल्पी शिवनाग द्वारा निर्मित हैं। ये प्रतिमायें इस क्षेत्र की सांस्कृतिक

---

1. डा. गोपीनाथ शर्मा—उत्तर भारती आगरा, अक्टोबर 1959 वोल्यूम VI नं. पृ. 60।
2. वी. एन. मिश्रा—प्री एण्ड प्रोटो हिस्ट्री आफ दी बैड़चवेसिन साउथ राजस्थान, पूना (1960), पृष्ठ 22।
   डा. एच. डी. संकालिया—एक्सकेवेशन एट आहड़, पूना पृष्ठ 252।
3. डा. एच. डी. संकालिया—एक्सकेवेशन एट आहड़ पृष्ठ 1।
   रत्नचन्द्र अग्रवाल—शोध पत्रिका-वर्ष 12 अंक 1 पृष्ठ 30
4. एपिग्राफिआ इण्डिका, भाग 17, पृष्ठ 198–199।
5. एपिग्राफिआ इण्डिका, भाग 27, पृष्ठ 252।
6. वरदा (बिसाऊ) भाग 5, अंक 3 पृ. 2–3, श्रीरत्नचंद्र अग्रवाल द्वारा सम्पादित-(नगरी का लेख)—
   "जयति भगवान्विष्णु-कृतेषु चतुर्षु वर्षशतेष्वेकाशीत्युत्तरेष्वस्यां मालवपूर्वायां (400) 81 कार्तिक शुक्ल-पञ्चाम्यामास्यां भगवान्महापुरुषपादाभ्यां प्रासादः हितः सत्यशूरेण स्रुगन्धेन दासेन भातृभिरेभिर्ध्वनीश्वरैर्जय सुत्पुत्रै विष्णुचर पौत्रै वृद्धि बौद्-प्रपौत्रैर्वामूप्रसूतेः पुण्य यशो'।

कला परम्परा की पुष्टि करती हैं।[1] बसन्तगढ़ मेवाड़ की पश्चिमी सीमा के निकट भोमट क्षेत्र से लगा हुआ है। सामोली शिलालेख (सं. 703) एवं बसन्तगढ़ से प्राप्त वर्मलात का शिलालेख (सं. 682) समानता लिये ब्राह्मी लिपि में है।[2] बसन्तगढ़ उस काल में कला का केन्द्र था। यहां से प्राप्त ब्रह्मा की मूर्ति तथा अन्य शिल्पावशेषों के उल्लेखानुसार इनके निर्माता वशिष्ठ गोत्री शिल्पी थे[3] तथा सातवीं सदी में यह एक उन्नत नगर था।[4] जैन धातु प्रतिमायें भी इसी परम्परा की कड़ी हैं। पूर्व मध्यकाल में लगभग सातवीं शताब्दी में गुहिल राजवंश के उद्भव के साथ इस भू-भाग ने कला के क्षेत्र में जो अपूर्व योगदान दिया है, वह भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय है। तत्पश्चात् नागदा के शिल्पावशेषों में यही सांस्कृतिक परम्परा देखी जा सकती है। मेवाड़ नरेशों के आराध्य देव शिव पार्वती भगवान एकलिंगजी रहे हैं, परिणामस्वरूप समूचे मेदपाट देश में शिव शक्ति के मन्दिरों का जाल बिछ गया। छोटी सादड़ी (भंवर माता), कल्याणपुर, एकलिंगजी, डबोक, घौड़, चित्तौड़, आहड़, जहाजपुर, ऊनवास, बाडोली आदि उस गौरवपूर्ण कला परम्परा के महत्वपूर्ण केन्द्र हैं जहां के मन्दिर और उनमें अलंकृत मूर्तियां समुन्नत कला के प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। इस युग की कलात्मक विशेषताओं में धार्मिक सहिष्णुता सर्वत्र मिलती है। यही कारण है कि 'कालिका माता' मन्दिर, नादेश्मा का सूर्य मन्दिर, नागदा, आहड़, ईसवाल एवं कठडावण में विष्णु मन्दिरों के निर्माण के साथ ही आहड़ व करेड़ा में जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ।[5] इसी समृद्ध कला-परम्परा की पृष्ठभूमि में चित्रकला के उद्भव एवं विकास की मेवाड़ भूखण्ड में अनुकूल परिस्थितियां बन गई।

गुहिलवंशी शासक

गुहिल शासकों में सर्वप्रथम शिलादित्य के राज्याश्रय में शृंगधर का उल्लेख मिला है।[6] शिलादित्य के राज्यकाल में 'अरण्य वासिनी देवी' का मन्दिर बना।[7] शिलादित्य के पुत्र 'अपराजित' ने कुण्डा ग्राम के शिलालेख सं. 718 (661 ई) में भी सौन्दर्य की उत्कृष्ट कल्पना की है,[8] जिनसे स्पष्ट होता है कि मेवाड़ के प्रारम्भिक गुहिल शासक कलाप्रेमी थे। इन्होंने आहड़, नागदा, एकलिंगजी, सामोली, कल्याणपुर आदि क्षेत्रों में अपने राज्य का विस्तार किया, जहां शिल्प कला के अच्छे प्रमाण आज भी विद्यमान हैं। गुहिल शासकों में बप्पा रावल उल्लेखनीय रहे हैं। उन्होंने शैव धर्म को अपनाया था। अरब आक्रमण के बाद उत्तरी भारत में जब प्रतिहारों का उदय हुआ था, तब चित्तौड़ और पूर्वी मेवाड़ का भाग प्रतिहार साम्राज्य का भाग बन गया था। प्रतिहारों के पतन के पश्चात् जिन राजपूत राज्यों का उदय हुआ, उनमें गुहिलोत, सोलंकी, परमार, चौहान आदि मुख्य थे। इन राजाओं ने कला के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण योग दिया। मेवाड़ का राजा अल्लट (951-953 ई.) एक उल्लेखनीय शासक था।[9] जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, जगत गांव का प्रसिद्ध मन्दिर, (नागदा) सास-बहू तथा आहड़ का विष्णु मन्दिर इसी समय की महत्वपूर्ण शिल्पकृतियां हैं, जो मेवाड़ की कला परम्परा को उजागर

---

1. संवत 744
   साक्षात्पितामहेनेव सर्वरूप विधायिना।
   शिल्पिना शिव नागेन कृत मेतज्जिनद्वयं॥
   उमाकान्त पी. शाह, ललित कला, (अप्रेल 55 मार्च 1956 ई.) ललितकला अकादमी, दिल्ली भाग 1, 2 पृष्ठ 55
2. एपिग्राफिआ इण्डिका भाग 9 पृष्ठ 12।
3. गजेटियर ऑफ इण्डिया राजस्थान सिरोही पृष्ठ 443।
4. डा० के० सी० जैन–एनशिएन्ट सिटीज एण्ड टाउन्स ऑफ राजस्थान पृष्ठ 164।
5. श्री विजय शंकर श्रीवास्तव–एनशिएन्ट टेम्पल्स ऑफ मेवाड़, रिसर्चर जयपुर भाग 2, वर्ष 1962-63 पृष्ठ 39-53 मन्दिर निर्माता के रूप में: महाराणा कुम्भा, राजस्थान भारती, बीकानेर भाग 8, अंक 1-2 मार्च 1963 पृष्ठ 35-59।
6. रा० व० सोमानी–हिस्ट्री आफ मेवाड़, पृष्ठ 38।
7. एपिग्राफिआ इण्डिका बी XX P 99, उदयपुर राज्य का इतिहास भाग 1 पृष्ठ 98।
8. एपिग्राफिआ इण्डिका भाग 4 पृ. 31।
9. रा० व० सोमानी–हिस्ट्री आफ मेवाड़, पृष्ठ 52-53।

करती हैं। एकलिंग मन्दिर में स्थित लकुलीश मन्दिर में 'सरस्वती की प्रतिमा' 10वीं शताब्दी की एक महत्वपूर्ण कलाकृति है। परमार शासकों का चित्तौड़ और पूर्वी मेवाड़ पर अधिकार रहा। भोज ने चित्तौड़ में 'त्रिभुवन नारायण[1] का मन्दिर' बनवाया। 'नागदा' नगर पर भी उसका अधिकार था। परमारों के बाद इस क्षेत्र को चालुक्यों ने अधिकृत किया, जिनको गुहिल जैत्रसिंह ने मेवाड़ से निकाला।[2] उसके राज्य काल में मेवाड़ की बड़ी उन्नति हुई। सुल्तान अल्तमश द्वारा नागदा पर आक्रमण कर इसे तोड़ने के कारण उसे अपनी राजधानी चित्तौड़ ले जानी पड़ी। मेवाड़ की स्थायी राजधानी चित्तौड़ बनी।

गुहिल जैत्रसिंह के पश्चात् उनके पुत्र तेजसिंह का राज्यकाल (1255-1263 ई०) मेवाड़ में शान्ति एवं समृद्धि का काल था। इस समय में कई सचित्र जैन-ग्रन्थों का निर्माण हुआ, जो मेवाड़ की चित्रकला के आरम्भिक स्रोत हैं। इनमें विक्रम सम्वत् 1317 (1260 ई०) में लिखित **'श्रावक प्रतिक्रमण सुत्रचूर्णि'** नामक ताड़पत्रीय सचित्र ग्रन्थ चित्रकला कार्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। गुहिल तेजसिंह के राजमंत्री समुद्धर के परिवार ने भी इस कार्य में योगदान दिया।[3] यह सचित्र ग्रन्थ (चित्र सं. 8) म्यूजियम ऑफ फाइन आर्टस, बोस्टन संयुक्त राज्य अमेरिका में सुरक्षित है। इस ग्रन्थ से ही मेवाड़ नरेशों के चित्रण कार्य के साथ सन्दर्भ मिलने लगते हैं।

चित्तौड़ में अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के कारण भयंकर बर्बादी हुई। सैकड़ों मन्दिर तोड़ दिये गये। हमीर के राज्य ग्रहण के बाद मेवाड़ में पुनः निर्माण कार्य प्रारम्भ हुये। मेवाड़ के शासक अब विशेष सम्पन्न थे। मालवा और गुजरात के सुल्तानों के उद्भव के साथ-साथ मेवाड़ के शासक भी उदीयमान हुए। इन तीनों राज्यों के मध्य शक्ति संतुलन बना रहा। महाराणा हमीर, खेता, लाखा और मोकल तक ने केवल सांस्कृतिक चेतना का विकास, मन्दिरों का निर्माण, साहित्य सृजन आदि महत्त्वपूर्ण कार्य ही नहीं किए, बल्कि मेवाड़ राज्य की सीमायें भी बढ़ाई गई। क्षेत्रसिंह (खेता) (1366-1362 ई.) के राज्य काल में गोगुन्दा का विष्णु मन्दिर (वि. सं. 1423)[4] निर्मित हुआ। लाखा ने गोडवाड़ को जीतकर मेवाड़ में मिलाया। देलवाड़ा एक व्यापारिक नगर के रूप में विकसित हुआ, जहां कई उल्लेखनीय जैन श्रेष्ठी रहते थे, इनमें रामदेव परिवार विशेष उल्लेखनीय था। वि. सं. 1480 में सुपासनाह चरियं यहीं चित्रित किया गया।

महाराणा कुम्भा (1433-1468 ई) का राज्य मेवाड़ के इतिहास में कला का स्वर्ण युग कहा जाता है। इस काल में मेवाड़ शक्तिशाली साम्राज्य के रूप में विकसित हुआ।[5] इन्होंने मंडोर, गांगरोण, बूंदी, नागौर, खाटू, चाटसू, जानागढ़, रणथम्भौर आदि को जीता। कई महत्वपूर्ण स्मारक उदाहरणार्थ राणकपुर मन्दिर, कुंभलगढ़ दुर्ग, कीर्तिस्तम्भ आदि का निर्माण कराया। साहित्य के क्षेत्र में भी यह काल निःसन्देह किसी प्रकार कम नहीं था। चित्रकला के क्षेत्र में भी कई नये प्रयोग किये गये। स्वयं महाराणा कुम्भा ने गीत गोविन्द की टीकायें लिखी व सचित्र ग्रंथ निर्मित हुए। कुम्भा के पुत्र महाराणा रायमल (1473-1509 ई.) को भी राजस्थान के प्रायः सभी राजपूत शासक अपना अगुआ मानते थे। अतः इस काल में भी कला एवं संस्कृति में मेवाड़ अपने आदर्श प्रस्तुत करने में पीछे नहीं रहा। महाराणा की बहिन रमाबाई का निवास स्थल 'जावर' रहा, जहां उस काल में

1. रा० ब० सोमानी–हिस्ट्री ऑफ मेवाड़ पृ० 60।
2. उक्त पृष्ठ 81।
3. उक्त पृष्ठ 88-89।
4. शोधपत्रिका वर्ष 6 अंक 3 पृष्ठ 54।
5. रा० ब० सोमानी–महाराणा कुम्भा पृष्ठ 59-106।

कई शिल्पकृतियां व चित्र बने। रमाबाई का एक शिलालेख वि. सं. 1554 (1434 ई.) का भी प्राप्त हुआ, जिसका सम्पादन श्री रत्न चन्द्र अग्रवाल ने किया।[1]

महाराणा सांगा का राज्यकाल (1509-1528) साहस व वीरता के लिये प्रसिद्ध रहा है। उन्होंने ग्वालियर, धौलपुर एवं बयाना प्रदेश को हस्तगत कर लिया था तथा इनकी महत्वपूर्ण घटनायें मालवा, गुजरात एवं दिल्ली के सुल्तानों को कई बार हराने की हैं। पूर्वी मालवा का भाग भी इनके राज्य में था। राजस्थान के सभी तत्कालीन शासक उनके झण्डे के नीचे खानवा के युद्ध में लड़े। महाराणा सांगा पराक्रमी नीर एवं चतुर राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने मेवाड़ की सीमाओं का विस्तार किया तथा वे एक शक्तिसम्पन्न यशस्वी शासक थे।[2] महाराणा सांगा के बड़े पुत्र भोजराज की पत्नी मीराबाई[3] (1516–1604 ई.) ने अपनी सरस पदावली से हिन्दी साहित्य में कृष्ण भक्ति की अनूठी धारा प्रवाहित की तथा समाज में भागवत और गीतगोविंद की वैष्णव हिन्दू परम्परा के प्रति प्रगाढ़ आस्था रही है।

सांगा का उत्तराधिकारी रतनसिंह (1628–1531 ई.) बलवान शासक था, किन्तु इसके भाई कमजोर थे। इसी समय चित्तौड़ पर भयंकर आक्रमण हुये जिन्हें दूसरा और तीसरा शाका कहा जाता है। दूसरे शाके में बहादुरशाह का आक्रमण हुआ था, जिसने चित्तौड़ दुर्ग को जीतकर कई मन्दिरों का ध्वंस किया, किन्तु वह अधिक समय तक इसे अपने अधिकार में नहीं रख सका। इसके बाद तीसरे शाके में जो भयंकर विनाश हुआ वह अवर्णनीय है। अकबर ने सैकड़ों व्यक्तियों को मौत के घाट उतारा,[4] भवनों को नष्ट किया, जिससे कला सामग्री भी प्रचुर मात्रा में नष्ट हो गई। महाराणा उदयसिंह ने पश्चिमी पहाड़ियों में आहड़ के समीप उदयपुर, मेवाड़ की नई राजधानी बनाई व प्रताप ने आजादी की बागडोर सम्भाली। उसने वर्षों तक युद्ध किया और कई बार सफलता और असफलतायें प्राप्त कीं। उदयपुर के दक्षिण में चावण्ड को मेवाड़ की राजधानी बनाई तथा सीमित साधनों से मुगल बादशाह अकबर से निरन्तर संघर्ष करते रहे। इस समय भामाशाह और ताराचन्द दो उल्लेखनीय श्रेष्ठी हुये। वे लक्षाधिपति थे एवं कलाओं के पोषक भी। ताराचन्द संगीत एवं साहित्य का प्रेमी था। चित्तौड़गढ़ स्थित भामाशाह की हवेली से तथा अन्य सन्दर्भों से भामाशाह का कलाप्रेमी होना प्रमाणित होता है। इस काल में ही आहड़ में ढोला मारू के चित्र बने (1592 ई.) तथा चावण्ड में रागमाला (1605 ई) पर चित्रण कार्य हुआ। निशरदी इस काल के प्रमुख चित्रकार थे।

मेवाड़ एवं मुगलों का संघर्ष बराबर चलता रहा। अमरसिंह ने भी वर्षों तक युद्ध किया किन्तु कालान्तर में उन्हें संधि करने को बाध्य होना पड़ा।[5] मेवाड़ और मुगल संधि (1615 ई.) के बाद में राजकुमार कर्णसिंह जहांगीर के मुगल दरबार में गया। अतएव इनके राज्यकाल (1620-1628 ई.) में सांस्कृतिक गतिविधियों पर मुगल प्रभाव आया, जिससे इस क्षेत्र के चित्रकारों को नवीन प्रेरणाएं प्राप्त हुईं व मुगल कला का कुछ प्रभाव चित्रों में अवश्य दिखाई देने लगा, किन्तु मेवाड़ की परम्परागत विशेषतायें ज्यों की त्यों प्रचलित रहीं।

---

1. इन्डियन हिस्टोरीकल क्वार्टरली (कलकत्ता) दिसम्बर, 1958, पृष्ठ 215-225।
2. कविराज श्यामलदास वीर-विनोद (उदयपुर) पृष्ठ 353-58।
3. रा० व० सोमानी–हिस्ट्री ऑफ मेवाड़ पृ० 190।
4. अब्बुल फजल—अकबरनामा (अंग्रेजी अनुवाद) रॉ० ए० सो० कलकत्ता भाग 2, पृ० 472-5
   जेम्स टाड—एनेल्स एण्ड एन्टिक्यूटीज ऑफ राजस्थान 1, पृ० 200।
5. तुजुक ए जहांगीरी–(अंग्रेजी अनुवाद) भाग 1, पृ० 277।

महाराणा कर्णसिंह और जगतसिंह (1628–1652 ई.) ने मेवाड़ में पुनः प्रासादों के निर्माण का कार्य किया। कई शासकों को जीता और मुगलों से सम्पर्क भी बनाये रखा। भवन निर्माण का कार्य तीव्रगति से चला जिनमें जग मन्दिर एवं जगदीश मन्दिर उल्लेखनीय हैं। कई मूर्तियां, भवन एवं उदयपुर के राज प्रासाद महाराणा कर्णसिंह के समय बनने प्रारम्भ हुये और उनका विस्तार समय-समय पर होता रहा। साथ ही चित्रकला की भी उल्लेखनीय प्रगति हुई। चित्रकार साहबदीन इस काल के उल्लेखनीय चित्रकार रहे हैं।

महाराणा राजसिंह प्रथम के राज्यकाल[1] (1652–1680 ई.) में राजसमंद, सरबत विलास, अम्बा माता मन्दिर आदि बनाये गये। वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य ब्रज भूमि से श्रीनाथजी की प्रतिमाओं को मेवाड़ में उनके राज्यकाल में दि. 5 दिसम्बर 1671 को सुरक्षा हेतु लाये।[2] उस समय बादशाह औरंगजेब का देश में आतंक छाया हुआ था। कोई अन्य राजपूत राजा इन्हें संरक्षण देने को तैयार नहीं था। इस प्रकार की विकट परिस्थितियों में राजसिंह ने इन दिव्य प्रतिमाओं को अपनी भूमि मेवाड़ के सिहाड़ गांव (नाथद्वारा) में 20 फरवरी 1672, को 'पाट' स्थापित कर धर्मनिष्ठ हिन्दू संस्कृति के रक्षक की कीर्ति अर्जित की। विठ्ठलनाथजी की प्रतिमा पहले घसार खमनौर के समीप स्थापित हुई थी, उसे भी बाद में नाथद्वारा में ही स्थापित किया गया। इस काल में कई चित्र सम्पुटों तथा 'सरबत विलास' के भित्ति चित्रो का निर्माण हुआ।

राणा जयसिंह (1680–1698 ई.) अपने पिता की भांति साहसी एवं धर्मनिष्ठ शासक थे। इनके काल में कला व संस्कृति का बहुत अधिक विकास हुआ तथा अनेक चित्रों का निर्माण हुआ। महाराणा अमरसिंह द्वितीय (1698–1710 ई.) ने मुगल सम्राट औरंगजेब से सम्बन्ध बिगाड कर आमेर के राजा जयसिंह और जोधपुर के राजा अजीतसिंह को प्रश्रय देते हुए मेवाड़ की प्रतिष्ठित परम्परा को कायम रखा।

महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय (1710–1734 ई.) ने मुगल सम्राट 'फर्रूखशियर' से अच्छे सम्बन्ध स्थापित किये थे। उदयपुर में सहेलियों की बाड़ी इनके द्वारा निर्मित कराई गई थी। इनके वंशजों ने चिरकाल तक वल्लभ सम्प्रदायी कला एवं कृष्ण चरित्र सम्बन्धित विषय-वस्तु को प्रमुखता दी। इस काल में सूर एवं बिहारी द्वारा रचित पदों पर चित्रकारों ने चित्रों का निर्माण किया, जिनमें चित्रकार कविराज जगन्नाथ का नाम उल्लेखनीय है। चित्रकला सौष्ठव एवं सुरुचि सम्पन्नता की दृष्टि से भी यह काल प्रशंसनीय रहा है।

तत्पश्चात् महाराणा जगतसिंह द्वितीय (1734–1751 ई.), महाराणा प्रतापसिंह द्वितीय (1751–1753 ई.), महाराणा राजसिंह द्वितीय (1753-1760 ई.), महाराणा अरिसिंह (1760–1773 ई.) तथा महाराणा हमीरसिंह (1773–1777 ई) के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके राज्यकाल में मराठों से निरन्तर संघर्ष होते रहे। महाराणा अरिसिंह को रतनसिंह और उनके सहायक सरदारों के विद्रोह का सामना करना पड़ा। मेवाड़ का काफी भाग, जिसमें गोडवाड़ एवं मन्दसौर जिलों का कुछ भाग भी था जो सदा के लिए इससे अलग हो गये। इसी काल में शिकार के चित्र अधिक बने। इस प्रकार मेवाड़ के इतिहास का तृतीय चरण महाराणा हमीर (1777 ई.) तक रहा। मेवाड़ की विभिन्न उपचित्र शैलियों का भी इसी काल में विकास होने लगा।

---

1. महाराणा राजसिंह के कार्यों का राजसमुद्र पर लगे हुए शिला लेख 'राज प्रशस्ति' में विशद वर्णन मिलता है।
2. रा0 व0 सोमानी-हिस्ट्री ऑफ मेवाड़, पृ0 282।

महाराणा भीमसिंह का राज्यकाल (1777–1828 ई.) युद्ध, अशान्ति, तथा लूटमार की घटनाओं से गुजरा, मराठाओं से लगातार संघर्ष करने के कारण मेवाड़ की अधिकांश शक्ति कमजोर हो गई। राज्यकोष में भी कमी आगई और 1818 ई. में अंग्रेजों से सन्धि करनी पड़ी कर्नल टाड का मेवाड़ में आगमन इस काल की एक महत्वपूर्ण घटना रही थी। टॉड लगभग चार वर्ष तक मेवाड़ में रहे तथा इस भूखण्ड की कला एवं संस्कृति का अध्ययन कर, उन्होंने बहुत कुछ लिखा तथा जाते समय उन्हें महाराणा ने कई चित्रकृतियां भी भेंट स्वरूप दी जो आज ब्रिटिश म्यूजियम लन्दन में सुरक्षित हैं। उदयपुर राजप्रासाद के कृष्णा निवास एवं बाफना हवेली के भित्ति चित्रों की रचना इसी काल में हुई जो तत्कालीन कला एवं संस्कृति के अनुपम उदाहरण हैं।

महाराणा जवानसिंह के राज्यकाल (1828–1838 ई.) में कई निर्माण कार्य हुए चित्र कम बने पर वे उत्कृष्ट रूपों में निर्मित हैं। महाराणा सरदारसिंह का राज्यकाल 1838 से 1842 ई. तक ही रहा महाराणा स्वरूपसिंह के शासनकाल 1842–1861 ई. में वित्तीय परिस्थितियों में सुधार आया। कोठारी केसरीसिंह को नियुक्त कर रावली दूकान स्थापित की। ताराचन्द इस युग में विशेष प्रतिभासम्पन्न चित्रकार तथा श्री हेमजी गजधर मुख्य शिल्पी थे, जिन्होंने कई उत्कृष्ट निर्माण कार्य किये। कई विदेशी चित्रकार भी राज्य में आये, उनमें विलियम कारपेन्टर तथा एफ. सी. लेविस उल्लेखनीय हैं जिन्होंने यहां रहकर अपनी चित्रण पद्धति में कार्य किया।[1] चित्रकार ताराचन्द पर भी उनका प्रभाव आये बिना नहीं रहा। महाराणा शम्भूसिंह के शासनकाल (1861–1874 ई) में पाश्चात्य कला का विशेष प्रभाव आया। चित्रकार तारा एवं शिवलाल ने कई चित्र कृतियां तैयार की जो आज भी उदयपुर राजप्रासाद संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

महाराणा सज्जनसिंह का राज्यकाल (1874 से 1884 ई) प्राचीन शिलालेखों एवं तथ्यों के आधार पर हिन्दी, फारसी, और संस्कृत के विद्वानों के सहयोग से कविराजा श्यामलदास ने "वीरविनोद" लिखा। इसी काल में स्वामी दयानन्द उदयपुर में रहे तथा 1882 ई. में "सत्यार्थप्रकाश" ग्रन्थ लिखा। महाराणा फतहसिंह राज्यकाल (1884–1930 ई.) में महारानी विक्टोरिया सिल्वर जुबली समारोह के समय सज्जन निवास बाग चिड़ियाघर, एवं विक्टोरिया हाल का निर्माण कार्य हुआ तथा पाश्चात्य कला शिक्षा की आवश्यकता अनुभव की गई। चित्रकार कुन्दनलाल को बम्बई के जे. जे. स्कूल आफ आर्टस् तथा स्लेड कालेज लन्दन में उच्च शिक्षा हेतु भेजा गया जिससे यहां की कला में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन आये[2] इनसे नाथद्वारा की चित्रकला में एक विशेष चित्रण पद्धति का प्रसार हुआ। उन्हीं के सानिध्य से मेवाड़ में 1901 ई. में राजा रविवर्मा को आमन्त्रित किया जिन्होंने 10′ × 5′ के वृहद केनवास पर महाराणा उदयसिंह तथा महाराणा प्रताप आदि के तैल चित्रों की रचना की जो राजप्रासादों में सुरक्षित हैं।

महाराणा भूपालसिंह का राज्यकाल (1930–1955 ई.) राजनैतिक परिवर्तन का युग रहा उन्होंने कई विद्यालय एवं महाविद्यालयों की व्यवस्था की। इस युग में चित्रकार रघुनाथजी, पन्नालाल छगनलाल, चतरभुज, एवं नरोत्तम शर्मा ने विशेष ख्याति प्राप्त की तथा समसामयिक कलाधारा में चित्रकार नन्दलाल शर्मा ने राष्ट्रीय स्तर पर उल्लेखनीय कार्य किया। महाराणा भूपालसिंहजी का राजस्थान राज्य के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान रहा।

कला व संस्कृति के संवर्धन एवं संरक्षण में वर्तमान महाराणा भगवतसिंहजी (1955 से अब तक) का उल्लेखनीय योगदान रहा है। मेवाड़ फॉउण्डेशन के अन्तर्गत आप कला एवं संस्कृति के प्रसार में प्रति वर्ष विद्वानों को सम्मानित करते रहते हैं।

इस तरह इस भूखण्ड में पिछले डेढ़ हजार वर्षों से कला एवं संस्कृति की एक अक्षुण्ण परम्परा का निर्वाह देखा जा सकता है ☐

---

1. एण्ड्रयू टोप्स फील्ड - पेन्टिग्स फ्राम राजस्थान, मेलबोर्न 1980 पृष्ठ 14।
2. लेखक द्वारा—मज्झमिका–महाराणा भूपाल सिंह जन्म शताब्दी विशेषांक 83-84 उदयपुर पृ. 23–30।

2. प्रारम्भिक राजस्थानी चित्रकला एवं मेवाड़

सातवीं सदी के प्रमुख चित्रकार एवं आचार्य श्रृंगधर का उल्लेख करते हुए तिब्बेतियन इतिहासकार लामा तारानाथ[1] ने दक्षिण-पश्चिमी राजस्थान में प्रचलित कला पद्धति को **"प्राचीन पश्चिमी भारतीय शैली"** नाम से सम्बोधित किया है जहां चित्र एवं मूर्तिकला का विकास अपनी चरम सीमा पर था। श्रृंगधर मरूदेश में राजा शील के राज्याश्रय में कार्य करता था।[2] इस पर विद्वानों की विभिन्न मान्यतायें हैं। कुछ विद्वान उन्हें वल्लभी के शिलादित्य नाम से सम्बोधित करते हैं। मेवाड़ के **सामोली शिलालेख** वि. सं. 703 में शिलादित्य का विवरण मिलता है। इसी पर बसन्तगढ़ उल्लिखित है जहां शिल्पी शिवनाग ने वि.सं. 744 में कई धातु प्रतिमाओं का निर्माण किया। इसी तरह कल्याणपुर, शामलाजी एवं चितौड़गढ़ स्थित कालिका माता मंदिर के शिल्पावशेषों की तक्षण कला से यह प्रमाणित हो जाता है कि मेवाड़ में सातवीं सदी के लगभग कई कुशल शिल्पी विद्यमान थे।[3] अतः यह विश्वास किया जा सकता है कि आचार्य श्रृंगधर इसी क्षेत्र में गुहिल शिलादित्य कालीन पश्चिमी विद्यापीठ में यक्षशैली के प्रधान चित्रकार थे।[4] जिनके चित्रावशेष उपलब्ध नहीं हो पाये हैं पर तत्कालीन शिल्पावशेषों एवं प्राकृत साहित्य के आधार पर उनके कला-कार्यों को अवश्य मूल्यांकित किया जा सकता है।

दक्षिणी पश्चिमी राजस्थान एवं चितौड़गढ़ में लिखे गये 8वीं सदी के प्राचीन प्राकृत ग्रन्थों में चित्रकला की प्रचुर सामग्री मिलती है। हरिभद्रसूरिकृत **'समराइच्चकहा'**, और, उद्योतनसूरि कृत **'कुवलयमालाकहा'** तथा सिद्धर्षि कृत **'उपमितिभव प्रपंच कथा'** आदि उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं। समराइच्चकहा में तत्कालीन चित्रकार 'भूषण एवं चित्रमति' के उल्लेख तथा उनके सृजन में इस क्षेत्र की कला परम्परा का परिचय मिलता है।

---

1. डब्लू.एल. हैली—एक्ट्रेक्ट फ्राम तारानाथ्स हिस्ट्री आफ बुद्धिज्म इन इंडिया, इंडियन एन्टीक्यूटी नं. 4 पृ. 102।
2. डा. मोतीचंद्र—जैन मैनियेचर पेंटिग्स फ्राम वेस्टर्न इंडिया, अहमदाबाद 1949, पृ. 18।
3. म. र. मजमुदार– गुजरात एण्ड इट्स आर्ट हैरिटेज, बम्बई 1968 पृ 80।
   डा. उमाकान्त पी. शाह—स्कल्पचर आफ शामलाजी एण्ड रोडा (बड़ौदा) पृ. 4-6।
4. पर्सीब्राउन—हैरिटेज आफ इण्डिया, इंडियन पेंटिग, बम्बई 1927 पृ. 41।
   रा. व. सोमानी—हिस्ट्री आफ मेवाड़, जयपुर 1976 पृ. 38।
   मुल्कराज आनन्द, एल्बम ओफ इंडियन पेन्टिंग नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली 1975 पृ. 56।

समराइच्चकहा चित्तौड़गढ़ में लिखा गया, उसमें चित्रकला से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण सामग्री मिलती है। इसके दूसरे भव में सिंह कुमार और कुसुमावली के प्रेम-प्रसंग में चित्रकला सम्बन्धी कई शब्दों का उल्लेख है। चित्र बनाने एवं रंगों को रखने हेतु रंग पेटिका **"वण्णिया समुग्गयं"** (वर्णिका समुद्रकं) तथा चित्रपट्ट के लिए **"चित्रवट्टियं"** (चित्रपट्टिका) शब्दों का प्रयोग किया गया है। इसमें राजकुमारी द्वारा हंस और हंसनियों के चित्र बनाकर[1] दर्शनोत्सुक हंसिनी को चित्रित किये जाने का उल्लेख है। इसी भाव को अंकित करते हुए कुसुमावली को दासी मदनलेखा ने एक द्विपदी छंद बनाकर चित्र पर लिख देने[2] तथा उस चित्रपट्ट को राजकुमार के पास दिखाने व ले जाने का प्रसंग है। राजकुमारी को चित्रकला से बड़ा प्रेम था। इसकी पुष्टि में **"चित्राण राइणीए अहं तुह पउत्ति निमित्तं पेसिग रायधूयाए"** जैसे मार्मिक उल्लेख हैं। स्वयं राजकुमार ने हंस का चित्र बनाकर राजकुमारी को प्रेषित करने आदि के संदर्भ इसमें मिलते हैं। चित्तौड़ की शिल्प कृतियों में ऐसी आकृतियों के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। (चित्र सं. 4)

इस ग्रन्थ के आठवें भव में ऐसे ही व्यापक प्रसंग हैं जो शंखपुर के राजा की कन्या रत्नावती से सम्बन्धित हैं। राजकन्या अत्यन्त रूपवती थी. उसके लिये उचित वर देखने के लिए कई व्यक्ति भेजे गये, उनको यह भी आदेश दिया कि वे सुयोग्य व्यक्ति का चित्र बनाकर लावें। इस कार्य के लिये अयोध्या की ओर "भूषण एवं चित्रमति" नाम के चित्रकारों को भेजा गया। उन्होंने राजकुमार गुणचन्द्र को धनुष चलाते हुए देखा। उसका चित्र एक बार देखने पर नहीं बना सके[3] तो राजकुमार के सामने वे स्वयं को चित्रकार बताते हुए पहुँचे। उन्होंने राजकुमारी का एक चित्र भी राजकुमार के सम्मुख प्रस्तुत किया। गुणचन्द्र ने उसको देखकर कहा कि यह चित्र[4] आंखों को सुख देने वाला है। तुम सच्चे अर्थ में चित्रकार हो तभी ऐसा चित्र बना पाये। राजकुमारी के विशाल नेत्र, दाहिने हाथ में रम्य **"सय वत्ता"** अंकित था।[5] चित्र स्वयं अपने मूल रूप को प्रतिध्वनित कर रहा था। राजकुमार ने कहा कि चित्र इसलिए भी सुन्दर बन पड़ा कि राजकुमारी स्वयं सुन्दर हैं। राजकुमार ने दोनों ही चित्रकारों को, चित्र से प्रभावित होकर एक लाख दीनार **"दीणार लक्खो"** पुरस्कार के रूप में दिये। चित्र में रेखान्यास[6] तक राजकुमारी की सुन्दरता के कारण छिप गये। राजकुमार स्वयं भी अच्छा चित्रकार था। अतः उसने तूलिका की सहायता से रंगों का मिश्रण करके अपने भावों के अनुरूप विद्याधर युगल का चित्र बनाया।[7] राजकुमारी के चित्र में भी उसने कुछ पद लिखे। कालान्तर में दोनों का विवाह भी हो गया। इस प्रकार सारे प्रसंग में जो चित्रकला का वर्णन आता है वह पारम्परिक होते हुए भी अपनी स्थानीय विशेषताओं को लिए हुए है। साथ ही मेवाड़ की तत्कालीन चित्रकला से इसका सीधा सम्बन्ध रहा है।

---

1. हरिभद्र सूरि कृत समराइच्चकहा हर्मन जेकोबी द्वारा सम्पादित (कलकत्ता 1926) पृ. 71।
   ता आलिहउ एत्थ सामिणी समाणवरहृसयविउत्तं तद्दंसणू सुयं च रायहसियत्ति। तओ मुणियमयणलेहाभिप्पायाए ईसि विहसिऊण आलिहिया तीए जहो वइट्ठा राय हसिया।
2. मयणलेहाए विय अवत्थासूयगं से लिहियं इमं उवरि, दुवईखण्डं (उक्त पृ० 71)
3. सव्वहा अणुरूवो एस रायधूयाए। किंतु न तीरए एयस्स सपुण्णपडिच्छन्दया लिहणं विसेसओ सइदंसणंमि (उक्त पृष्ठ 606)
4. अहं त दट्ठण पडं पीइभरिज्जयन्तलोयणजुएण
   भणियं गुणचन्देण अहो कलाल व गुणों तुब्भ
   जई एस कलाएं लवोता संपुणा उ केरिसो होई
   सुन्दर असंभवो चिय अओवरं चित्तयम्मस्स॥ (उक्त पृष्ठ 608)
5. ऐसा विसाल नयणा दाहिण कर धरियरम्भ सयवत्ता उक्त पृष्ठ 608
6. एवं विहो सुरूवो रेहानासो दिट्ठोत्ति
   जइ वि य रेहा नासो पत्तं यं होइ सुन्दरो कहवि (उक्त पृ० 608)
7. आलिहिओ कुमारेण सुविहत्तुज्जलेण वर्णयकम्मेण
   अलरिकज्ज माणेहिं गुलियावएहिं अणुरूवाए सहुमरे हाएपयडदंसणेण निन्नुन्नय विभाएणं विसुद्धाए वटठेणाय उचिएणं भूषणंकलावेणं अहिणं बने हुसुयत्तणण परोप्परं हो सुफुल्ल वद्ध दिट्ठो आरूढ़ पेम्प सणेण लङ्घियधओ चियनिवेसो विज्जाहर संघाहुओ त्ति (उक्त 615)

साहित्य में ऐसा ही चित्रकला का विशद वर्णन उद्द्योतन सूरि कृत **कुवलयमालाकहा** में भी मिलता है जो दक्षिणी पश्चिमी राजस्थान का एक प्राचीन प्राकृत ग्रन्थ है। उद्योतन सूरि का हरिभद्र सूरि से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इस ग्रन्थ में चित्रकला की विस्तृत व्याख्या के साथ 778 ई. से पूर्व के निर्मित चित्रों का संदर्भ उल्लेखनीय है। राजस्थानी चित्रकला में इसका विशेष महत्त्व है। एक प्रसंग में कुवलचन्द्र जब कुवलयमाला से विवाह कर अयोध्या लौट रहे थे तो रास्ते में चित्रपट्ट लिये एक मुनि से भेंट हुई जो लाट देश में द्वारकापुरी नगरी के राजा का पुत्र "भाणु" था, उसे चित्र कर्म करने का व्यसन था, **"ममं च चित यम्मे वसण जायं अविय"** इसी तरह वह स्वयं कहता था कि चित्रकर्म रेखा स्थान एवं भाव से युक्त रंगसंयोजन द्वारा संपूर्ण हो तथा चित्रों की परीक्षा करना मैं जानता हूं। ये सन्दर्भ तत्कालीन चित्र समीक्षा के सभी सिद्धान्तों की भूमिका निभाते हैं।

कुवलयमालाकहा में उल्लिखित पांच चित्र इस प्रकार हैं इनमें से संसार चक्र का चित्र एक उवज्झाओ (उपाध्याय) द्वारा तथा शेष चार चित्र भाणु द्वारा निर्मित होने के उल्लेख हैं।

1. संसार चक्र (**संसार चक्कं**)
2. मनुष्यलोक चक्र (**मणुयाणं**)
3. तिर्यचगति के जीवों (**तिरिय-समुहस्य**)
4. अन्यचित्रपट्ट (**अण्णं चित्तयम्मं**)
5. व्यक्ति चित्र (**चितपुत्तलीएया**)

प्रथम चित्र में घोड़े पर आरूढ शिकार करते हुए राजा, जिसमें भागते हुए भयभीत जीव, उन्हें एकत्रित करने वाले लोग, पीड़ायें देते हुए डाकू, लुटे हुए परिग्रही किसान तथा नाक छिदे हुए गले में रस्सी बांधे बैल की करुणाजनक स्थिति का चित्रण है। **दूसरे पट्ट** में मनुष्य लोक जहां प्रेमी-प्रेमिका के स्पर्श सुख, मैथुन मुद्राओं, जन्मोत्सव तथा नाचते गाते व्यक्ति चित्रित थे। इनमें एक युवक युवती के साथ बात करता हुआ तथा युवती लज्जावश पांव के अंगूठे से जमीन कुरेदती हुई, मुस्करा रही है" का प्रसंग बहुत मार्मिक भावों को प्रकट करता है। **तीसरे पट्ट** में मृत्यु लोक की यातनाओं के दृश्यों एवं वीभत्स भावों के संदर्भ हैं। **चतुर्थ पट्ट** में वणिक पुत्रों की कथा, व्यापार, लेन-देन के दैनिक कार्यों तथा जहाज से सामान लाने व ले जाने का चित्रण था। **पंचम पट्ट** में उज्जयिनी की राजकुमारी का हुबहू अंकन **"उज्जेणीए दट्ठूण इमं रूवं तइउच्चिय विलिहियं एत्य"**। व्यक्ति चित्र के सौंदर्य को देखकर[2] राजा कामगजेन्द्र अपने दरबार में बैठे जन समूह को कहने लगे कि "यह सत्य है मनुष्य लोक के राजा, चित्रकार व कवि निश्चय ही नरक गामी होते हैं" क्योंकि पृथ्वी पर जिस वस्तु का अस्तित्व ही नहीं होता उसे ये तीनों दिखाना चाहते हैं तथा चित्रकार चित्र में वास्तविकतावादी भ्रम उत्पन्न कर देते हैं। इस पर चित्रकार बोल उठा कि राजा तो स्वतंत्र होने से वहा (नरक) पर भी जा सकते हैं, किन्तु चित्रकार एवं कवि जैसा देखते हैं सुनते हैं व अनुभव करते हैं वही अंकित करते हैं। अत उन्हें वहां (नरक) जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसमें चित्रकार हेतु **चित्तयरदारओ** शब्द तथा कलात्मक गुणों से चित्रण करने पर चित्रकार की कार्य कुशलता को **चित्तकला जुत्तीओ, चित्तकुसलो, चित्तकलाकुसलो** एवं व्यक्ति चित्रण

---

1. उद्द्योतन सूरि विरचिता–कुवलयमाला डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ द्वारा सम्पादित बम्बई 1958 ई. पृ. 185–233
   ममं च चित्त यम्मे वसण जाय अवियं 11 उक्त पृ. 185
   रेहा-ठाणय भावेंहि सजुय वण्ण–विरयणा सारं।
   जाणामि चित्त यम्मं णंरिदं दट्ठुं पि जाणामि 12 उक्त पृ. 185
   कुमार मए चित्त वडो लिहिओ तं ता पेच्छह
   कि सुन्दरो किं वाणवत्ति भणियं 13 उक्त पृ. 185
   दंसे हि मे चित्त यम्म जेण जाणामि सुन्दरणवत्ति 14 उक्त पृ. 185
2. सयलकला-कलाव—कुसल जण वण्णणिज्जति उक्त पृ. 233

को **चित्तपुत्तलिया** आदि शब्द प्रयुक्त किये हैं । चित्र के चित्रोपम तत्व रेखा रंग एवं लिखावट हेतु रेहा, वर्ण, वत्तिणी-विरयंण तथा **दटठुं** चित्र की समीक्षा हेतु महत्त्वपूर्ण शब्द थे ।[1]

इस प्रकार के साहित्यिक सन्दर्भों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आठवीं सदी से पूर्व ही दक्षिणी पश्चिमी राजस्थान में चित्रकला की अपनी निजी ठोस परम्परा थी । चित्तौड़, वसन्तगढ़ एवं भीनमाल उस काल में कला के महत्त्वपूर्ण केन्द्र थे तथा दक्ष शैली के प्रधान चित्रकार शृंगधर इन्हीं केन्द्रों में थे । इन सम्भावनाओं को उक्त साहित्यिक सन्दर्भों से विशेष वल मिलता है ।

15वीं सदी के साहित्यिक सन्दर्भों में महाराणा कुम्भाकालीन सूत्रधार मण्डन के शिल्प विषयक ग्रन्थों में कला के महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ हैं । सूत्रधार मण्डन द्वारा विरचित **देवतामूर्ति प्रकरण, राजवल्लभ मण्डन, प्रासाद मण्डन, रूप मण्डन** आदि ग्रन्थों में तत्कालीन कला के सैद्धान्तिक सन्दर्भों की महत्त्वपूर्ण सामग्री है ।[2] मण्डन स्वयं चित्रकला के ज्ञाता थे, स्थान-स्थान पर उन्होंने मूर्ति कला के साथ चित्र कर्म एवं मूर्तियों के रंगों का विवरण दिया है जो चित्रकला के सूक्ष्म ज्ञान से सम्बन्धित है । इससे आचार्य मण्डन के एक कुशल चित्रकार होने की भी पुष्टि होती है । **राजवल्लभ मण्डन** में चित्रकला की विस्तृत सामग्री है । महलों की दीवारों पर बने सुन्दर चित्रों के उल्लेख में भयोत्पादक दृश्य महलों में चित्रित न करने के मण्डन ने निर्देश दिये हैं । यही नहीं, महाराणा कुम्भा ने स्वयं जयदेव कृत **"गीत गोविन्द"** की टीका लिखी है तथा **'संगीत राज'** में नाट्य शालाओं के चित्रों का उल्लेख किया है ।[3] इसी काल के ग्रन्थ **'सोम सौभाग्यकाव्य'** में श्रेष्ठियों के भवनों में सुन्दर चित्रों के सन्दर्भ हैं ।[4] यही परम्परा महाराणा रायमल कालीन सूत्रधार मण्डन के ज्येष्ठ पुत्र गोविन्द के ग्रन्थों **उद्धार धोरणी, कलानिधि** तथा **द्वार दीपिका** में हैं जो वि. सं. 1554 के लगभग लिखे गये ।[5] उक्त साहित्यिक सन्दर्भों से स्पष्ट होता है कि मेवाड़ भूखण्ड में चित्रकला व मूर्ति-कला की उत्कृष्ट परम्परा रही है जिसके प्रमाण आज भी चित्तौड़ दुर्ग पर बिखरे कला अवशेषों में सर्वत्र विद्यमान है ।

अपभ्रंश शैली और राजस्थान

राजस्थान में प्रतिहार काल की कई कला कृतियां मिली हैं, इनमें जैसलमेर भण्डार की **ओघ निर्युक्ति वृत्ति** (1060 ई.) उल्लेखनीय है । ये चित्र अजन्ता शैली के बहुत निकट होने के कारण तत्कालीन चित्रकारों के अजन्ता की कला से प्रभावित रहने की बात कही जा सकती है । उमाकान्त पी. शाह ने इसे प्रतिहार कला का आखिरी स्वरूप माना[6] तथा मरू गुर्जर के अन्तर्गत नहीं लिया है । प्रतिहार साम्राज्य के बाद राजस्थान में कई नये राज्य स्थापित हुए । सपाद लक्ष क्षेत्र में चौहानों ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । जिनदत्त सूरि के खरतरगच्छ का विस्तार उसी काल में हुआ । गुजरात में सिद्धराज जयसिंह एवं कुमारपाल प्रभावशाली शासक थे । उनके राज्य में शान्ति और व्यवस्था के कारण विशेष उन्नति हुई । कला का नया स्वरूप विकसित हुआ । जैन हस्तलिखित चित्रों में सवा चश्म चेहरा एवं आंख पृष्ठभूमि में बाहर निकली हुई अंकित है । इन आंखों के काजल की रेखा कानों तक खिंची हुई, नुकीली नाक, आम की गुठली जैसी दाढ़ी, होंठ पतले व मिले हुए, कान लम्बे व छिदे हुए, कंठ में रेखाएं, क्षीण कटि, भारी पांव, पैर नीचे से पतले, केश कन्धों तक झूलते

---

1. डा० प्रेम सुमन जैन—कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन पृ. 304-306
2. डा० बलराम श्रीवास्तव—रूप मण्डन पृ० 14
3. रामवल्लभ सोमानी—महाराणा कुम्भा पृ० 299
4. आत्मीय सोध मपि चित्रकार प्रक्लृप्त
   सचित्र चित्रित जगत्रयय लोक चित्तम्
   स्व खण्ड गर्व हर मण्डप चारू रूप
   पांचालिकातति विमोहित विश्व विश्वम् । सोम सोभाग काव्य पृ० 83 उक्त 299
5. पं० भगवान दास जैन-मण्डन सूत्रधार बिरचित प्रासाद मण्डन पृ० 14
6. उमाकान्त पी. शाह—अगरचन्द नाहटा अभिनन्दन ग्रन्थ भाग 2, पृष्ठ 10 ।

हुए तथा लाल, पीले, नीले चमकीले रंग प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं, जिनसे एक नया शैलीगत स्वरूप बन गया, उसे हम 'अपभ्रंश' या 'पश्चिमी भारत शैली' कहते हैं। इसी शैली का प्रभाव अजन्ता में चित्रित सातवीं सदी के भित्तिचित्रों एवं एलौरा में दिखाई देता है, यहीं से शृंगधर द्वारा प्रवर्तित शैली का प्रसार देखते हैं।[1]

प्रारम्भिक तिथियुक्त चित्रों का क्रमिक विवेचन

मेवाड़ में चित्रकला का प्रामाणिक क्रम 1229 ई. से बनता है, जिनमें उत्कीर्ण रेखांकन एवं सचित्र ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार है:—

1. शिलोत्कीर्ण रेखांकन समिद्धेश्वर महादेव मन्दिर चित्तौड़ वि. सं. 1286 (1229 ई.)।
2. **श्रावक प्रतिक्रमण सूत्रचूर्णि** आघाटपुर वि. सं. 1317 (1260 ई.)।
3. शिलोत्कीर्ण रेखांकन गंगरार वि. सं. 1375–76 (1317–18 ई.)।
4. शिलोत्कीर्ण रेखांकन जहाजपुर वि. सं. 1389 (1325 ई.)।
5. **कल्पसूत्र** सौमेश्वर ग्राम गौडवाड वि. सं. 1475 (1418 ई.)।
6. **सुपासनाह चरियम्**, देलवाड़ा वि. सं. 1480 (1423 ई.)।
7. **ज्ञानार्णव** देलवाड़ा वि. सं. 1485 (1428 ई.)
8. **'रसिकाष्टक'** भीखम द्वारा रचित वि. सं. 1492 (1435 ई.)।
9. **गीत गोविन्द** आख्यायिका, गोगुन्दा वि. सं. 1512 (1455 ई. लगभग)।
10. **गीत गोविन्द** सार जावर वि. सं. 1602 (1545 ई. लगभग)।

चित्तौड़ के समिद्धेश्वर मन्दिर के खम्भों पर शिलालेखों सहित 1229 ई. के उत्कीर्ण[2] रेखांकन प्राप्त हुए हैं, (चित्र सं. 6 एवं 7) इन्हें श्री राम वल्लभ सोमानी एवं पी एल. चक्रवर्ती द्वारा प्रकाश में लाया गया। उनकी एक अपनी विशेपता है। ये चित्र तत्कालीन सूत्रधार शिल्पियों के हैं और उक्त अपभ्रंश शैली में ही बनाये गये हैं। इनसे स्पष्ट है कि ये शिल्पी अपभ्रंश शैली की सभी विधाओं के अच्छे ज्ञाता थे। तत्कालीन चित्रों की भांति इन्होंने एक आंख बाहर निकलते हुए सवा चश्मी चेहरा, वस्त्र लहराते हुए, नुकीली नाक एवं दाढ़ी आदि अपभ्रंश युक्त मेवाड़ शैली के रेखांकन का सृजन किया है, जो मेवाड़ भू खण्ड में कला का प्रामाणिक स्वरूप बनाने में समर्थ हुए। इन शिलोत्कीर्ण चित्रों के ऊपर तिथि युक्त पंक्तियां चित्र की पुष्टि में सहायक हैं।

मेवाड़ भूखण्ड गुजरात की सीमाओं से लगा हुआ है, यहां प्रारम्भ से ही जैन धर्मावलम्बियों के कई केन्द्र रहे हैं। कई जैन मन्दिर बने तथा ग्रन्थ लिखे गये। इन केन्द्रों पर श्वेताम्बर सम्प्रदाय के सचित्र ग्रन्थ मिले हैं। महाराणा जैत्रसिंह के शासन काल में कई ग्रन्थ लिखे गये। इनमें **ओघ निर्युक्ति** वि. सं. 1284 मुख्य है। चितौड़ के एक जैन श्रेष्ठी राल्हा ने मालवा में जाकर **'कर्म विपाक'** वि. सं. 1295 लिखाया। इसकी प्रशस्ति में नलकच्छपुर नाम स्पष्ट है जिसे **नालछा** कहते हैं। चितौड़ में **पाक्षिक वृत्ति** वि. सं. 1309 (1252 ई.) की प्रतिलिपि की गई, जो जैसलमेर में संग्रहीत है इनमें **श्रावक प्रतिक्रमण सूत्रचूर्णि** ही सचित्र है।[3]

इसके चित्रों में मेवाड़ की प्राचीन परम्परा एवं बाद में आने वाली चित्रण विशेषताओं का उचित समावेश है। **'श्रावक प्रतिक्रमण सूत्रचूर्णि'** ग्रन्थ में चित्र के दायें बायें लिपि तथा मध्य भाग में

---

1. डा. मोतीचन्द–जैन मिनिएचर पैन्टिग फ्रोम वैस्टर्न इण्डिया (बम्बई 1949) पृ. 18।
2. (1) सम्वत् 1286 वरीपे श्री समधे सुरद्धेव प्रणमते सुत्र ( ) आल पुत्र माउकी न एता।
   (2) सम्वत् 1286 वर्षे श्रावण सु. 1 रवो श्री समघेसुरदेव नृसव (?) श्रीधर पुत्र सुत. जयतुकः सदा प्रणमति। णोघपत्रिका, वर्ष 25 अंक 1, पृ. 53-54।
3. गो. ही. ओझा-उदयपुर राज्य का इतिहास, ग्रन्थालय अजमेर 1938 पृ. 166-70।

चित्र बने हैं (चित्र सं. 8 देखें)।[1] इसकी पुष्पिका में आलेख चित्रों के साथ ही है। इस ग्रन्थ मे कुल 6 चित्र हैं, जो बोस्टन संग्रहालय अमेरिका में सुरक्षित हैं। इन चित्रों की विशेषताएं तत्कालीन चित्रण-पद्धति तथा परम्परा के अनुसार हैं। नारी चित्रों एवं अलंकरण का इनमें आकर्षक संयोजन है। उक्त शिलोत्कीर्ण एवं सचित्र ग्रन्थ में सवा चश्म चेहरे गरुड़नासिका, परवल वाली आंख, घुमावदार लम्बी उंगलियां, लाल–पीले रंग का प्राचुर्य, गुडीदार जन समुदाय, चोकडीदार अलकंरण का बाहुल्य, चेहरों की जकड़न आदि महत्वपूर्ण हैं (देखें चित्र सं. 8 अ)। इन चित्रों में रंग योजना भी चमकीली है। पीला हरा व लाल रंग का मुख्य प्रयोग मिलता है। रंगों, रेखाओं व स्थान के उचित संयोजन का यह उत्कृष्ट नमूना है, जिसमें गतिपूर्ण रेखाओं व ज्यामितीय सरल रूपों का प्रयोग है। ये संस्कार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में अवतरित होते रहे। साथ ही इन चित्रकारों ने सामाजिक तत्वों, रहन-सहन आदि का अच्छा अंकन किया है, जिस पर साराभाई नवाब ने लिखा है[2] कि तेरहवीं सदी में मेवाड़ की स्त्रियां कैसा पहनावा पहनती थीं यह इन चित्रों में अंकित है। इस पंक्ति से इस महत्वपूर्ण सचित्र ग्रन्थ में सामाजिक वेशभूपा के अंकन की कार्य–कुशलता भली भांति सिद्ध हो जाती है।

गंगरार ग्राम में मिले कुछ शिलोत्कीर्ण रेखा चित्र विक्रम सम्वत् (1375–1376) के हैं।[3] इनमें दिगम्वर साधुओं की तीन आकृतियां है तथा उनके नीचे शिलालेख हैं। इन आकृतियों की अपनी निजी विशेषताएं हैं। ये आकृतियां एक चश्मी नहीं हैं, न ही इनमें अपभ्रंश शैली जैसे वस्त्र है। अत: यह मानना होगा कि यह वहां की स्थानीय शैली के अनुरूप साधुओं की आकृतियां रही होंगी। गंगरार की ये आकृतियां एवं जहाजपुर से विक्रम सम्वत् 1382 की प्राप्त एक आकृति श्री राम वल्लभ सोमानी द्वारा प्रकाश में लाई गई हैं।[4] इस प्रकार 14 वीं सदी के प्रारम्भ से मेवाड़ की चित्राकन परम्परा भली–भांति सिद्ध की जा सकती है।

अलाउद्दीन के आक्रमण के पश्चात् उत्तरी भारत में जो विकास हुआ, उनमें गुजरात व मालवा के नये राज्यों की स्थापना उल्लेखनीय है। जैसा ऊपर उल्लेख किया गया है, मेवाड़ के शासक भी अलाउद्दीन के आक्रमण के बाद अधिक शक्ति सम्पन्न हुए। महाराणा लाखा, मोकल एवं कुम्भा का काल आन्तरिक शान्ति का काल था। इस काल में कई महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुए थे। मेवाड़ की चित्रकला का दूसरा सचित्र ग्रन्थ **कल्पसूत्र** वि. सं. 1475 (1418 ई.) है, जो सोमेश्वर ग्राम गोडवाड में अंकित किया गया। यह ग्रन्थ अनूप सस्कृत लाईब्रेरी, बीकानेर में सुरक्षित है। 79 पत्रों की इस प्रति में 73 पत्रों तक तो कल्पसूत्र एवं कालिकाचार्य कथा 88 श्लोकों की है। इस कथा में 3 चित्र हैं। **कल्पसूत्र** के 16 पृष्ठों पर चित्र हैं। इनमें से पत्रांक 9 और 32 के बोर्डर पर भी लघु चित्र हैं। पत्रांक 26 में दो चित्र हैं। चित्रों की पृष्ठ भूमि लाल हल्दिया, बेंगनी, मूंगे रंग का प्रयोग है तथा ग्रन्थ के अन्त में लिखी पुष्पिका से तत्कालीन कला परम्परा की भी उचित पुष्टि होती है।[5]

---

1. 'संवत् 1317 वर्षे माह सुदि 14 आदित्य दिने श्री मदाघाट दुर्गे महाराजाधिराज परमेश्वर परम् भट्टारक उमापतिवर लब्धप्रौढ प्रताप समलकृत श्री तेजसिंह देव कल्याण विजय राज्ये तत्पादपद्मनाप जीविनी महामात्य श्री समुद्धरे मुद्रा व्यापार परिपथयति श्री मदाघाट वास्तव्य प. रामचन्द्र शिष्येण कमलचन्द्रेण पुस्तिका व्यालेपि''। (श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र चूर्णि बोस्टन संग्रहालय अमेरिका)
2. शोध पत्रिका, भाग 5, अक 3, पृ. 46।
3. शोध पत्रिका, वर्ष 27, अक 4, पृ 41-42।
4. शोध पत्रिका वर्ष 28, अंक 2, पृ. 41-42।
   महा सती 4 सं. पादुका चांपल देवी, मेलण देवी मन्दोदरी, सारंग देवी ठ. श्री क्षेत्र सिघो प्रणम्येति सं. 1382।
6. "संवत् 1475 वर्षे चैत्र सुदि प्रतिपदा तिथौ। निशानाथ दिने श्रीमत मेदपाट देशे सोमेश्वर ग्रामे अश्विनी नक्षत्रे मेष राशि स्थिते चन्द्रे। विषकंभयोगे श्रीमत् चित्रावाल गच्छे श्री वीरचन्द्र सूरि शिष्येण धनसारेण कल्प पुस्तिका आत्मवाचनार्थं लिखापित, लिपिता, वाचनाचार्येण शील सुन्दरेण श्री श्री श्री शुभं भवतु।"
   अगरचन्द नाहटा आकृति रा. ल. अ. जुलाई 1976, वर्ष 11, अक 1, पृ. 11-14।

विदित है कि उस काल में गोडवाड मेवाड़ का ही भाग था, जो महाराणा अरसी सिंह जी (1761–1773 ई.) के राज्य काल में मारवाड़ को दे दिया गया। इसके अन्तिम लेख से स्पष्ट है कि जैसलमेर में जय सुन्दर, शिष्य तिलक रंग को पंचमी तप के उद्यापन में यह प्रति भेंट की गई थी।

मेवाड़ की चित्रकला का तीसरा सचित्र ग्रन्थ महाराणा मोकल के राज्यकाल (1421–1433 ई) का देलवाड़ा में चित्रित **सुपासनाह चरियम्** वि. सं. 1480 है। यह ग्रन्थ सैंतीस चित्रों का एक अनुपम चित्र-सम्पुट है (चित्र सं. 10 एवं 11 देखें) जो ज्ञान–भण्डार पाटण के संग्रहालय में सुरक्षित है।[1] यह ग्रन्थ देलवाड़ा में मुनि हीरानन्द द्वारा अंकित किया गया, मुनि श्री हीरानन्द द्वारा चित्रित यह ग्रन्थ मेवाड़ की चित्रण परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान रखता हैं, जो इससे पूर्व **श्रावक प्रतिक्रमण सूत्रचूर्णि** की कलात्मक विशेषताओं से एक कदम आगे है। इनके द्वारा पृष्ठभूमि का अंकन हींगलू के लाल रंग से किया गया है। स्त्रियों का लहंगा नीला, कंचुकी हरी, ओढ़नी हल्के गुलाबी रग से तथा जैन साधुओं के श्वेत परिधान और पात्र श्याम रंग में है। देलवाड़ा में ही महाराणा मोकल के राज्यकाल का अन्य चौथा सचित्र ग्रन्थ **ज्ञानार्णव** वि. सं. 1485 (1427 ई.)[2] नेमिनाथ मन्दिर में लिखा गया दिगम्बर जैन ग्रन्थ है। यह लालभाई दलपतभाई ज्ञान भण्डार अहमदाबाद में सुरक्षित है।

इस भूखण्ड का पांचवा सचित्र ग्रन्थ **रसिकाष्टक** वि. सं. 1492 है, जो महाराणा कुम्भा के राज्य काल (1433–1438 ई.) का एक उल्लेखनीय ग्रन्थ है। **'रसिकाष्टक'** नामक यह ग्रन्थ भीखम द्वारा अंकित किया गया था जो पुष्पिका में भी स्पष्ट है।[3] इस ग्रन्थ के छः श्रेष्ठ चित्र उपलब्ध हुए हैं जिनमें विभिन्न ऋतुओं तथा पशुओं के गति पूर्ण अंकन है जो तत्कालीन कला परम्परा की अच्छी पुष्टि करते हैं। (चित्र सं. 12) अगरचन्द्र नाहटा सग्रह बीकानेर में सुरक्षित है। महाराणा कुम्भा का काल कला का स्वर्णिम युग था, स्वयं महाराणा कुम्भा ने **संगीत राज** नामक ग्रन्थ लिखा व **संगीत रत्नाकर** और **गीत गोविन्द** की टीका लिखी।[4] इसी काल के अन्य ग्रन्थ, **चंडी शतक, एकालिग महात्म्य** विशेष उल्लेखनीय हैं। **संगीत राज** में रागों के मूर्तिकरण (Personification) का स्पष्टत: उल्लेख है। अतएव रागमाला का प्रणयन उनके काल में हुआ हो तो यह कोई आश्चर्य की बात नही है। तत्कालीन साहित्यिक संदर्भो मे भी चित्रकला के उल्लेख मिलते हैं, इनमें **सौम सौभाग्य** काव्य आदि उल्लेखनीय है कि मेवाड़ के देलवाडा[5] नगर में श्रेष्ठियों के मकानों में कई सुन्दर चित्र बने हुए थे। देलवाड़ा का सम्बन्ध उस काल में मांडू, ईडर, गुजरात के पाटन, अहमदाबाद, दौलतावाद एव जेनपुर आदि से होने के समकालीन साहित्यिक संदर्भ उपलब्ध हैं। जेनपुर से एक विशाल संघ खरतरगच्छ का आया था, जिन्होंने **काव्य सूत्र ग्रन्थ** लिखवाने की भी इच्छा व्यक्त की थी। इन संदर्भो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मेवाड़ में देलवाड़ा का कला व सांस्कृतिक दृष्टि से बड़ा महत्व रहा है। देलवाड़ा से कुछ आलेख्यकार जौनपुर में ग्रंथ लेखन हेतु जाना भी सम्भव है। मॉडू के **स्वर्ण कल्पसूत्र** की प्रशस्ति अनुसार श्रेष्ठी असहर जब मेवाड़ में आया तो महाराणा कुम्भा ने उसे तिलक लगाकर सम्मानित

---

1. मुनि श्री विजय वल्लभ सूरि स्मारक स्मृति ग्रन्थ बम्बई 1956 पृ. 176।
   संवत 1480 वर्षे शाके 1345 प्रवर्तमाने ज्येष्ठ वदि 10 शुक्रे ववकरणे मेदपाट देशे देव कुल वाटके राजाधिराज राणा मोकल विजय राज्ये श्रीमदहृवहृदगच्छे मड्डाहडीय भट्टारक श्री हरिभद्र सूरि परिवार भूषण पं. भाव चन्दस्य शिष्य लेशेन मुनि हीराणंदेन लिलिखेरे।
   साराभाई मणिलाल नवाब अहमदावाद जैन चित्र कल्पद्रुम 1958, पृ. 30।
2. [संवत 1485 वर्षे... निज प्रताप प्रभाव पराकृत तरण तरणी मंडलात—श्री महाराजाधिराज मोकल देव राज्य प्रवर्तमान नां श्री देवकुल वाटके] ला. द. ज्ञा. भ. अहमदावाद।
3. "सम्वत् 1492 वर्षे आषाढ़ सुदि गुरौ श्री मेदपाटे देशे श्री पं. भीकमचन्द रचित चित्र रसिकाष्टक समाप्त श्री कुम्भकर्ण आदेशात्"।
4. पं. भगवानदास जैन—मण्डन सूत्रधार विरचित प्रासाद मण्डन पृ. 13।
5. रामवल्लभ सोमानी-महाराणा कुंभा, पृ. 336।

किया था। इस प्रकार सचित्र ग्रन्थों की प्रतिलिपि का कार्य जैनियों द्वारा विशेष ध्यान देकर कराया गया, किन्तु मेवाड़ में इस काल की कृतियां कम मिली है इसका मुख्य कारण चित्तौड़ में दो बार साकों का होना है। इन साकों में हजारों पुरुष मरे, कई नारियाँ जौहर में कूद पड़ी आक्रमणकारियों ने मन्दिरों, भवनों और ग्रन्थ भण्डारों को आग लगा दी। इनका वर्णन फारसी[1] तवारीखों में स्पष्टतः मिलता है। जिससे बड़ी संख्या में ग्रंथों के नष्ट होने की पुष्टि होती है।

हाल ही में एक प्राचीन सचित्र ग्रन्थ **गीत गोविन्द आख्यायिका** मेवाड़ के गोगुन्दा नामक स्थान में चित्रित मिला है, जिसमें तिथि सांकेतिक है। चित्रों की पुष्पिका[2] में जो भाषा है, वह स्थानीय है, तथा उसमें आये 'गोरत्न' तथा 'रूपचन्द्रो' शब्दों से ये चित्र वि. सं. 1512 (1455 ई.) में चित्रित हुए ज्ञात होते हैं। (देखें चित्र सं 13 अ ब, स, द) उस काल में महाराणा कुम्भा द्वारा कुम्भलगढ़ का निर्माण तथा इस से पूर्व गोगुन्दा विष्णु मन्दिर निर्मित होना आदि इन चित्रों के शैलीगत विकास का सूचक है, ये चित्र सा. नाना एवं मीठा राम के **भागवत पुराण** एवं **चौरपंचाशिका** के चित्रों से पूर्व की चित्रण परम्परा को दर्शाते हैं। चित्र **'शयन'** में **चौरपंचाशिका** एवं चावण्ड के चित्रण अभिप्राय हैं, तो चित्र **लक्ष्मी** में मेवाड़ के 1260 ई. के प्राचीन चित्रों की अंकन पद्धति रही हैं। लक्ष्मी के पाँवों में कमल एवं पानी की तरंगित लहरें, **चौरपंचाशिका** के **कमल कुण्ड** के समीप खड़ी **चम्पावती** के कमल एवं पानी की तरंगित लहरों, चावण्ड की **टोडी रागिनी** चित्र में चित्रित पानी के कमल एवं तरगित लहरो तथा **आर्ष रामायण** के चित्रों की तरंगित रेखाओं में समान रूप से इसी परम्परा का निर्वाह हुआ है। तीसरे चित्र **आलिंगन** में राधा की मुखमुद्रा कपड़ों के पल्ले जैसी विशेषताओं से ये चित्र **सुपासनाह चरियम्** 1423 ई. तथा **चौरपंचाशिका** चित्र समूही चित्रों के मध्य की कड़ी है। कपड़ों के पल्ले आगे झूलते हुये चित्रों की गति को तीव्र करते हैं। चित्रण की इस ठोस परम्परा से **चौरपंचाशिका** के चित्रों का चित्रण इस क्षेत्र में होने न होने के बारे में सभी सन्देह दूर हो जाते हैं। साथ ही 1400 ई. से 1500 ई. के मध्य मेवाड़ में अनवरत चित्रण कार्य होने के प्रमाण मिलते हैं। माधुरी देसाई संग्रह में सुरक्षित **भागवत पुराण** 1500 ई. में इसके शैलीगत आधार वनते हैं तथा स्टुअर्ट केरीवेलस संग्रह अमेरिका में सुरक्षित **युद्धदृश्य** 1520 ई. लगभग[3] किसी राजपूत शासक सम्भवतः महाराणा सांगा कालीन (1509–27 ई.) इब्राहिम लोदी का खातोली युद्ध (1518 ई.) या गागरोन युद्ध (1518–19 ई) से सम्बन्धित हो सकता है (चित्र सं. 14) हाथियों का अंकन इस बात की पुष्टि में सहायक है कि उत्तरी भारत में महाराणा सांगा का प्रभुत्व उसके अनुरूप ही था।

राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में सुरक्षित **गीत गोविन्द सार** जावर में निर्मित एक आकर्षक कृति है। सामोली शिलालेख वि. सं 703 के अनुसार जावर प्राचीन काल से औद्योगिक नगर था। महाराणा कुम्भा की पुत्री रमाबाई के जावर लेख वि. सं 1554 में शिल्पी मण्डन के पुत्र ईश्वर का शिल्प केन्द्र 'कमठाणा' यहीं था। इसी उत्कृष्ठ परम्परा में यह सचित्र ग्रन्थ मिला है जो तिथियुक्त था पर बाद के दो अंक अस्पष्ट है[4] उन्हें यदि 02 पढ़ा जाय तो यह वि. सं. 1602 (1545 ई.) की हो सकती है। पुष्पिका सहित यह 30 पृष्ठों में है प्रत्येक पृष्ठ पर छोटे-छोटे दो या तीन चित्र अंकित हैं जिनमें राधा व कृष्ण की प्रेम क्रीड़ाएं, गायों व गोपियों के साथ वन विचरण, नदी किनारे पेड़-

---

1. रा. व. सोमानी–हिस्ट्री आफ मेवाड़, पृ. 216।
2. "इति श्री गीत गोविन्द आख्यान री पत्राउली समापती करतां म्हारो धन भाग जाणब छे मम दोष न दीखऊं श्री 1008 श्री राजापत राजाधिराज आदेशात् गऊगुंदा मध्ये लिष पं. रमीश ' स: गोरत्नम् रवि चन्द्री मुनि. बार पचैतर उजकी पावै गुणीं जन पठनार्थ" ॥63॥
3. स्टुअर्ट केरीवेल्स–दी फ्लावर फ्रॉम एवरी मेडो (1972 ई) पृ. 23।
4. श्री भगवान गोविन्द री जांकी रा पानां कव राज जय देवजी री गीत गोविन्द री लिषत रो सार रूप छै ॥ ॥ ॥ ॥ मम दोषो न दीयते ॥ इति शुभम् ॥ संवत 16 (?) श्रावण शुक्ला 7 रविवारा ग्राम जाउर मध्ये भक्त जन पठ नाथ ॥ 0 ॥ जो (?) कीरतदास चतराई चरची ॥ 30

पौधों के सरल अंकन, आंख पृष्ठभूमि में बाहर निकलती हुई पानी की तरंगित रेखाएं एवं लिपि आदि **गीत गोविन्द आख्यायिका** के अनुरूप अंकित है। यही नहीं इस ग्रन्थ की चित्रण पद्धति एवं इसी संग्रहालय के **बालगोपाल स्तुति** (1550 ई.) में कोई अधिक अन्तर नहीं है अत इसे मेवाड़ में चित्रित पश्चिमी भारतीय चित्रण पद्धति का अन्तिम सचित्र ग्रन्थ सम्बोधित कर सकते हैं यहीं से कुलहदार एवं चौरपंचाशिका समूह के चित्रों का विकास देखते हैं।

कुलहदार एवं चौरपंचाशिका समूह के चित्र एवं विभिन्न मान्यतायें

मध्यकालीन भारतीय चित्रण पद्धति में कुछ चित्रों को कुलहदार चित्र समूह नाम से वर्गीकृत किया है। सा. नाना व सा. मीठाराम का **भागवत, चौरपंचाशिका** तथा **गीत गोविन्द**, आदि के चित्रों में अनेक पुरुष-आकृतियों की पगड़ी में एक कुला बाहर होना अफगानी प्रभाव युक्त पगड़ी का सूचक है, जो 16वीं सदी में अधिक प्रचलित हुई। स्त्रियों के चित्रण में आकृतियां गोल मुंह अण्डाकार तथा फूले हुए गाल, लम्बी ठुड्डी व नाक तथा ओढ़नी, विशेष प्रकार से सुसज्जित, कान के पास से एक गोल घेरा बनाती है। कहीं-कहीं ओढनी बालों के जूडे के बाहर प्रदर्शित है, जो चित्र संख्या 16 से 26 तक रंग योजनाओं सहित दृष्टव्य है। इन चित्रों को लेकर विद्वानों में भिन्न भिन्न मत है कि ये कृतियां कहां की हैं? इस सम्बन्ध में अनेक विद्वानों द्वारा निर्धारित निम्न मान्यताओं से सिद्ध होता है कि दक्षिणी पश्चिमी राजस्थान में ही इस प्रकार के चित्र उस काल में अधिक बने थे।

1. डब्ल्यू जी० आर्चर की मान्यता है कि मालवा में प्राचीन से प्राचीन चित्र 1500 ई. के आस पास चित्रित हुए मिलते हैं।[1] मालवा राज्य बहादुर शाह द्वारा जीतने के पश्चात् ही गुजरात का भाग बन गया। इसके बाद हुमायूं, शेरशाह आदि के आधीन रह।। बाज बहादुर यहां के उल्लेखनीय शासक थे। इनके राज्य में कई श्रेष्ठ चित्र बने। **लोर चन्दा**[2] आदि का प्रणयन इन्हीं के राज्य में चित्रित होने की सम्भावना करें तो आश्चर्य नहीं। 1580 ई. के बाद अकबर के मालवा विजय पश्चात् **गीत गोविन्द** आदि की रचनायें हुई। चावण्ड की **राग माला** जिसका विकसित स्वरूप है, वे **चौरपंचाशिका** के चित्र इसी क्षेत्र की देन है।

2. कार्ल खण्डालावाला एवं डा. मोती चन्द्र ने अपनी पुस्तक **न्यू डोक्यूमेन्ट्स ऑफ इण्डियन पेन्टिग** में कुछ नये सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं उन्होंने **'अरण्यक पर्व'** ग्रन्थ जो 1516 ई. में कच्छवाहा नामक गांव उत्तर प्रदेश में चित्रित किया गया था उस पर निर्धारित मान्यतानुसार **चौरपंचाशिका समूह** के सभी चित्रों को उत्तर प्रदेश के जोनपुर क्षेत्र में चित्रित बताये[3] उनके तर्क का दूसरा आधार पालम में चित्रित 1540 ई. का "आदिपुराण" भी रहा है, उसमें भी मुख्य निर्णायक आधार आकृतियों के पहनाव में चाक दार जामा रहा है। सभी तथ्य एक पक्षीय हैं।

3. कार्ल खण्डाला वाला के साथ जगदीश मित्तल ने भी लिखा है कि **चौर पंचाशिका, भागवत** एवं **गीत गोविन्द** आदि कुलेदार समूह के चित्र दिल्ली एवं जोनपुर क्षेत्र में बने हैं।[4] इसकी पुष्टि में सा. नाना व मीठाराम की **भागवत** के चित्र पालम में चित्रित हुए बताये हैं तथा लिखा है कि श्रीरामगोपाल विजयवर्गीय के पास कभी **भागवत** की एक प्रति उन्होंने देखी थी, उसके ऊपरी सिरे पर सा० मीठाराम के साथ ही 'पालम नगर मध्ये' भी लिखा हुआ था। जबकि ऐसी कोई पुष्पिका एवं प्रमाण प्राप्त नहीं होते। इसे तथ्यात्मक आधार सामग्री मान लेना युक्ति संगत प्रतीत नहीं होता है। उन्होंने दूसरी बात यह कही है कि चाकदार जामा कुलेदार समूह के चित्रों में ही अंकित हुआ है।

---

1. डब्ल्यू जी. आर्चर—इण्डियन पेंटिंग लन्दन, पृ0 4 प्लेट 1 ।मालवा पेंटिंग, पृ0 2-3।
2. रायकृष्ण दास—ललितकला, नई दिल्ली संख्या 1-2 (अप्रेल 55 मार्च 1956 इ.) पृ. 66–71
3. कार्ल खण्डालावाला एवं डॉ. मोतीचन्द्र न्यू डोक्यूमेंट्स ऑफ इण्डियन पेन्टिग पृ0 45-49।
4. कार्ल खण्डालावाला एवं जगदीश मित्तल-ललितकला, नई दिल्ली वौल्यूम-16 पृ0 19-20।

इनका विश्वास है कि यह जामा मुगल प्रभाव से आया तथा दिल्ली के आस-पास प्रचलित था अतः चित्र भी संभवतः वहीं के हैं। यह दलील मेवाड़ के प्रारंभिक चित्रों को देखने से स्वतः खण्डित हो जाती है।

4. डा० आनन्द कृष्ण की मान्यतानुसार कुलेदार समूह के चित्र राजस्थान में अकबर कालीन चित्रों से पूर्व बने। मेवाड़ उस काल में एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक केन्द्र था।[1]

5. डगलस बेरट एवं बेसिल ग्रे ने अपनी पुस्तक **पेन्टिग ऑफ इण्डिया** में इस समस्या पर अपने विचार और अधिक स्पष्ट किये हैं। उन्होंने कुलहदार समूही चित्रों के निर्माण क्षेत्र के सम्बन्ध में विभिन्न मान्यताओं का खण्डन करते हुए **चौरपंचाशिका** समूह के चित्रों को जयपुर के दिगम्बर जैन मन्दिर में सुरक्षित **महापुराण** के चित्रों से सर्वथा भिन्न बताया। साथ ही उस काल में मेवाड़ ही एक मात्र हिन्दु राज्य था जहाँ कुम्भा एवं सांगा के काल को भारतीय राजनैतिक एवं सांस्कृतिक जीवन से समृद्ध बताया है। इनका यह भी विश्वास है कि मालवा के **नियमतनामा** चित्रण के बाद चित्रकार मेवाड़ में आये। यहीं **चौरपंचाशिका** श्रृंखला के **भागवत, गीत गोविन्द** एवं **रागमाला** सम्बन्धित चित्र उपलब्ध होने का उन्होंने विस्तार से उल्लेख किया है।[2]

6. राबर्ट स्केलटन भी पालम के सिद्धान्त को विश्वसनीय नहीं मानते हैं तथा उन्होंने सा० नाना व मीठाराम से सम्बद्ध **भागवद** के **चौरपंचाशिका समूही** चित्रों को मेवाड़ की ही महत्वपूर्ण निधि बताते हुए मेवाड़ को ही तत्कालीन कला का प्रमुख केन्द्र उल्लेखित किया है।[3]

7. प्रो० रतनपरीमू को अभी हाल ही में अहमदाबाद में **भावगत** का एक ग्रन्थ देखने को मिला है, जिसका विस्तृत अध्ययन करते हुए उन्होंने लिखा है कि **भागवत** के प्राचीनतम चित्र राजस्थान में ही बने हैं।[4] उनकी मान्यता है कि कुलेहदार समूह में दो प्रकार के चित्र रहे हैं। कुछ अकबर के पहले के व कुछ अकबर काल के बाद साथ ही उनको मिली भागवत् की सचित्र कृति भी उन्होंने दक्षिण पश्चिमी राजस्थान में ही चित्रित हुई बताई है। इस तथ्य से उक्त चित्रों की श्रृंखला का विधिवत् समाधान हो जाता है। इन चित्रों के अतिरिक्त कुलेहदार समूह के प्रारम्भिक नमूने मेवाड़ में ही अनवरत प्रचलित होने की सामग्री क्रमिक रूप से मिलती है—

चौरपंचाशिका समूह के प्रारम्भिक आधार

1. गोगुन्दा में चित्रित **गीत गोविन्द आख्यायिका** (1455 ई. लगभग), जावर में चित्रित **गीत गोविन्द** सार 1545 ई. के पश्चात् आहड़ में चित्रित **ढोलामारू** (1592 ई.), चावण्ड में चित्रित **राग माला सेट** (1605 ई.) आदि में स्पष्टतया **चौरपंचाशिका** समूह का चित्रण दिखाई देता है। स्त्रियों की आकृतियां ठीक वैसी ही चित्रित है, जो उक्त **गीत गोविन्द** एवं **भागवत** के चित्रों में मिलती है (चित्र सं० 21-24 अ) इन चित्रों के तुलनात्मक अध्ययन से इस बात की पुष्टि हो जाती हैं, इस पर कई विद्वानों ने अपनी सहमति प्रकट की है।[5]

2. भामाशाह की हवेली चित्तौड़गढ,[6] आमेर के भित्तिचित्रों, चांवड **रागमाला** एवं महाराणा जगतसिंह के समय बने **भागवत** एवं **रामायण** के चित्रों में भी कहीं-कहीं कुलेहदार चित्र मिलते हैं।

---

1. डा. राय आनन्द कृष्ण-मार्ग, वोल्यूम 10 नं. 2 पृ० 19।
2. डगलेस बैरट एण्ड बैसिल ग्रे-पैंटिग आफ इण्डिया पृ० 62-69।
3. रोवर्ट स्केलटन से प्राप्त निजी पत्र-लन्दनदि 11 अप्रेल 1979।
4. डा. रतन परीमू—ललितकला, वोयूल्म 17, पृष्ठ 9 13।
5. हीरेन मुकर्जी-रूपलेखा वोल्यूम 33 नं. 1 व 2 पृ० 43 से 59 एवं डगलस बैरट-पैंटिग आफ इण्डिया पृ. 62-69।
6. कार्ल जें. खण्डालावला-आमेर पार्टपोलियो पृ० 1-2।

3. इनमें रंगों का संयोजन स्पष्टतः मेवाड़ की परम्परा के अनुरूप है । चमकीले लाल, हिंगलू कसूंबल एवं अन्य पश्चिमी भारतीय शैली में प्रयुक्त रंगों की प्रधानता है जब कि मुगल एवं जोनपुर शैलियों में इस प्रकार के रंगों का प्रचलन कम था । जौनपुर एवं पालम के चित्रों की योजना इनसे भिन्न है ।

4. चित्रों की पृष्ठभूमि में जो भवन एवं प्रासाद बने हुए हैं, वे मेवाड़ एवं मालवा में सर्वत्र मिलते हैं यही परम्परा यहां बाद के चित्रों में भी विद्यमान रही तथा मेवाड़ में आज भी पाई जाती है । पेड़ों की बनावट एवं लताओं का यह अंकन **सुपासनाह चारियम्** (1423 ई.) से ही चित्रों की पृष्ठभूमि में प्रयुक्त देखते हैं । (देखें चित्र सं. 10)

5. पालम के पक्ष में जो दलीलें दी गई हैं, वे अस्पष्ट एवं एक-पक्षीय हैं । पालम में चित्रित **भागवत्** न तो रामगोपाल विजयवर्गीय ने कभी प्रकाशित करवाया है, न ही उसकी सामग्री उनके पास अब उपलब्ध है । इस कारण से **'पालममध्ये'** का पुष्टप्रमाण कहीं उपलब्ध नहीं होने से इसे सिद्धान्ततः पालम थ्योरी बनाना उचित प्रतीत नहीं होता ।

6. सा० नाना एवं मीठाराम के नाम दक्षिणी राजस्थान में आज भी प्रचलित हैं और मूलतः ये नाम राजस्थानी हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस तरह के नाम यहां बहुसंख्य पाये जाते हैं । इनमें **भागवत** के चित्रों की मानवाकृतियां एवं अभिप्राय गोगुन्दा में चित्रित **गीत गोविन्द आख्यायिका** के नारी चित्रण से ज्यों का त्यों मेल खाते हैं, (देखें चित्र 13स एवं 17) । यही नहीं चित्तौड़गढ़ के उत्कीर्ण रेखांकन (1229 ई.) की अंकन पद्धति के अनुरूप ही **भागवत** के चित्रों में अंकन है । इन चित्रों का विस्तृत विवेचन आगे प्रस्तुत है । (देखें चित्र सं. 6 एवं 18)

7. महाराणा लाखा, मोकल एवं कुम्भा से लेकर उदयसिंह तक का शासन काल मेवाड़ का ही नहीं अपितु पूरे राजस्थान का महत्वपूर्ण काल रहा है । इस काल में देहली, जौनपुर आदि क्षेत्रों में हिन्दू कला संरक्षक शासक कोई नहीं था । ग्वालियर में तोमर शासकों का राज्य 16वीं सदी के प्रथम चरण में ही समाप्त हो गया था । कार्ल खण्डालावाला के अनुसार अफगानी पगड़ी मेवाड़ में नहीं थी[1] जबकि महाराणा सांगा तथा उदयसिंह के शासन काल में पूर्वी मालवा का अधिकांश भाग जहां कुलेहदार पगड़ी का प्रयोग चित्रों में सर्वप्रथम मिला, वह मेवाड़ में सम्मिलित था । अकबर ने जब चत्तौड़ पर आक्रमण किया तब चन्देरी, भलेसा तक का भाग मेवाड़ साम्राज्य में था, जहां राव सुर्जन उस काल में प्रमुख शासक था ।[2] यह पगड़ी मेवाड़ में व यहां के ठिकानों में लम्बे समय तक प्रचलित रही है । घाणेराव के चित्रों में तो 18वीं सदी तक इसका परिवर्तित रूप चित्रित होता रहा है ।

8. एक महत्वपूर्ण तथ्य कई अफगानी सरदारों एवं सैनिकों का मेवाड़ में शरण लेना है । इब्राहिम लोदी की हार के बाद लगभग सभी अफगान सरदार राणा सांगा की शरण में आ गये थे । खानवा के युद्ध में महाराणा सांगा ने धौलपुर, बयाना के क्षेत्र तथा फतेहपुर सीकरी का बड़ा भाग अपने अधिकार में ले लिया था । खानवा की हार के बाद अफगान और उनके प्रधान मोहम्मद शाह द्वितीय कई वर्षों तक मेवाड़ में रहे ।[3] शेरशाह के राज्य ग्रहण करने पर इनमें से कुछ वापस लौटाये गये । इसी प्रकार महाराणा प्रताप के समय तक अफगानों के रहने की पुष्टि हकीमखां सूर से होती है, जो हल्दीघाटी युद्ध में लड़ा था । इन तथ्यों से अफगानों व पूर्वी मालवा का सम्बन्ध मेवाड़ से

---

1. कार्ल जे. खण्डालावाला एवं डा. मोतीचन्द्र—न्यू डोक्यूमेंट्स आफ इण्डियन पेन्टिंग पृ० 47 ।
2. रा. व. सोमानी—हिस्ट्री ऑफ मेवाड़ 207 ।
3. तारीख-ई-शेर शाही (ढांका 1964) पृ. 16 ।

विशेष रहा है। उस काल में प्रमुख हिन्दू शासक मेवाड़ के थे। अतः कुलेहदार या अफगानी पगड़ी मेवाड़ में रही व यहाँ के स्थानीय चित्रों में इसका चित्रण हुआ है।

9. **चौरपंचाशिका** की एक प्रति महाराणा उदयसिंह के शासन काल में कुम्भलगढ़ में भी लिखी गई थी जो विक्रम सम्वत् 1605 (1548 ई.) की है। यद्यपि यह सचित्र नहीं है, किन्तु इससे वहां इस ग्रन्थ की प्रतिलिपियां होने की पुष्टि होती है।[1] नानालाल चिमनलाल मेहता के अनुसार ये चित्र 1500 ई. से 1570 ई. के हैं। इन पर माधुरी देसाई संग्रह बम्बई के **'भागवद पुराण'** के चित्रों का पूर्ण प्रभाव है। दोनों ही में परली आंख हट चुकी थी एवं सुदृढ़ चित्रण परम्परा की स्थापना दिखाई देती है। इससे पूर्व चित्रित गोगुन्दा के **गीतगोविन्द आख्यायिका** (1455 ई. लगभग) के चित्रों की आकृतियों का ही इनमें क्रमिक विकास दिखाई देता है। मुखाकृतियां, विभिन्न सामग्री के अभिप्रायों एवं पानी के अंकन से **गीत गोविन्द आख्यायिका** में लक्ष्मी (चित्र सं. 13अ) के चित्र में अंकित है तथा **चौरपंचाशिका** के चित्र **कमल कुन्ज के निकट खड़ी चम्पावती** चित्र सं. 19 में समान रूप से अंकित देखते हैं। **भागवत** एवं **गीत गोविन्द** के ग्रन्थ मेवाड़ में बहुत अधिक बने हैं। महाराणा कुम्भा ने इसकी टीका लिखी व टीकायें प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर एवं जोधपुर में सुरक्षित हैं, जिनकी भाषा ठीक वैसी ही है जैसी कि **भागवत** चित्र सम्पुट में है। **चौरपंचाशिका** की सचित्र प्रति प्रतापगढ़ में मिली। इसी प्रकार **गीत गोविन्द** का चित्र सम्पुट (1550–1600 ई.) जो प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय बम्बई में सुरक्षित है, दक्षिण राजस्थान के मेवाड़ भूखण्ड की ही महत्वपूर्ण कृतियां है।[2] इस सम्बन्ध में अधिकांश विद्वान् सहमत हैं तथा इनका चित्रण काल भी 1570 ई. के पूर्व ही रखना स्पष्ट हो चुका है। चांवड के **दीपक राग** एवं **चौरपंचाशिका** व **भागवत पुराण** की आकृतियों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है। देहली जौनपुर श्रृंखला में प्राप्त **अरण्यक पर्व** एवं **मृगावती** के चित्रों से पूर्व कार्ल खण्डालावाला ने प्रिंस आफ वेल्स संग्रहालय बम्बई में सुरक्षित **गीत गोविन्द** (1550–1600 ई.) को मेवाड़ में चित्रित बताया है[3] तत्पश्चात् उन्होंने अपनी मान्यताओं में परिवर्तन कर दिया।[4] किन्तु इस क्षेत्र में मेवाड़ के प्राचीन चित्रों **श्रावक प्रतिक्रमण सुत्त चूर्णि, गीत गोविन्द आख्यायिका** एवं **ढोला मारू** के चित्रों का समन्वय **चौरपंचाशिका** व **भागवत** से करके देखा जाय तो मेवाड़ की गौरवपूर्ण चित्र परम्परा के विपरीत उनकी ये मान्यताएँ अधिक सबल प्रतीत नहीं होती।

10. चित्रों की विषय वस्तु एवं नारी परिधान में चोटी, ओढ़नी, मुख मुद्रायें, आंखों की बनावट, विभिन्न अभिप्राय, अलंकरण, फुन्दके, पेड़ पौधे, लताओं आदि का अंकन ज्यों का त्यों कुलेहदार चित्रों में मिलता है। मेवाड़, अजमेर, हाड़ोती व राजस्थान के विभिन्न भागों में आज भी लोक जीवन में प्रचलित गुर्जर एव मीणा जाति में यही पहनावा पाया जाता है।

उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कुलेहदार समूह के चित्र मेवाड़ भू-भाग में अधिक चित्रित हुए। महाराणा कुम्भा का वैष्णव दर्शन, धर्मोपासना, महाराणा सांगा का सीमा विस्तार, उनके पुत्र भोजराज की पत्नी मीरा की कृष्ण भक्ति, तथा प्रताप की हिन्दुत्व में निष्ठा आदि स्पष्ट प्रमाण हैं कि उत्तरी भारत में मेवाड़ भूखण्ड ही हिन्दू चित्र शैली का उस युग में प्रमुख केन्द्र था, जहां **चौरपंचाशिका** समूह के सभी चित्रों का चित्रण हुआ और भारतीय परम्परागत हिन्दू चित्र शैली इस काल में यहां सुरक्षित रह पाई। □

---

1. चौरपंचाशिका प्रति—जैन शिक्षण संस्थान उदयपुर में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रन्थ
2. जर्नल ऑफ इण्डियन सोसाइटी ऑफ ओरियन्टल आर्टस्, भाग 16, पृष्ठ 1–10।
   लीलाशिवेश्वरकर–चौरपंचाशिका (भूमिका) पृष्ठ 13। ललितकला अंक 15 रिव्यू डगलस बेरट पृष्ठ 57।
3. मार्ग वोल्यूम IX नं. 2 राजस्थान पेन्टिंग पृष्ठ 18–20।
4. कार्ल खण्डालावाला एवं मोतीचन्द—न्यू डोक्यूमेन्ट्स ऑफ इन्डियन पेन्टिंग पृष्ठ 64।

3. मेवाड़ चित्र-शैली का क्रमिक विकास

मेवाड़ के प्रारम्भिक चित्र

भारतीय लघु चित्रों के प्रारम्भिक नमूने सचित्र ग्रन्थों में मिलते हैं, उन्हें पश्चिमभारतीय चित्रशैली के साथ ही 'ग्रपभ्रंश शैली' एवं 'गुजरात शैली' नाम से सम्बोधित किया है। डा० उमाकान्त पी० शाह ने मध्यकालीन राजस्थान व गुजरात की सांस्कृतिक समानता को देखकर 'मरू गुर्जर शैली' नाम भी दिया है।[1] जिसका प्रभाव मेवाड़ के प्राचीन चित्रों में रहा है। परन्तु मालवा की चित्रकला उपेक्षित रह जाती है, जब कि मध्यकाल में पश्चिमी भारत के तीन मुख्य राज्य थे—मालवा मेवाड़ तथा गुजरात। ग्रतः पश्चिमभारतीय शैली नाम का सम्बोधन ही ग्रधिक युक्तिसंगत लगता है। मालवा एवं गुजरात स्थानीय सुल्तानों के ग्राधीन थे, तथा मेवाड़ में गुहिल राजपूतों का हिन्दू राज्य था।

विभिन्न स्रोतों से यह भी सिद्ध हो जाता है कि **चौरपंचाशिका** एवं **भागवत्** के चित्रों का प्रणयन दक्षिणी पश्चिमी राजस्थान में हुग्रा। इसी काल में इनराज्यों में जैन धर्म व कला की ग्रभूतपूर्व उन्नति हुई। व्यापारिक वर्ग ने तत्कालीन सुल्तानों से कई सुविधायें प्राप्त करली थीं। माण्डू के **कल्प सूत्र** की प्रशस्ति में श्रेष्ठी 'जसवीर' का उल्लेख है, जिसने मेवाड़ में चित्तौड़, राणकपुर, देलवाड़ा, कुम्भलगढ़, ग्राबू, जीरापल्ली ग्रादि स्थानों की यात्रा की थी ग्रौर महाराणा कुम्भा ने इस श्रेष्ठी को सम्मानित भी किया था। मेवाड़ से ऐसे कई साधु गुजरात व मालवा की यात्रा हेतु प्रस्थान करते रहते थे। मेवाड़ के देलवाड़ा में दक्षिणी भारत के दौलताबाद व पूर्व के जौनपुर से कई श्रेष्ठियों के ग्राने व ग्रन्थ लिखाने के प्रसंगवश वर्णन हैं।[2] ग्रतएव यह स्पष्ट होता है कि पश्चिमी भारत में पन्द्रहवीं सदी में सांस्कृतिक उत्थान बड़ी तेजी से हुग्रा।

जैन धर्म के साथ-साथ कृष्ण भक्तिग्रान्दोलन ने भी कालान्तर में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मेवाड़ में मीरा तथा गुजरात में नृसिंह मेहता भक्त शिरोमणि हुए। इनकी रचनाग्रों को लोग बड़ी श्रद्धा से ग्राज भी गाते हैं। कृष्णभक्ति की ग्रोर लोगों का झुकाव बढ़ता गया व कला में कृष्ण की लीलाग्रों से सम्बन्धित कई चित्रों की रचनायें हुई। **भागवत पुराण, गीत गोविन्द** ग्रादि इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

चौरपंचाशिका ग्रौर **भागवत** में जैसा कि स्पष्ट है, एक विशेष प्रकार की शैली विकसित हुई दिखाई देती है, जो पश्चिमभारतीय शैली से ग्रागे का स्वरूप बनाती है। जिसमें पश्चिमभारतीय शैली के सभी ग्रभिप्रायों को चित्रित करते हुए कुछ नवीन ग्रभिप्रायों का भी निर्माण होने लगा है,

1. डा. उमाकान्त पी. शाह—अगरचन्द नाहटा अभिनन्दन ग्रन्थ (1976 ई) पृ. 7।
2. अगरचन्द नाहटा—जिनवर्द्धन सूरि, शोधपत्रिका भाग 28 अंक 1 पृ. 25–28।

जैसे नारी का मुख अपनी अपभ्रंश शैली की विशेषताएं लिये हुए भी अपना अलग आकर्षण रखता है। लम्बी नाक, मोटी आंखें, गोल चेहरा; आगे चलकर मेवाड़ शैली के चित्रों में चित्रण की विशेषताओं के साथ जुड़ने लगे। गोगुन्दा की मुख मुद्रा में यह आंख बहुत निकट आ गई, तथा 1500 ई. तक बाहर निकली आंख हट चुकी थी, जिसका महत्वपूर्ण उदाहरण **बालक कृष्ण का स्नान** चित्र माधुरी देसाई संग्रह, बम्बई में सुरक्षित है। इसमें कृष्ण का स्वरूप विशेष आकर्षक है। 1540 ई. से 1580 के मध्य **भागवत** के उत्कृष्ट चित्रों की रचना हुई, जिनके ऊपर सा. नाना एवं सा मीठाराम के उल्लेख मिलते हैं। ये चित्र उस काल की भारतीय हिन्दू कला परम्परा के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। मेवाड़ उस काल में एक शक्तिशाली हिन्दू राज्य एवं कला का रक्षक था। मुगल शासकों द्वारा जिन संस्कृत ग्रन्थों के चित्र निर्माण पर प्रतिबन्ध था, उनके चित्रण का मेवाड़ के शासकों ने ही बीड़ा उठाया।[1]

रायकृष्ण दास ने राजस्थानी चित्रकला का उद्‌भव पन्द्रहवीं सदी में मेवाड़ में काश्मीर शैली के मिश्रण से बताया है।[2] इससे मेवाड़ की चित्रकला अपनी स्थानीय विशेषताओं से शुद्ध हिन्दू परम्परा में थी, इसकी पुष्टि होती है। यहां तक कि तत्कालीन मुगल चित्रों में भी इस शैली का प्रभाव परिलक्षित होता है। यह मानना कि इन चित्रों में अकबरकालीन पोषाक है, इसलिए बाद के हैं। अकबर ने जामा, पगड़ी आदि सभी वेशभूषा स्थानीय भारतीय पहनावे से ही अपनायी थी। अकबर ने फारसी कला आचार्यों की देख-रेख में भारतीय कलाकारों को प्रशिक्षित किया तथा **हमजानामा** आदि कई सचित्र ग्रन्थों का निर्माण करवाया।[3] **हमजानामा** सन् 1557 से 1582 ई. के मध्य बना, मुगल शैली का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें कई दृश्यों में राजपूत नारियों तथा अन्य भारतीय पहनावों के अंकन हैं, जिनसे यह विदित होता है कि ग्रन्थ के निर्माण में पश्चिमी भारतीय चितेरे भी थे।[4] मुगल दरबार में अब्दुल फजल, फेजी (नागौर) तथा बदायूनी (भरतपुर) जैसे विद्वान् राजस्थान के ही थे। इनके अतिरिक्त राजस्थान भू-खण्ड दिल्ली के समीप होने से उन का यह प्रभाव होना स्वाभाविक भी था। इससे मुगलकला के नवीन प्रतिमान स्थापित हुए। प्राचीन मध्यकालीन पश्चिमी भारतीय शैली के रूपों एवं अभिप्रायों में आदान-प्रदान से उत्तर पश्चिमी भारत के विभिन्न शासकों का कला प्रेम बढ़ा व सभी राजघरानों में चित्र बने, जिसे **राजस्थानी चित्रकला** के नाम से सम्बोधित किया गया। मेवाड़ चित्र-शैली की पृष्ठभूमि में प्राकृतिक दृश्य, भवनों में खम्बे, बरामदे एवं झरोखों का प्रयोग आदि अपने स्थानीय अभिप्रायों के अनुरूप चित्रित हो चुके थे। इस प्रकार 16वीं शताब्दी के अन्त तक राजस्थानी चित्रशैली अपनी स्थानीय विशेषताओं को लेते हुए विकसित होने लगी थी।[4] फलस्वरूप मेवाड़ चित्रशैली लगभग इसी काल में अधिक विकसित हुई थी। इसके मुख्य अभिप्राय एवं आकार, स्थानीय **चौरपंचाशिका** एवं **भागवत** के प्रारम्भिक चित्रों से प्रभावित थे।[5] मालवा और मेवाड़ शैलियां पहले ही से विकसित हो चुकी थीं। दोनों की प्रारम्भिक कृतियों और **चौरपंचाशिका** के चित्रों के विभिन्न अभिप्रायों में समानता देखी जा सकती है। मेवाड़ के प्रारम्भिक 1229 ई. के उत्कीर्ण रेखांकन की परम्परा में ही **भागवत** की मानवाकृतियां तथा गोगुन्दा के लघु चित्रों के अभिप्रायों, मुखमुद्राओं, साधन सामग्री एवं **'लक्ष्मी'** के चित्र में अंकित पानी, **चौरपंचाशिखा** के ही प्रारम्भिक स्वरूपों का विकास दिखाते हैं। चूंकि **'गीत गोविन्द आख्यायिका'** के चित्र 1456–68 ई. के मध्य के तथा **चौर पंचाशिका** के 1500 ई. से 1570 ई. के मध्य के हैं। यही

1. डगलस बेरट एण्ड बेसिल ग्रे-ट्रेजर्स ऑफ एशिया पेंटिंग ऑफ इण्डिया (स्कीरा) पृ. 67।
2. राय कृष्णदास—भारत की चित्रकला पृ. 61।
3. स्टुअर्ट केरीवेल्स इम्पीरियल मुगल पेंटिंग, पृ. 22। ए फ्लावर फोम एवरी मिडो, पृ. 91।
4. डगलस बेरट एण्ड बेसिल ग्रे ट्रेजर्स ऑफ एशिया-पेंटिंग ऑफ इण्डिया (स्कीरा) पृ. 72।
5. हीरेन मुकर्जी—प्रोबलम्स ऑफ मेवाड़ पेंटिंग। रूपलेखा-वोल्यूम 37 नं. 1 और 2, पृ. 18–22।

अभिप्राय यहां से प्राप्त **गीत गोविन्दसार** 1545 ई. व **गीत गोविन्द** (1570 ई लगभग) के चित्रों में मिलते हैं। मेवाड़ के प्रमुख शैलीगत चित्रों का सन्दर्भ 1592 ई. से क्रमबद्ध मिलता है :—

1. **ढोलामारू री चौपाई**, आहड़ (1592–1620 ई. के मध्य) राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली।
2. **राग माला** चित्र सम्पुट चावण्ड 1605 ई., गोपी कृष्ण कानोड़िया संग्रह, कलकत्ता।
3. **रागिनी गोडकरी** एवं **दीपक राग** (लगभग 1605 ई.) कुंवर संग्राम सिंह संग्रह, जयपुर
4. **रसिक प्रिया** (लगभग 1615 ई.) राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली।
5. **नायिका भेद** लगभग 1625 ई. गोपीकृष्ण कानोड़िया संग्रह, कलकत्ता।
6. **रसिक प्रिया** (लगभग 1625 ई.) बोस्टन संग्रहालय, अमेरिका।

आहड़ में चित्रित **ढोला मारू** का एक तिथियुक्त (1592 ई.) चित्र सम्पुट राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में सुरक्षित है। इसमें 104 चित्र हैं, पुष्पिका में कार्तिक सुदी 13 सं. 1649 के उल्लेख[1] से महाराणा प्रताप कालीन (1572–1597 ई.) समाज की कला अभिव्यक्ति है। इसमें विषय वस्तु का क्रमवद्ध चित्रण है। **घुड़सवारों के काफिले** में नारी आकृतियां व **शिकार** के चित्र में पहनाव, पशु-पक्षियों व पेड़-पौधों का गतिपूर्ण अंकन (चित्र सं. 22अ एवं ब) चावण्ड के चित्रों की प्रारम्भिक पृष्ठभूमि बनाते हैं किन्तु कुछ चित्र उनसे भिन्न लम्बे कद के है। इनमें स्त्री-पुरुषों की आकृतियों में सम्भवतः शाली वाहन के **विज्ञप्ति पत्र** (1610 ई.)[2] का प्रभाव है। ये चित्र राजपूत चित्र-शैली की प्रारम्भिक पृष्ठभूमि बनाते हैं। इनमें भवनों का अलंकरण **चौरपंचाशिका** एवं **भागवत** के समरूप है यही नहीं चित्र में नीचे जमीन पर अंकित पत्र-पुष्प के सांकेतिक अभिप्राय प्राचीन **भागवत** एवं **गीत गोविन्द** की शृंखला में पाते हैं (देखें चित्र 22स)। चित्रों की रंग योजना स्थानीय है। मटमेले रामरज पीले एवं गेरुए लाल रंगों को गहरी हरी या काली पृष्ठभूमि में उभारा है। ऐसे ही दो चित्र **रागिनी वरारी** एवं **ललित रागिनी** (1600 ई. के लगभग) चित्रित गोपीकृष्ण कानोड़िया संग्रह कलकत्ता में मिले है[3] जो चौरपंचाशिका के अधिक निकट हैं।

चावण्ड में चित्रित **रागमाला** का महत्वपूर्ण चित्र सम्पुट (1605 ई.) महाराणा अमरसिंह के राज्य (1597–1620 ई.) में बना। मेवाड़ में शाहजादा परवेज का आक्रमण हुआ, उस समय अमरसिंह ने अपनी राजधानी उदयपुर से हटाकर पुनः[4] चावण्ड में कर दी। उस समय सभी कलाकार व श्रेष्ठी वहां चले गये। मेवाड़ में इस आक्रमण के समय भी कलाकार्य यथावत चलता रहा। इन चित्रों की अंकित आकृतियां व शैली **चौरपंचाशिका** के अनुरूप है। पुरुष के मुंह की आकृति राजपूतों के आन-बान व शौर्य को प्रदर्शित करती हुई पौरूषीय शक्ति को दर्शाती है। आंखें मोटी, नाक तथा ठुड्डी लम्बी, **औरतों** का मुख गोल, अपभ्रंश शैली के समरूप होकर **चौरपंचाशिका**, **गीत गोविन्द** एवं **भागवत्** के चित्रों से अधिक निकटता लिये हुए हैं। चित्र **मारूरागिनी** (1605 ई.) तिथियुक्त चित्र है।[5] इस चित्र में ऊंट गेरूए रंग में, आदमी का लाल जामा, सफेद पगड़ी, स्त्री का घाघरा लाल, चोली पीली, काले फुन्दके, फुल्ले अलग रंगों में, पृष्ठ भूमि बेंगनी व आसमान का बहुत सुहावना चित्रण हुआ है (देखें चित्र सं. 26)। यह चित्र गोपी कृष्ण कानोड़िया संग्रह कलकत्ता में सुरक्षित है।

---

1. ढोलूजी राज्य सुष भोगावे छि ॥ घरे बीता दरीषाना करे छि ॥ संवत् 1649 वर्ष चैत्र सुदि 13 बुध(वा.) श्री 5 चौहथजी देव सूत्र हुआ पा 1) चित्रावाल गढ़े वा. श्री वाघाजी तत्पट्टे वा. श्री 5 चौहथजी तत्पट्ट सादूंल तत्पट्ठ रूपा कर्मशाह-वीर भाणकस्य पौथी: ॥ (आघाटपुर नगर मध्ये लिषावी छि। "ढोला मारू री चौपाई"
2. प्रमोदचन्द्र—ललितकला नं. 8 अक्टूबर 1960 पृ. 23–25।
3. हीरेनमुकर्जी—ललितकला नं. 12 अक्टूबर 1962 पृ. 39।
4. रामवल्लभ सोमानी—हिस्ट्री ऑफ मेवाड़, पृ. 243।
5. संवत 1662 वर्षे वेसाष सुदि 2 लिषतं चितारा निशरदी चाउंड मध्ये ॥ मारू रागिनी 42।

चावण्ड **राग माला** की श्रृंखला के हाल ही में दो चित्रों की फोटो प्रतियां और प्राप्त हुई हैं। ये चित्र **'गौडकरी रागिनी'** और **'दीपक राग'** से सम्बन्धित हैं। दोनों ही चित्र पूर्व प्राप्त **राग माला** चित्र सम्पुटों में अधिक सुव्यवस्थित है। इसमें नारी मुद्रायें कुलेहदार चित्र समूह के चित्रों के समान हूबहू अंकित है। खुले नेत्र, साड़ियों का अंकन आदि ठीक **चौरपंचाशिका** के चित्रों के अनुकूल चित्रण की विशेषता लिए हुए है। **दीपक राग** वाले चित्र में चित्रित 'छत्र' **चौरपंचाशिका** में वर्णित छत्र एवं **दीपक राग** के अनुरूप मिलता है। सबसे बड़ी विशेषता पुरुष आकृति के मुकुट की है, जो कुलेहदार समूही चित्रों में भी है। ठीक वही इसमें चित्रित हुआ है। भवनों का अंकन भी उक्त चित्रों के अनुरूप है।

मेवाड़ में गिलूण्ड से भी **रागमाला** 1607 ई. का सचित्र ग्रन्थ प्राप्त हुआ, यही पर **पृथ्वीराज रासो** एवं **राणा रासो** जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थों की प्रतिकृतियां तैयार की गई थी[1] अन्य प्रारम्भिक चित्रों में **रसिक प्रिया** लगभग 1615 ई. के चित्र अभिप्रायों में ठिगने कद की नारी पेड़-पौधों एवं हंसों की आकृति[2] **गीत गोविन्द** 1550 1570 ई. के चित्रों की ही श्रृंखला में हैं। इसी प्रकार **नाइका भेद** लगभग 1620 ई. तथा **राधा की प्रतीक्षा में कृष्ण** लगभग 1625 ई. के चित्र इस शैली के निरन्तर विकास को दर्शाते हैं। राजकुमार कर्णसिंह 15 फरवरी 1615 ई. को अजमेर जाना पड़ा तथा वहां जहांगीर से सम्मान भी प्राप्त हुआ तत्पश्चात् मेवाड़ के चित्रों में भी मुगल प्रभाव दिखाई देने लगा, चित्रकार साहीबदीन के चित्रों में हम यहीं प्रभाव पाते हैं उनके द्वारा चित्रित **रागमाला** 1628 ई. का चित्रण सम्भवतः म. कर्णसिंह के राज्यकाल से ही प्रारम्भ हो चुका था।

महाराणा जगतसिंह (प्रथम) के राज्य में मेवाड़ चित्रशैली का महत्वपूर्ण विकास हुआ। इस काल में निम्नांकित ग्रन्थ चित्रित किये गये :–

1. **रागमाला** चित्रकार साहीबदीन 1628 ई. राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली।
2. **गीतगोविन्द** चि. साहीबदीन लगभग 1630 ई. महाराजा संग्रह जोधपुर।
3. **रसिक प्रिया** चि. साहीबदीन लगभग 1630 ई. राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली।
4. **सूर सागर** लगभग 1640 ई जगदीश प्रसाद गोइन्का संग्रह, कलकता।
5. **रसिक प्रिया** लगभग 1640 ई. महाराजा जोधपुर, बीकानेर भारत कला भवन एवं बोस्टन संग्रहालय।
6. **भागवत पुराण** चि. साहीबदीन 1648 ई. भण्डारकर ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, पूना।
7. **जेम पेलेस रागमाला** लगभग 1650 ई. राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली।
8. **कुमार संभव** लगभग 1650 ई. कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर।
9. **रस मंजरी** 1651 से 1653 ई. श्वेताम्बर जैन मंदिर उदयपुर।
10. **कवि प्रिया** लगभग 1650 ई. प्रताप संग्रहालय उदयपुर।
11. **रसिक प्रिया** लगभग 1650 ई प्रताप संग्रहालय, उदयपुर एवं कुवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर।
12. **आर्ष रामायण, चि. मनोहर** 1649 ई प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई।
    आर्ष रामायण 1651 ई. प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर।
    आर्ष रामायण चि. साहीबदीन 1653 ई. ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन।

रागमाला 1628 **ई.**—यह **रागमाला** मोतीचन्द्र खजांची, बीकानेर के संग्रह में थी। इस चित्र सम्पुट के 42 चित्रों में से अबतक केवल 12 चित्र ही प्रकाश में आये हैं, ये चित्र

1. उमाकान्त पी. शाह—बुलेटिन, प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम बम्बई नं. 1 व 2 पृ. 18–22।
2. हीरेनमुकर्जी—रूपलेखा वोल्यूम 37 नं. 1 व 2 पृ. 18–22।

इस समय राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली, भारत कला भवन, बनारस और म्यूजियम आफ फाइन आर्ट्स, बोस्टन में सुरक्षित हैं। इस रागमाला पर डा. मोतीचन्द्र कार्ल खण्डालावाला एवं प्रमोदचन्द्र के अनुसार **'माघवानल काम-कन्दला'** का विशेष प्रभाव है।[1] इनका विश्वास है कि **माघवानल** से ही, जो **पापुलर**, मुगलशैली का ग्रन्थ रहा है,[2] पुरुष और स्त्रियों की आकृतियों में साहबदीन के चित्रों से विकसित हुई है (चित्र सं. 27अ एवं 27ब)। साहबदीन की शैली का यह प्रथम तिथियुक्त ग्रन्थ है[3] जो मुगलशैली से प्रभावित है, चावण्ड **रागमाला** से ही स्पष्टतः इसका विकास दिखाई देता है। जहां चावण्ड में आंखें बड़ी, खुली हुइ हैं, वहीं इसमें छोटी और सुन्दर है। इस चित्र सम्पुट में **चाकदार जामा**, बांहों के नीचे छायांकन, जहांगीर कालीन 'पगड़ी' आदि का चित्रण उस काल की विकसित चित्र शैली के गुणों के साथ ही मेवाड़ी प्रभाव लिये हुये हैं। **चाकदार जामा** की ही अंकन पद्धति का स्वरूप हम 1229 ई. के रेखांकन में भी देख सकते हैं। इसी चित्र से उदयपुर में चित्रण कार्य की पुष्टि होती है (चित्र सं. 27) में स्पष्ट अंकित है।

गीत गोविन्द (1630 ई.) उक्त **रागमाला** के साथ-साथ **गीत गोविन्द** के भी चित्र बने थे। इस श्रृंखला के 8 चित्र जोधपुर महाराजा के संग्रह में हैं। कुछ प्रतियां प्रताप संग्रहालय, उदयपुर एवं कुंवर संग्रामसिंह संग्रह जयपुर में भी सुरक्षित हैं। यह सभी साहीबदीन के बनाये चित्र हैं। **रसिकप्रिया** के 41 चित्र उदयपुर संग्रहालय में हैं। अन्य बीकानेर एवं जोधपुर महाराजा संग्रह भारत कला भवन, राष्ट्रीय संग्रहालय एवं नई दिल्ली बोस्टन संग्रहालय में सुरक्षित है रासलीला से सम्बन्धित कुंवर संग्रामसिंह के संग्रह का एक चित्र सुन्दर बन पड़ा है देखे चित्र 37। कृष्ण बीच में हैं उनके चारों ओर गोपियां हैं। इसमें विरोधी रंगों के समन्वय का अच्छा प्रयोग हुआ है। **कुमार संभव** (1650 ई. के लगभग) चित्रित एक आकर्षक कृति है (चित्र संख्या 29)। इनमें राधा-कृष्ण और गोपियों को विभिन्न दृश्यों के मध्य अंकित किया गया है। प्राकृतिक दृश्यों में कुछ पेड़ों का सुन्दर अंकन किया गया है। आम, पलाश, खजूर और केले के पत्तों का अत्यन्त ही आकर्षक संयोजन फूलों की लताओं के साथ प्रयुक्त हुआ है। पानी का काली रेखाओं से अंकन किया गया है। इनमें प्रायः एक चित्र में दो या तीन दृश्यों की अभिव्यक्ति को अंकित किया है। आकृतियों को बीच में रख कर ऊपर-नीचे क्रम से पेड़ पौधों के अंकन द्वारा दृश्यों को विभाजित किया गया है तथा एक मंजिले गुम्बदाकार भवनों का चित्रण तत्कालीन अभिप्रायों में उल्लेखनीय है।

आर्ष रामायण[4] के चित्र चित्रकार मनोहर एवं साहीबदीन द्वारा (1649 ई. से 1653 ई.) चित्रित किये गये। जिनमें विभिन्न काण्डों के चित्र-सम्पुटों का कालक्रम इस प्रकार हैं:—

1. **बालकाण्ड** वि. सं. 1706 (1649 ई.) मनोहर, प्रिन्स आफ वेल्स संग्रहालय, बम्बई।
   बालकाण्ड वि. सं. 1707 (1650 ई.) चि. साहीबदीन, ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन।
2. **अयोध्याकाण्ड** वि. सं. 1707 (1650 ई.) मनोहर प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय, बम्बई।
3. **अरण्यकाण्ड** वि. सं. 1708 (1651 ई.) प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर।
4. **युद्धकाण्ड** वि. सं. 1709 (1652 ई) चि. साहीबदीन, ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन।
5. **किष्किन्धाकाण्ड** वि. सं. 1717 (1653 ई.) चि. साहीबदीन केसल म्यूजियम लन्दन।
6. **उत्तरकाण्ड** वि. सं. 1710 (1653 ई.) चि. साहीबदीन, ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन।

---

1. कार्ल जे. खण्डालावाला, डा. मोतीचन्द एवं प्रमोदचन्द—मिनिएचर पेंटिंग, पृ. 32–33।
2. वही, 31।
3. मारू राग ॥42॥ संवत 1685 वर्षे आसोवद, राणा श्री जगत सींघ राजेण उदैपुर मधैलीषतं चीतारा साहीब दीनन् वाचण हारा नै राम रामै ॥
   क्लार्क्स् एबेलिंग—रागमाला पेंटिंग, नई दिल्ली 1974 पृ. 166।
4. कार्ल जे. खण्डालावाला मार्ग 1958–4, नं. 3 पृ. 1–22।
   प्रमोदचन्द्र द टाइम्स ऑफ इण्डिया एन्यूअल 1961 पृ. 74।
   डगलस बेरट एण्ड बेसिल ग्रे पेंटिग्स ऑफ इण्डिया पृ. 137–138।

रामायण का यह प्रथम चित्र सम्पुट चित्रकार मनोहर ने महाराणा जगतसिंह के राज्य काल में चित्रित किया।[1] इन चित्रों में राम और लक्ष्मण को राजपूत क्षत्रीय के रूप में चित्रित किया, उनके हाथों में तलवार एवं अन्य हथियार भी दिखाये हैं राक्षसों का अंकन मुगल शासकों के अनुरूप चित्रित किया है। पुरुषों के दाढ़ी एवं चेहरों का मुगल शैली में चित्रण होने से यह स्पष्ट हो जाता है कि राम और रावण के संघर्ष का संदर्भ क्षत्रिय एवं मुगलों के मध्य हुये संघर्ष का कोई संकेत है। ये चित्र मनोहर एवं साहीबदीन की सम्मिलित चित्रण पद्धति के अच्छे उदाहरण हैं। मनोहर साहीबदीन का सहायक था। यही कारण है कि मेवाड़ शैली में रामायण के चित्र इन दोनों ही चित्रकारों द्वारा त्रित्रित किये गये। ये चित्र विभिन्न संग्रहालयों में अलग से पहचाने जा सकते हैं। मनोहर का उल्लेख प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम बम्बई के चित्र सम्पुट में है तथा साहीबदीन का ब्रिटिश म्यूजियम लन्दन के चित्र पुष्पिका में देखा जा सकता है।

आर्णरामायण के चित्रों में ऋषियों का कृश शरीर की आकृति में चित्रण है। जिनकी तपस्या के कारण हड्डियां बाहर निकलती हुई दिखाई हैं। (चित्र सं. 33) ऋषियों के बालों की सजावट अपने ढंग से अंकित है। चित्र के फलक-संयोजन में अवकाश (स्पेस) के महत्त्व को चित्रकार ने भलिभाँति समझा है। भीड़ के दृश्यों में इसे स्पष्ट करने का प्रयास किया है। उदाहरणार्थ प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय बम्बई में सुरक्षित रामायण 1649 ई. के चित्र **'अयोध्या लौटते हुए दशरथ'** के दृश्य में भीड़ की उचित अभिव्यक्ति के साथ नारियों को भी महल के द्वार पर चित्रित किया है, इनमें मानवाकृतियां नियंत्रित समूहों में अंकित हैं। इसके प्रासादों के अंकन में इससे पूर्व चित्रित चौर पंचाशिका समूही चित्रों के अनुरूप त्रिकोणाकार गुम्बजों की परम्परा है। दशरथ के साथ आने वाले घुड़सवार एवं पैदल सैनिकों को अलग दिखाया है। कई चित्रों में एक ही फलक को दो भागों में विभाजित कर विभिन्न काल एवं स्थान की अभिव्यक्ति करने का अच्छा प्रयास किया है। **अरण्य-काण्ड में साधुओं के आश्रम जाते हुए राम, लक्ष्मण व सीता** में पानी का अंकन तरंगित रेखाओं से करके चित्र में गति उत्पन्न की गई है। प्रिन्स ऑफ वेल्स म्युजियम बम्बई में सुरक्षित रामायण के ही अन्य चित्र **"शृंगी ऋषि का विवाह"** में मण्डप के चारों तरफ रखे हुये मिट्टी के घड़ों की सजावट बहुत ही सुहावनी है जिससे **सुपार्शनाह चरियम** 1423 ई. चित्र संख्या 11 **पाणी ग्रहण** चित्र के अभिप्रायों को यहाँ ज्यों का त्यों प्रचलित पाते हैं।

साहीबदीन द्वारा 1648 ई. में चित्रित भागवत के चार स्कन्ध ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट पूना में सुरक्षित है। इसी काल में चित्रित **रसिक प्रिया** एवं **कविप्रिया** के चित्र सम्पुट प्रताप संग्राहलय उदयपुर में सुरक्षित है। जयपुर के जेम पैलेस से प्राप्त मेवाड़ के साहीबदीन द्वारा चित्रित **रागमाला** चित्र सम्पुट (1650 ई. लगभग) राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में सुरक्षित है। इन चित्रों में **बसन्त रागिनी** चित्र की पृष्ठभूमि में हिंगलू रंग तथा कृष्ण एवं गोपियों के स्थानीय पीत रंग तथा उनके चित्रण की विशेषताएं लघु चित्रों में विशेष उल्लेखनीय हैं।

महाराणा जगतसिंह (प्रथम) वैष्णव धर्म के परम उपासक थे। उनके राज्य काल में सूरदास के पदों पर आधारित **सूर सागर** नामक सचित्र ग्रंथ लगभग 1640 ई. में ही चित्रित हो चुका जिसके चित्र जगदीश गाइन्का एवं गोपी कृष्ण कानोडिया संग्रह कलकत्ता में सुरक्षित है। महाराणा ने इसी काल में उदयपुर का विशाल जगदीश मंदिर सूत्रधार मुकुन्द नामक शिल्पी के मार्ग दर्शन

---

1. इत्यषि रामायणे महर्षि वाल्मिकी विरचिते दशरथ प्रमोदां नाम बालकाण्डेय समाप्तम् मिति सर्गा ॥ 89 ॥ संवत् 1706 समये मार्गशीर्ष मासे कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां तिथि गुरु वासरे मेदपाट देशे श्री उदयपुर नगरे महाराजाधिराज श्री श्री 5 जगतसींघ जी विजई राजे चितारो मनोहर आचार्य श्री जसवन्त लिखायो महात्मा हीरानन्द पुस्तक लिखती (प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम में सुरक्षित चित्र सम्पुट से)

हरमन ग्वेत्स—बुलेटिन ऑफ द बड़ोदा म्यूजियम एण्ड पिक्चर गेलेरी वोल्यूम - 7 भाग 1 पृष्ठ 53-66।

कार्ल जे. खण्डालावाला—मार्ग, वोल्यूम 4 नं० पृष्ठ 55।

से बनवाया। इस तरह चित्रकला एवं स्थापत्य कला के क्षेत्र में जो उपलब्धियां इस युग की रही वे निश्चय ही कला के क्षेत्र में सदियों तक पहचानी जा सकेगी।

इस काल के चित्रों का कलात्मक विवेचन करने पर लघु चित्रों की उत्कृष्ट परम्परा मिलती है। चित्रों में लाल, जोगिया, पीली पृष्ठभूमि में विपरीत रंगों का प्रयोग है। मुखाकृतियों में नाक की विशेष बनावट, गोल चेहरे, मछली की तरह आंखें, छोटे कद की स्त्रियाँ, अनेक प्रकार के पशु-पक्षी तथा जानवरों का चित्रण विशेष उल्लेखनीय हैं। पुरुषों की पोशाकें अकबर कालीन जामें व कढ़ाईदार पटका सहित है तो पगड़ियों में जहाँगीर एवं शाहजहां कालीन प्रभाव है, स्त्रियों के पहनाव में बहुधा चौली का अंकन, फूल-पत्तों की कढ़ाई, पारदर्शी कढ़ाई बाहों तथा हाथों में काले रंग के फुन्दके व धागे, चित्र में गति उत्पन्न करते हैं। सादे भवनों पर गुम्बजों की योजना, क्रमबद्ध पंखुडियों की बनावट आदि अलंकारिक स्वरूप विशेष उल्लेखनीय हैं।

1650 ई. के लगभग मेवाड़ के कई सामन्त दक्षिणी भारत के प्रान्तों में नियुक्त किये गये, जिन्होंने अपना कला प्रेम एवं लघु चित्रों के निर्माण में विशेष रुचि ली। मोहनसिंह शक्तावत औरंगाबाद में नियुक्त एक कलाप्रिय सामन्त थे। जिन्होंने विक्रम संवत् 1708 में **रस मंजरी** नामक चित्र सम्पुट की रचना करवाई[1] वे मेवाड़ की ओर से मुगल सेना में नियुक्त थे। इन्होंने मेवाड़ के चित्रकारों को आश्रय देकर औरंगाबाद में रसमंजरी चित्रित करवाया। इसी शैली में **भागवत पुराण** की कृति घाणेराव में भी चित्रित हुई जिस पर विद्वान् दक्षिण भारतीय प्रभाव मानते हैं **रस मंजरी** चित्र सम्पुट उदयपुर के श्वेताम्बर जैन मंदिर में सुरक्षित है। मेवाड़ चित्र शैली पर दक्षिणी भारतीय प्रभाव एक उल्लेखनीय घटना रही है। इस काल में मेवाड़ के कई राजपूत सरदार इन स्थानों में नियुक्त थे। अतः चित्रकला को भी वे उक्त सम्पुट की भांति पूर्ण प्रश्रय दे रहे थे।

कृष्ण भक्ति प्रधान वैष्णव धर्म का इस युग से विशेष प्रसार होता है। वैष्णव धर्म की उन्नत स्थिति समाज में बनाये रखने तथा उसके प्रभाव से कृष्ण गोपियों के प्रेम सम्बन्धों पर कई चित्र बनाये गये। इसके साथ-साथ रागमाला के चित्र सम्पुटों में नायक-नायिकाओं के चित्रों का निर्माण भी होता रहा। नायक-नायिकाओं को तत्कालीन लोक संस्कृति के अनुरूप चित्रित किया गया। दरबारी व देहाती जीवन, विवाह एवं नाच-गाने, राजमहलों, भवनों एवं युद्ध क्षेत्रों का प्रभावशाली चित्रण आदि से ये चित्र राजस्थान की तत्कालीन सामाजिक स्थिति सम्बन्धित आधार स्तम्भ बन गये।

महाराणा राजसिंह (1652–1680 ई०) भी अपने पिता के अनुरूप कला प्रेमी थे तथा वे चित्रकारों को पूर्ण रूप से प्रश्रय देते रहे। रामायण का **उत्तरकाण्ड** विक्रम संवत् 1710 (1653 ई.) इसी काल से चित्रित हुआ जो ब्रिटिश म्युजियम लन्दन में चित्रकार साहीबदीन की श्रेष्ठ कृति है। साहीबदीन इस राज्यकाल में भी कई चित्र सम्पुट चित्रित किये जिनमें **शूकर क्षेत्र महात्म्य** 1655 ई० सरस्वती पुस्तक भंडार उदयपुर में सुरक्षित है[2] तथा **भ्रमर गीत** 1959 ई० के चित्र प्रताप संग्रहालय उदयपुर एवं राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में सुरक्षित है। महाभारत के अधिकांश चित्र इनके राज्यकाल में ही चित्रित हुए जिनमें स्थानीय राजपूत क्षत्रीय के रूप में पाण्डवों का तथा अन्य जातियों के अनुरूप कौरव आदि बारीकी से चित्रित हैं। इसी काल में चित्रित **गीत गोविन्द** (1555-60 ई० लगभग) के चित्र कुंवर संग्रामसिंह संग्रह जयपुर में सुरक्षित (चित्र संख्या 35) चित्र **'प्रतीक्षा'**, कला एवं भाव पक्ष का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।[3] इसके ही एक अन्य चित्र में पृष्ठभूमि के रंगों की भिन्नता दिखा कर राधा व कृष्ण के रूठने की अभिव्यक्ति की गई है। उसमें

1. सरयू देसाई ललित कला नं. 15, पृ. 19
2. डा. गोपीनाथ शर्मा—द जर्नल ऑफ हिस्ट्री कांग्रेस, उत्तरप्रदेश 1959 पृ. 66।
3. लेखक द्वारा— अर्ली आर्ट ट्रेडीशन ऑफ मेवाड़ – कलावृत जयपुर, पृ. 80।

नीचे नदी का जल प्रवाह दोनों की एक आत्मा होना प्रकट करता है। यह चित्र इस काल की चित्रण पद्धति में भाव एवं कला पक्ष के उचित समन्वय को दर्शाता है। इन चित्रों में प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय बम्बई में सुरक्षित **गीत गोविन्द** की ही विकसित चित्रण परम्परा दिखाई देती हैं।

गीत गोविन्द का चित्रण कार्य इस काल में विस्तार से होने लगता है। प्रताप संग्रहालय उदयपुर में सुरक्षित एक बड़े चित्र-सम्पुट का गहन अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि इसके लगभग 224 चित्रों के चित्रण कार्य को चार कालों में विभाजित किया जा सकता है। जिसका प्रथम 30 चित्रों का भाग इस काल में चित्रित हुआ तथा द्वितीय भाग के 22 चित्र महाराणा जयसिंह के राज्य काल में निर्मित हुए इन सभी चित्रों में सुदृढ़ रेखांकन एव आकर्षक रंगाकन की विशेषाएं पाई जाती हैं। पेड़-पौधों व पत्तियों में गतिशील अंकन, मानवाकृतियों में सधा हुआ रूप एवं कुशल चित्रण विधान है। **राधा व कृष्ण का आलिंगन** संख्या 40 एवं **रति चित्र** 41 में यह स्वरूप स्पष्ट देख सकते हैं। इस भाग में मानवाकृतियों का आनुपातिक चित्रण विशेष उल्लेखनीय है। जबकि अन्तिम दो भागों में मानव शरीर का यह अनुपात इतना सही चित्रित नहीं हो पाया।

महाराणा जयसिंह (1680 से 1698 ई०) के राज्य काल में उच्च कोटि के धार्मिक चित्रों की रचना हुई उनमें भी **रामायण** तथा **महाभारत** के चित्र सम्पुट विशेष उल्लेखनीय हैं। इस काल में चित्रित रामायण का **उत्तर काण्ड** 1688 ई०[1] महाराजा जयपुर के संग्रह में सुरक्षित है तथा महाभारत के 3138 चित्रों का सम्पुट एवं **भागवत** के कई चित्र प्रताप संग्रहालय उदयपुर में सुरक्षित हैं इतनी संख्या में चित्रित इन चित्रों में मानवाकृतियां सर्वथा स्पष्ट रूपों में अंकित की गई है। यही विशेषताएं इस काल में निर्मित **किष्किन्धा काण्ड** के कुछ स्फुट चित्रों में मिलती है, जो महाराजा जोधपुर के संग्रह में सुरक्षित है। इसका प्रथम चित्र में **गणेश एवं उनकी प्रतिष्ठा करते हुए महाराणा जयसिंह** की कृति विशेष महत्त्वपूर्ण है। चित्र में सुदृढ़ रेखांकन एवं रंगांकन इस काल की प्रमुख विशेषताएं हैं। रामायण के उक्त **उत्तर काण्ड** एवं **किष्किन्धा काण्ड** के चित्रों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मेवाड़ में रामायण का चित्रण कराने की एक उत्कृष्ट परम्परा रही है जो इस काल में भी समाज में प्रचलित थी। रामायण के साथ ही इस काल में चित्रित भागवत का **गोवर्धन धारण** (1680 ई० लगभग) भारत कला भवन बनारस में सुरक्षित चित्र है। इसमें पहाड़ों के रंगीय परतों का अंकन बहुत ही आकर्षक है। गायों का चित्रण अपेक्षाकृत चाहे कम आकर्षक है किन्तु चित्र संयोजन में समानान्तर विस्तारीय विभाजन का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया है। ऐसे ही भागवत के अन्य चित्र **दावानल पान** (1700 ई० लगभग) प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय बम्बई तथा गोपी कृष्ण कानोड़िया संग्रह कलकत्ता में सुरक्षित है।

1700 ई० के लगभग मेवाड़ चित्र शैली में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया, महाराणा अमरसिंह द्वितीय (1698–1710 ई०) यद्यपि कला को अधिक प्रश्रय नहीं दे पाये फिर भी इस काल में कई रेखाचित्रों का निर्माण हुआ, जो संसार के विभिन्न चित्र संग्रहों में सुरक्षित है। इनके राज्याभिषेक के समय में जो हाथी पर बैठकर सवारी की गई वह **हाथी का रंगीन रेखा चित्र** (1700 ई०) राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में सुरक्षित है।[2] इसी प्रकार **गीत गोविन्द** का तीसरा भाग इस काल में भी चित्रित हुआ जिसका केवल एक चित्र प्रताप संग्रहालय उदयपुर में सुरक्षित है। इस चित्र में भयानक राक्षसों से युद्ध करते हुये रामावतार का चित्रण है जिसमें कृष्ण भी अकेले खड़े अंकित हैं राक्षस विभिन्न मुद्राओं में तीर खाकर जमीन पर गिरे हुये तथा रावण की आकृति का कुशल चित्रण तत्कालीन चित्र पद्धति का अच्छा उदाहरण है।

---

1. उत्तर रामायण रो पत्र ।। 282 ।। जे रामायण भणे ।। भणावे ।। ते विष्णु पद पावे ।। इति श्री रामायणे उत्तरकाण्ड समाप्त: लिषायतं भट्ट मुकंदेन ।। लिषितं भट्ट कृष्णेन ।। श्री रस्तु ।। श्री श्री श्री महाराणा श्री जयसिंहेन इदं कारितं ।। सं. 1745 वर्षे आश्वन सुदि पंचमी ।।
2. कार्ल जे. खण्डालावाला, डा. मोतीचंद, एवं प्रमोदचन्द—मिनिएचर पेंटिंग पृ. 36।

महाराणा संग्रामसिह् के राज्य काल (1710 ई. से 1734 ई.) में **गीत गोबिन्द** के सभी अन्य चित्र चित्रित हो गये । इस भाग में 171 चित्र हैं । सभी चित्र आकर्षक रंग योजना में राधा व कृष्ण के भाव भंगिमाओं को व्यक्त करते हैं किन्तु इनमें मानवाकृतियों का शारीरिक अनुपात उक्त चित्रों से कम आकर्षक है । इस चित्र-सम्पुट की पुष्पिका इसी भाग में मिलती है । इसमें रूपजी भट्ट संवत् 1771 (1714 ई.) के साथ उल्लिखित है[1] । इसी काल में चित्रकार जगन्नाथ विशेष उल्लेखनीय रहे वे स्वयं चित्रकार के साथ-साथ कवि थे । यही बात रूपजी भट्ट के लिये भी कही जा सकती है । जगन्नाथ द्वारा **बिहारी सतसई** 1719 ई. एवं (चित्र संख्या 42) **सुन्दर शृंगार** 1726 ई. जैसे महत्त्वपूर्ण सचित्र ग्रन्थ लिखे व चित्रित किये गये[2] इन चित्र सम्पुटो के चित्रण की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं :–

1. चित्रों में आकृतियां अपेक्षाकृत छोटी, पेड़-पौधे गतिपूर्ण एवं स्पष्ट अंकित होना ।

2. रंगों का संयोजन परम्परागत है, पृष्ठभूमि में हरे तथा नीले रंगों की प्रधानता तथा आकर्षक रंगों के प्रयोग से आकृतियों में स्पष्ट उभार आ गया है ।

3. काम देव को प्रत्येक चित्र में चित्रित किया है । जहां प्रेम भाव एवं काम-क्रीड़ा है, वहां कामदेव का कमान अधिक तेजी से खींचा हुआ चित्रित किया तथा जहां काम भाव कम है, वहां तेजी भी कम बतायी है (चित्र संख्या 40 एवं 41) इस प्रकार **गीत गोबिन्द** में रति भाव सम्बन्धित कृष्ण की प्रेम क्रीड़ाओं में यह अभिप्राय सभी चित्रों मे प्रयुक्त हुआ है ।

इसी काल में मन्त्री बिहारीदास पंचोली ने फरुकशीयर से अच्छी मित्रता की थी, फलस्वरूप इन्हें मन्दसोर व मालवा का भू-भाग मिला ।[3] बादशाह ने कुछ सहेलियां भी भेंट स्वरूप दीं, जिनके लिए एक वाटिका बनाई गई वह "सहेलियों की बाड़ी" नाम से प्रसिद्ध है । इस काल में इन सहेलियों के अनुरूप ही चित्रों में कुछ लम्बी आकृतियां चित्रित हुईं । गोल मुखाकृति व लम्बी नाक वाली नारी आकृतियों आदि विशेषताओं को महाराणा के व्यक्तिगत संग्रह में सुरक्षित चित्र **खेजड़ी पूजन** (1710 ई.), **जेटियों की कुश्ती** 1720 ई. (चित्र संख्या 47) एवं **जग मन्दिर** के वृहद् चित्रों में देख सकते हैं ।

1. **खेजड़ी पूजन** राज प्रासाद संग्रहालय उदयपुर में सुरक्षित 1710 ई. के इस चित्र में एक शामियाना हींगलू रंग में अंकित है । ऊपर की ओर कई तोपें चित्रित हैं तो एक तरफ महाराणा बड़े जुलूस से वहां आ रहे हैं तथा शामियाना में कई लोग बैठे हैं । मध्य में सफेद पृष्ठभूमि देकर मानवाकृतियों को, संयोजित विषयवस्तु में सुन्दर ढंग से उभारा गया है, 52″ × 27″ आकार का यह चित्र, कला की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है ।

2. **जेठियों की कुश्ती** 1720 ई. के इस चित्र में महाराणा महल के बाहर नीचे की बैठक में बैठे चित्रित हैं । पृष्ठभूमि में महलों का सौन्दर्यपूर्ण अंकन है । सामने के चौक में कई जेठी कुश्ती लड़ रहे हैं (चित्र सं. 47) इसमें त्रिपोलिया की ओर कई हाथी खड़े अंकित हैं । दोनों ओर मनुष्यों

---

1. संवत् 1771 वर्षे आषाढ़ सुदि 13 रीवौ ॥ श्री मन्महारांजाधिराज महारांणा श्री संग्रामसिह जी इदं पुस्तकं करापितं ॥ लिखापितं भट्ट रूपजी ॥ लिखितं मेदपाट ज्ञातीय भटट रूपजिह ॥ शुभं भवतु ॥ (प्रताप संग्रहालय उदयपुर में सुरक्षित चित्र सम्पुट से) ।
   उक्त चित्र सम्पुट के विषयवस्तु पर श्री बृजमोहन सिह परमार, अधीक्षक राजकीय संग्रहालय जोधपुर का कार्य प्रशंसनीय है ।
2. सत्रह से जु छहोत्तरे चेत्र मास ऋतुराज । कृष्ण पक्ष गुरु पचमी लिख्यो जु चित्र समाज ॥
   महाराणा संग्राम नृप सरसकुलहसकाल । कीनो चित्रित सतसई जगन्नाथ कविराज ॥
   सचित्र सतसई चित्र सम्पुट सरस्वती पुस्तक भण्डार उदयपुर ।
   जो रस चरचा चित्र को जानत सरस विचार ।
   चिर जीओ संग्राम नृप जगन्नाथ आधार ॥
   उक्त संग्रह में ही सुरक्षित सुन्दर शृंगार चित्र सम्पुट पृ. 218 ।
3. रा. ब. सोमानी—हिस्ट्री ऑफ मेवाड़, पृ. 325 ।

की पंक्ति खड़ी है। जो चित्र को एक इकाई में बांधती है। 34″ × 29″ के ग्राकार की यह भव्य कृति राज प्रासाद संग्रहालय उदयपुर में सुरक्षित है।

3. **जगमन्दिर में मनोविनोद– 1720 ई.–** के इस चित्र में महाराणा संग्रामसिंह जी को राणियों के साथ जगमन्दिर में कई क्रियाग्रों के साथ चित्रित किये हैं। एक जगह डोलर में भूल रहे हैं वहीं पृष्ठभूमि में जगमन्दिर महल का जो चित्रण है उसमें रेखाग्रों की बारीकी का ग्रंकन विशेष उल्लेखनीय है। (चित्र संख्या 44) यह चित्र कुंवर संग्रामसिंह संग्रह जयपुर में सुरक्षित है। चित्र में विभिन्न प्रकार की पोशाकों में मानव ग्राकृतियों तथा नारियों को चित्रित किया गया है जिनमें विभिन्न रंग के साड़ियों की पहनावे बहुत ही ग्राकर्षक हैं। इस चिच में मानव ग्राकृतियों को ग्रधिक ठिंगना चित्रित किया है।

महाराणा संग्रामसिंह के राज्य में ही 1723 ई. में चीताखेड़ी गांव में चित्रित गीत गोविन्द एवं कवि प्रिया के चित्र सम्पुट भी चित्रित हुये जो प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान उदयपुर में देखने को मिलते हैं। इनमें बारीकी पर ध्यान न देकर सुन्दर रंगों के मिश्रण पर ग्रधिक ध्यान दिया गया है। महाराणा जगतसिंह द्वितीय (1734–1751 ई.) ग्रपने पिता म. संग्रामसिंह जी की मृत्यु के पश्चात् गद्दी पर बैठे उनके राज्यकाल मे कई चित्र सम्पुटों की रचना हुई। **'मुल्ला दो प्याजा' पृथ्वीराज रासो, मालती माधव, गजेन्द्र मोक्ष** ग्रादि उल्लेखनीय सम्पुट है। ये चित्र सम्पुट प्रताप संग्रहालय उदयपुर में सुरक्षित है। देखें परिशिष्ट संख्या 1 इस काल के कुछ फुटकर चित्र इस प्रकार हैं:–

1. **महाराणा रणवास में ग्रटखड खेलते हुए :** यह मेवाड़ के लघु चित्रों में एक महत्त्व-पूर्ण उच्च कोटि की कलाकृति है इसमें महाराणा ग्रपना मुखियापन निभाते हुए केन्द्र में चित्रित किये गये हैं। (चित्र संख्या 49) मेवाड़ के शैलीगत चित्रों में यह एक प्रतिनिधि चित्र है जिसे 1743 ई. में चित्रकार जीवा द्वारा चित्रित किया गया। इसमें रानियों की ग्राकृतियों को पृष्ठभूमि में हरा रंग देकर पर्याप्त रूप से उभारा गया है। चित्र पुरषोत्तम कन्हैयालाल सोनी संग्रह उदयपुर में सुरक्षित है।

2. **दुश्चरित्रा नारी :** यह मानवीय गुणों से संबंधित एक उत्कृष्ट चित्र है। यह चित्र 1745 ई. में केलवा के गंगाराम वल्द ग्रमरा ने चित्रित किया। इसमें तत्कालीन सामाजिक कुकृत्यों का मौलिक चित्रण है। चित्र में स्त्री को किसी गैर के साथ देख उसका क्रोधित पति तलवार से पुरुष का वध करने पश्चात् पत्नी को मारने की मुद्रा में है। स्त्री क्षमादान चाह रही है। रात्रि की इस घटना से जागृत ग्रास-पास के पड़ौसी ग्रपनी-ग्रपनी खिड़कियों से देख रहे हैं। कुट्टनी भी बाहर खड़ी तन्मय होकर इस घटना से डरी हुई है। चित्र संख्या 51 कुंवर संग्राम सिंह संग्रह जयपुर की उल्लेखनीय कृति है।

3. **शेर एवं सूग्रर का संघर्ष तथा उनकी शिकार :** यह चित्र महाराणा जगतसिंह कालीन चित्रकार नंगा की श्रेष्ठ तिथियुक्त (1744 ई) कृति है[1] चित्र के केन्द्र में ज्यामितीय ग्राकार से विषय वस्तु को सफेद पृष्ठभूमि में उभारने का चित्रकार ने सफल प्रयत्न किया है तथा उपरी भाग में महाराणा निशानेबाजी करते हुए दिखाये हैं चित्र में एक सूग्रर उनकी तरफ उछलने में प्रयत्नशील है। यही चित्र के ग्राकर्षण का केन्द्र है। यह चित्र लखनऊ के प्रादेशिक संग्रहालय में सुरक्षित है।

---

1. श्री महाराजाधीराज माहाराणाजी श्री जगतसींघ जी री सूरत रो पनों कीसन ओदी पधारया हजूर सहेल्या सूर पै चोट करता थका डावी बजू बाबों तकतेसींघजी ने भाई नाथ जी वकतसीष जी सरदार सींघजी भारत सींघ जी कलमी चितारो नंगो भगवान रो आपनो श्रीजी अगल्यों कोदी जणो दीन नीजर हुओ राज श्री हजूर श्री देवणी पोस सुदी 4 श्री शलभ 1801 वरषे।"
वी. पी. द्विवेदी —जर्नल ऑफ इण्डियन सोसाइटी ओरियन्टल आर्ट वाल्यूम 8 पृ. 48।

4. सर्वत विलास में मनो-विनोद : 1751 ई. का यह चित्र बड़ौदा संग्राहलय में सुरक्षित है। इसके पृष्ठभूमि में पेड़ों अंकन तथा विभिन्न स्थानों में महाराणा नारियों के साथ भावपूर्ण मुद्राओं में दिखाये गये हैं। चित्र राजसी ठाट-बाट का अच्छा प्रदर्शन करता है महाराणा शामियाने में बैठे तीन नारियों का नृत्य देखते हुये अंकित हैं तथा उक्त चित्र की भाँति बड़े भी अंकित हैं। अन्य मानवाकृतियां चित्र में लयबद्धता दर्शाती अंकित है।

5. धींगा गनगौर री सवारी : 1745 ई. के लगभग चित्रित यह मेवाड़ में गणगौर की सवारी का प्रतिनिधि चित्र है। देखें चित्र संख्या 46 इसमें रात्रि के प्रथम पहर में होने वाली आतिशबाजी महाराणा का नाव में विचरण करना सड़कों गलियों तथा तत्कालीन भवनों में मानवीय क्रीड़ाओं के चित्रण आदि का चित्रकार ने सफलता से चित्रण किया है। 28″ × 28″ आकार का यह चित्र राजप्रासाद संग्रहालय उदयपुर में सुरक्षित है।

6. हाथियों की स्वच्छन्द क्रीड़ाएं : 1750 ई. के लगभग चित्रकार नंगा की यह उत्कृष्ट कृति है। चौगान में हाथियों की लड़ाई का इसमें सफल अंकन है। पृष्ठभूमि हल्के नीले रंग की है। इसके ऊपर काले रंगों में हाथियों की आपसी क्रीड़ाओं एवं उनकी लड़ाई का दृश्य है। महाराणा का भी मध्य स्थलों पर अपने राज-दरबारियों सहित घोड़ों पर बैठे हुये सवारी में चलना दो जगह अंकित है। मध्य भाग में एक हाथी अपने एक पांव पर खड़ा उन्मुक्त मस्ती को प्रकट करता दिखाया है यह चित्र $40\frac{1}{2}$″ × 29″ के आकार में एक उत्कृष्ट चित्र है। (चित्र संख्या 50) जो राज प्रासाद संग्रहालय, उदयपुर में सुरक्षित है।

7. वृहद दन्त हाथी : 1750 ई. के लगभग ही उक्त चित्र के समरूप चित्रित यह सम्मुख हाथी का अंकन चित्रकार नंगा की श्रेष्ठ कृति है। जिसमें बारीक रेखांकन युक्त आकृति को उभारने की कुशल पद्धति का प्रदर्शन है। (चित्र संख्या 45) यह चित्र दामोदर सोनी संग्रह उदयपुर में सुरक्षित है।

उदयपुर से जालीर भेजा विज्ञप्तिपत्र : महाराणा जगतसिंह जी के राज्यकाल में एक विज्ञप्ति पत्र उदयपुर के विभिन्न मार्गों एवं प्रासादों का तैयार करके जालौर भेजा गया। यह एक लम्बे कागज का लपेटफलक है, यह 18 फीट 5 इन्च लम्बा तथा 5 इन्च चौड़ा है जिसमें तत्कालीन सभी सामाजिक प्रवृत्तियों का आकर्षक रूपों में चित्रण हुआ है। इसकी शैली अनुसार यह चित्रकार नंगा तथा उसके सहयोगियों द्वारा चित्रित हुआ प्रतीत होता है। इसके आकार एवं रंग योजना में हरा भाटा, हिंगलू व सफेद रंगों के मध्य कहीं कहीं पीले लाल हरे तथा नीले रंगों के प्रयोग है। इसमें राज प्रासादों व मन्दिरों हेतु बारीकी का अंकन किया है मानवाकृतियां ठिंगनी किन्तु सुन्दर लयबद्ध रूपों में अंकित है। इसका चित्रण राज प्रासादों से शुरू किया है, जगदीश मन्दिर, बाजार का दृश्य, माजी की बावड़ी, चन्द्र प्रभा स्वामी मन्दिर, मस्जिदें, हाथी पोल तथा बाहर चौगान का कोना जहां हाथियों की लड़ाई आदि के आकर्षक प्राचीन दृश्य अंकित हैं। बाजार में महाराणा घोड़े पर जाते दिखाये हैं। चमर व मोर छाल लिये छडीदार चल रहे हैं। मार्ग में सभी तत्कालीन व्यवसाइयों का अच्छा चित्रण है। पान बेचती हुई तम्बोलिनें, फूल बेचती मालिनें, सब्जी बेचने वाली महिलाएं, पण्डित, ज्योतिषी, सुनार, लुहार, दूध हिलाते हलवाई आदि का बहुत ही आकर्षक एवं मौलिक चित्रण हुआ है बाजार में चलने वाली युवतियों के पहनाव तत्कालीन मेवाड़ी जन जीवन की वास्तविक गतिविधियों का अच्छा परिचय देते हैं। यह विज्ञप्तिपत्र चित्रकला की दृष्टि से विशेष महत्त्व का है तथा बडौदा संग्रहालय में राजस्थानी चित्रकला का उचित प्रतिनिधित्व कर रहा है। (चित्र संख्या 48 ब)

उपरोक्त चित्रों को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि महाराणा जगतसिंह द्वितीय को चित्र-कला कार्यों की विशेष रुचि थी। इस काल में महाराणा को जयपुर के राजघराने के उत्तराधिकार युद्ध में भी बहुत धन खर्च करना पड़ा था। माधोसिंह उनके भानजे थे और सवाई जयसिंह द्वारा किये

इकरार के अनुसार जयपुर का शास उन्हें ही बनवाना था । अतः जयपुर की राज्य गद्दी उन्हें न देने पर मराठाओं से मिलकर महाराणा ने लाखों रुपये खर्च किये तथा राज्य गद्दी दिलाई । फलस्वरूप चित्रों के अधिकाधिक चित्रण की इच्छा होते हुये भी चित्रण कार्य नहीं करवा पाये ।[1] महाराणा की मृत्यु 1751 ई. में हुई उनके बाद उनके पुत्र प्रतापसिंह (1751–1755) गद्दी पर बैठे । उनके राज्यारोहण के पश्चात् विद्रोह की एक शृंखला शुरू हो गई । उसमें मुख्य हाथ बागोर के ठाकुर नाथजी का था । प्रतापसिंह के अधिकांशतः इस विद्रोह में रहने से उस काल में चित्र बहुत कम बने जो कुछ चित्र उपलब्ध हुये हैं उनमें न्यूयार्क के कोल्फ बैंकिग संग्रह में **महाराणा झूला झूलते हुए** उत्कृष्ट चित्र है । दूसरा चित्र **महाराणा प्रतापसिंह** चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में सुरक्षित व्यक्ति चित्रण पद्धति में श्रेष्ठतम कृति है ।[2] तत्पश्चात् इनके पुत्र राजसिंह (द्वितीय) (1754–1761 ई.) गद्दी पर बैठे । इस काल के चित्र कुशल अंकन पद्धति के अच्छे उदाहरण हैं :—

गोगुन्दा शादी में पधारे : महाराणा राजसिंह 1753 ई. में गोगुन्दा शादी में पधारे उस घटना का इस चित्र में राजसी ठाट-बाट से अनोखा चित्रण प्रस्तुत किया गया है । यह चित्र 45″ × 28½″ लम्बे आकार के कागज पर चित्रित राजप्रासाद संग्रहालय, उदयपुर में सुरक्षित कला की एक महत्त्वपूर्ण निधि है । इसके चित्रकार शिवदयाल एवं अल्लाबगस थे,[3] जिन्होंने सम्मिलित चित्रण कार्य किया, यहउस काल की चित्रण पद्धति का एक उत्कृष्ट प्रतिनिधि चित्र है । (चित्र संख्या 54)

दशहरा समारोह : 1955 ई. में चित्रित चित्रकार शाहजी मिया की एक उत्कृष्ट कृति है इसमें महाराणा राजसिंह स्वयं नवरात्रि पर भैंसें की बली चढ़ाते हुये तथा घोड़े पर सवार होकर निशानेबाजी के दृश्य प्रस्तुत करते चित्रित हैं (चित्र संख्या 55) में कई दरबारी एवं ठाकुर खड़े दिखाये हैं व मध्य में देवी का थानक सफेद रंग से अंकित दृष्टि को बांधने के साथ ही चित्रफलक में केन्द्रत्व स्थापित करता है यह चित्र कुंवर संग्राम सिंह संग्रह जयपुर में सुरक्षित है ।

श्रीजी चीणरी नवी छत्री में बिराजे : 1746 ई. का महाराणा राजसिंह कालीन बारीक अंकन पद्धति का उत्कृष्ट चित्र है यह चित्र मलूकचन्द के पुत्र रघुनाथ द्वारा चित्रित[4] वास्तविकतावादी सूक्ष्म अभिव्यक्ति है । चित्र में काले धरातल पर सफेद रंगों के संयोजन में महलों एवं झरोखों का चित्रकार ने विशेष कलात्मक ढंग से अंकित किया है । मानवाकृतियां बहुत छोटी हैं, इसमें राजा रानी के दाम्पत्य प्रेम को दर्शाया है । यह चित्र श्री कुंवर संग्रामसिंह संग्रह जयपुर में सुरक्षित है (चित्र संख्या 56) ।

महाराणा अरिसिंह 1761–73 ई. महाराणा राजसिंह के उत्तराधिकारी हुए तो जागीरदारों का एक वर्ग इनका विरोधी हुआ, जिसने फितूरी रतनसिंह को मेवाड़ का महाराणा माना, उनमें देवगढ़ के रावत मुख्य थे । देवगढ़ वालों का दर्जा उन दिनों काफी बढ़ा हुआ था, वहां की राजकुमारी जयपुर के माधोसिंहजी से ब्याहने पर जयपुर से बहुत अच्छे सम्बन्ध हो गये और महाराणा के आदेशों की परवाह न कर मेवाड़ के विरुद्ध जयपुर से सैनिक सहायता प्राप्त करते रहे ।[5] उज्जैन के युद्ध में उन्होंने मराठाओं से खुली सहायता ली जहां महाराणा को सेना की हार हुई । अमर-

---

1. रा. व. सोमानी – हिस्ट्री ऑफ मेवाड़, पृ. 352 ।
2. ओ. सी. गांगोली—सम राजस्थानी पोर्टेट्स, मार्ग भाग 9 मार्च 1958 नं. 2 पृष्ठ 22–24 ।
3. चित्र के पृष्ठ भाग की पुष्पिका में "सं. 1810...चितारो स्वो पिधारो, चितारो, दयाल चतरा रों, अलीबगस प्यारा रो" के उल्लेख है ।
4. श्री महाराजाधीराज महाराणा जी श्री राज सींघ जो रो सूरत रो पानों: राज लोक रा बारा रो : श्री जी चीणी रो नवी छत्र साली रा गोषड़ा महेल (˙) प हजूर राज लोक चन्दणी उपरे श्री जी उभा राज लोक है मेहरी घटा चड़ी बीजली चमकती रो नमाशों देखावेता थका पानों पोस बद 4 रो 1813 श्री हजूर नीजर हुये कलमी चतारो रुगनाथ मलुक चन्द रो की जरा रुपीया 4 (चार भर पाहुया पोस सुद 10 सम्वत 1813 वर्ष म्हे ओरी उमा(पृ. भाग की पुष्पिका) ।
5. एनल्स एण्ड एन्टिक्वीटीज आफ राजस्थान प्रथम, भाग पृ. 221 ।

चन्द बड़वा महाराणा का प्रधान था उसने बड़ी हिम्मत से उदयपुर को घेरने पर मराठों का सामना किया। मेवाड़ को इसी काल में गोडवाड एवं मंदसोर जिले का भाग अपने अधिकारों से खोना पड़ा, इतना होते हुए भी महाराणा ने अपना कला प्रेम बनाये रखा। कई शिकार के चित्र इस काल की उत्कृष्ट कला परम्परा को दर्शाते हैं।

1. **महाराणा अरिसिंह चांदनी रात में :** 1763 ई. से चित्रकार शिवा द्वारा निर्मित[1] सौम्य रंगों के साथ सफेद रंग के संयोजन की यह एक उत्कृष्ट कृति है इसमें महाराणा प्रेयसी के साथ चान्दनी रात में भ्रमण कर रहे हैं (चित्र सं. 57) यह चित्र पुरषोत्तम कन्हैया लाल सोनी संग्रह उदयपुर में सुरक्षित है।

2. **महाराणा अरिसिंह की हाथी पर सवारी :** 1761 ई. चित्रकार नंगा की उत्कृष्ट कृति है, जो बम्बई के एक निजी संग्रह में सुरक्षित है। चित्रकार नंगा महाराणा जगतसिंह द्वितीय के राज्य काल से ही कार्य कर रहे थे।

3. **अरिसिंह पुत्र को गोद में लिये बैठे :** इस काल का ऐतिहासिक चित्र भारत कला भवन, बनारस में सुरक्षित 1763 ई चित्रकार नंगा की उल्लेखनीय कृति है। इसमें महाराणा बाहर आंगन में बैठे हुए दिखाये गये हैं तथा उनके पीछे धावाई रूपजी बैठे है।[2] जो पुष्पिका में भी स्पष्ट है।

4. **महाराणा रानी को गोद में लिये हुए :** 1761 ई. में चित्रित चित्र पुरुषोत्तम कन्हैयालाल सोनी संग्रह, उदयपुर में सुरक्षित है यह चित्रकार शिवा द्वारा निर्मित श्रेष्ठ चित्र है। चित्रकार शिवा महाराणा राजसिंह कालीन ख्याति प्राप्त चित्रकार थे इनके द्वारा निर्मित चित्रों में मुखाकृति (चित्र सं. 58) का भावात्मक अंकन उल्लेखनीय है।

5. **महाराणा अरिसिंह का जगमन्दिर में मनोविनोद**—1766 ई. में चित्रित राज प्रासाद संग्रहालय, उदयपुर में सुरक्षित यह आकर्षक कृति है। इस चित्रफलक में महाराणा को तीन स्थानों पर अंकित कर चित्रकार ने बहु आयामी चित्र संयोजन का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया है, पिछोला झील के मध्य इन महलों में हरा-भरा वातावरण प्रस्तुत किया है सुनहरे रंगों का प्रयोग एवं सोम्य रंग योजना इस चित्र की महत्त्वपूर्ण विशेषतायें हैं। पेड़ों के झुंड और रंग-बिरंगी पोशाकों में नारियों का अंकन विशेष कलात्मक है। चित्र के अग्रभाग के पानी में नाव का अंकन एवं सीढियों पर मगर मांस खाते हुये चित्रित हैं। इस चित्र में ठण्डी रंग योजना एवं राजसी ठाट बाट का अच्छा समन्वय है (चित्र सं. 59)।

6. **बाघ का शिकारः**—यह चित्र 1761 ई. में चित्रकार शाहजी द्वारा निर्मित एक श्रेष्ठ कलात्मक कृति है जो कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर में सुरक्षित है। इस चित्र की पुष्पिक[3] में कई दरबारियों के नाम विवरण सहित उल्लेखित हैं। (चित्र सं. 62) इसमें शेर का शिकार बिना मचान बांधे ही करने का दृश्य दिखाया है तथा एक ही शेर को अलग-अलग स्थितियों में चित्रित कर चित्रकार ने बहु आयामी फलक संयोजन का विधिवत प्रयोग किया गया है। चित्र में बारीक रेखांकन एवं रंगों का संयोजन विशेष उल्लेखनीय है।

---

1. "पानो। श्री महाराजाधीराज महाराणाजी श्री अरसींह जी री सूरत रो पानो चानणी रो श्री जी ऊवा थका बुगल में फुतली चन्दवतावता थका कलमी चीतारे सीवे नीजर कीदो पानो ओरी जमा संवत 1820रा आसाढ़ वीद 14।
2 महाराजाधिराज महाराणा श्री अरिसिंह जी रो सूरत रो पानों धावाई रूपजी बेठा थका चितारा नंगा सं. 1818 री सावण सुद 3।
3. पानो। महाराजाधीराज महाराणाजी श्री अरसीहजी री सूरत रो नार ऊपरे गोली वावता थका घोड़ै चढ बादर असवार श्री सरदार श्री हजूर नार उपरे बरछी बावता थका बीगत काकोजी, बागजी, बाबोजी बपतसींघजी, बाबोजी सगतसींघजी धायभाई रूपजी धायबाई कीकोजी पानो कलमी चीतारा शाहाजी रो कीदो थको बीने प्रोहेत अनोप राम रे पातों ओरी जमा महा सुद 8 संमत 1818 वर्षे।

7. **रनवास में होली:**—1766 ई० में निर्मित महाराणा अरिसिंहजी का यह एक महत्त्वपूर्ण चित्र है जिसमें होली के रंगों व गुलाल के कण-कण अंकित करने की विशेष पद्धति है। इसमें अलग-अलग रंग कणों के धब्बों की पद्धति देखते हैं। यह पद्धति इस काल के कई चित्रकारों द्वारा निर्मित चित्रों में मिली है। सम्भवतः यह चित्र चित्रकार शिवा द्वारा चित्रित किया गया है। इस चित्र में रानियों तथा दासियों के स्वच्छन्द भावों का मार्मिक चित्रण है। (चित्र सं 63)

8. **फतेह खां द्वारा घोड़े को प्रशिक्षण:**—चित्रकार शिवा द्वारा 1766 ई. में चित्रित (चित्र संख्या 64) एक आकर्षक चित्र है जिसमें घोड़े का नयापन दिखाने के भावों की एक महत्त्वपूर्ण विशेपता है। यह चित्र कुंवर संग्रामसिंह संग्रह जयपुर में सुरक्षित है। इस चित्र के पृष्ठ भाग में चित्रकार की तिथियुक्त पुष्पिका है।[1]

चित्रकार बीका द्वारा **शिकार को जाते हुए** (1761 ई.) तथा भोपा द्वारा 1765 ई. में चित्रित **हिरण का शिकार** (चित्र सं. 60) इस शैली के अच्छे उदाहरण हैं जिनकी स्थानीय शैलीगत विशेपतायें एवं चित्रण प्रक्रिया उल्लेखनीय है।

9. **हिरणों का शिकार:**–1766 ई. की कला में बारीक अंकन पद्धति का एक उदाहरण है, जो चित्रकार जुगरसी की अपनी मौलिक चित्रण पद्धति का अच्छा उदाहरण है चित्र के विषय वस्तु में शिकारी ने एक ओर हिरणी को बांध रखी है। हिरण जब हिरणी के पास यौन सम्बन्ध हेतु आता है, तभी उसे निशाना बनाकर मार दिया जाता है। यह शिकार की एक विशेष पद्धति इस चित्र में मिलती है चित्र में हिरणियों की आतुरता, प्राकृतिक दृश्य, झरने पर्वत और उन पर छोटी-छोटी झाड़ियों का अंकन इस प्रभाव को ओर अधिक बढ़ाता है (चित्र सं. 61)।

10. **स्वर्ण डण्डिका से शावकों का शिकार:**—1766 ई. में चित्रित यह चित्रकार शिवा की श्रेष्ठ कृति है (चित्र संख्या 65) इसमें शिकारी कुत्तों का तेजी से भागने का सुन्दर चित्रण है, चित्र में खरगोश का वध किया जा रहा है यह चित्र कुंवर संग्रामसिंह संग्रह जयपुर में सुरक्षित है। शिकार हेतु देवगढ़ में इसी प्रकार के कुत्तों के दृश्य अंकित हुए हैं।

इस प्रकार इस काल में अधिकांश शिकार के चित्र बने, चित्रकार नंगा, शिवा, शाहजी, भोपा, बीका एवं जुगरसी उल्लेखनीय चित्रकार रहे हैं। इनके चित्रों में बारीकी की अधिकता है। शिकार के चित्रों में पृष्ठभूमि का सूनापन दिखाया है तथा झाड़ियों के अंकन में रूई के रंगीन धब्बों की विशेष पद्धति अपनाई है। महाराणा हम्मीर अरिसिंहजी के उत्तराधिकारी थे। उन्होंने बहुत कम समय तक राज्य किया। अतः इनके राज्यकाल में चित्रित चित्रों के उदाहरण उपलब्ध नहीं हो पाये हैं।

महाराणा भीमसिंह (1778-1828 ई.) ने लम्बे समय तक राज्य किया। इनके राज्यकाल में मराठाओं का आक्रमण हुआ। कालांतर में होल्करों ने भी मेवाड़ में आक्रमण करके नाथद्वारा, कांकरोली व ऋषभदेवजी के देवालयों में लूटमार की, इससे इन स्थानों में कलाकृतियों का निर्माण अधिक नहीं हो पाया। किन्तु विभिन्न ठिकानों एवं राज प्रासादों में चित्रण कार्य हुआ वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। उदयपुर में **कृष्ण निवास** एवं सेठजी की हवेली के भित्ति चित्र अपने नवीन कला प्रभावों में विशेष उल्लेखनीय है। कृष्ण निवास के चित्रों में महाराणा का एकलिंग दर्शन में जाना, महाराणा का अपने पुत्र अमरसिंह के साथ सवारी आदि में भ्रमण आदि विषय वस्तु है। इस काल के चित्रकारों में घासी[2] नामक चितेरे की कृतियां ब्रिटिश म्यूजियम लन्दन के कर्नल टाड संग्रह में सुरक्षित है।

कर्नल टाड एवं महाराणा का दरबार:—चित्र विशेष कलात्मक ढंग से चित्रित हुआ है टाड महोदय सन् 1818 में मेवाड़ में आये थे तथा लगभग 4 वर्ष रहे। प्रस्तुत चित्र में महाराणा के दरबार

1. "पानों ओरी जमा संवत 1823 रा जेठ बोद 13 चित्रा सीवारों कीदो"।
2. रोबर्ट स्केलेटन—रूपलेखा, जुलाई 1959, वोल्यूम 30, नं. 1 व 2 पृ. 1।

में उनके ग्राने का ग्रच्छा उदाहरण है। राज प्रासाद संग्रहालय उदयपुर में इस काल के कई चित्र हैं। इस चित्र की पृष्ठभूमि सफेद है। मानवाकृतियों के ग्रंकन एवं बीच में बैठे हुए महाराणा की ग्राकृति पर्याप्त ग्राकर्षक हैं। (चित्र सं. 77)

हाथियों का फाग खेलना—इस काल का कालात्मक चित्र है इसमें महल के चौक के मध्य में हाथियों को फाग खेलते दिखाया गया है। जिसमें त्रिपोलिया के बाहर भी कई दर्शक हैं। महल के नीचे बैठकों में भी भीड़ खड़ी ग्रंकित है। कई हाथियों पर राज्य के मुखिया बैठे, गुलाल उड़ा रहे हैं। सारी पृष्ठभूमि गुलाल से बसंती हो रही है। यह चित्र महाराणा उदयपुर के राजमहल में सुरक्षित है। (चित्र संख्या 68)

महाराणा भीमसिंह एवं राजकुमार— उक्त चित्र की ही शृंखला में यह केन्द्रीय इंगिती-करण युक्त चित्र संयोजन का एक ग्राकर्षक उदाहरण है चित्र में बहु ग्रायाम दृष्टि से विषय को चित्रित किया गया है इसमें त्रिपोलिया से गणेश ड्योढी तक के राज प्रासादों का संयोजन किया है किन्तु दर्शक की दृष्टि को चित्र के मध्य भाग में केन्द्रित करने का सफल प्रयास है। विषय वस्तु सरल रेखाग्रों एवं सपाट रंगीन सतहों से चित्र के सौन्दर्य को उभारा है। मध्य भाग में महाराणा भीमसिंहजी ग्रपने राजकुमार ग्रमरसिंह को घोड़े पर विचरण करवा रहे हैं ग्रौर सामने महाराजकुमार जवानसिंहजी घोड़े पर ग्रासीन हैं तथा राजदरबारी ग्रपनी व्यवस्था ग्रनुसार खड़े हैं चित्र में तत्कालीन ग्रनु-शासन एवं राजसी ठाट-बाट का उचित परिचय मिलता है साथ ही घोड़ों के नाम 'ग्रलबला' एवं 'चतरचमन' ग्रादि का चित्र पर ग्रंकित विवरण[1] उस काल की समृद्धि के द्योतक हैं यह चित्र 1780 ई. के लगभग की प्रचलित चित्रण पद्धति का उत्कृष्ट उदाहरण है जिसको फलकीय सयोजन का भी रेखांकन व्यक्त किया गया है। (चित्र सं. 71) चित्र कुँवर संग्रामसिंह संग्रह जयपुर की सुरक्षित निधि है।

महाराणा भीमसिंह की मृत्यु के पश्चात् महाराणा जवानसिंह (1828–1838 ई.) गद्दी पर बैठे उनके काल में चित्रकला का प्रचलन ज्यों का त्यों कलात्मकता लिये हुये चलता रहा।

भागवत श्रवण—चित्र इस काल की श्रेष्ठ कृति है, जो उदयपुर राजमहल के बाड़ी महल में प्रदर्शित हैं। भागवत् श्रवण के इस दृश्य में कई मुख्य जागीरदार संत ग्रौर दर्शक बैठे हैं। इसमें तत्कालीन स्थापत्य कला का प्रभावपूर्ण चित्रण है। 53" × 35" के इस चित्र में केन्द्रीय संयोजन बड़ी कुशलता से किया गया है। चित्र संयोजन ग्राधुनिक कला सन्दर्भों में विशेष उल्लेखनीय है। (चित्र सं. 78)।

(2) **उदयपुर विज्ञप्ति पत्र**—वि. सं. 1887 (1830) में एक 1 फीट चौड़ा 70 फीट लम्बा विज्ञप्ति पत्र चित्रित हुग्रा। इसमें उदयपुर के कई दृश्य चित्रित हैं। शहर के कई मन्दिर, मस्जिद व दुकानें सामान्य जन समूहों का ग्रच्छा चित्रण है। इसमें केप्टिन कफ नामक पोलिटिकल ऐजेन्ट की सवारी का दृश्य प्रस्तुत किया गया है।[2] साथ ही पिछोला झील में गनगोर के ग्रवसर पर शाही ठाठ-बाट का उत्कृष्ट चित्रण है। इस पत्र में महाराणा भीमसिंह कालीन समाज की गतिविधियों का ग्रच्छा चित्रण हुग्रा है। (रेखानुकृति सं. 76) यह ग्रगरचन्द नाहटा संग्रह बीकानेर में सुरक्षित है।

महाराणा जवान सिंह के पश्चात् महाराणा सरदार सिंह (1838-42 ई.) गद्दी पर बैठे। उस काल में चित्रकार परसराम, तारा शिवलाल ग्रादि उल्लेखनीय रहे। महाराणा स्वरूपसिंह के काल

1. महाराजाधिराज महाराणा श्री भीमसिंहजी घोड़ा अलबला महाराज कुमार अमरसींघजी घोड़ा कुँवर पदां रा जोड दोड़ता थका गोखडा हेटे महाराज कुमार जवानसींघजी घोड़े चतर चमन सामे उभा (चित्र के ऊपरी भांग की पुष्पिका)
2. श्री भंवरलाल नाहटा—विज्ञप्ति पत्र ऑफ उदयपुर–जैन जर्नल जुलाई, 72 पृ. 11।

(1842–1861) में भी ये चित्रकार कार्य करते रहे। महाराणा घुड़सवारों के मध्य फाग खेलते हुए 1850 ई. के चित्रकार परसराम व शिवलाल द्वारा बने चित्र राजमहल संग्रहालय उदयपुर में सुरक्षित हैं चित्र में गुलाल उड़ाते हुए फाग की बड़ी मनोरम छटा प्रस्तुत की गई है। इस चित्र में रूई के धब्बों से कण-कण चित्रित करने की मौलिक चित्रण पद्धति है (चित्र संख्या 80)।

घायल बांघिनी—इस काल का एक वृहद् पट चित्र 8 × 6 फीट के आकार में स्थानीय चित्रकार बखतावर द्वारा 1863 ई में कपड़े पर चित्रित एक भव्य कृति कुंवर संग्रामसिंह संग्रह जयपुर में सुरक्षित है। स्वरूपसिंहजी के बाद महाराणा शम्भूसिंह (1861–1874 ई) गद्दी पर बैठे। इनके राज्यकाल में भी उक्त चित्रकार कार्य करते रहे। **राजसी वार्तालाप** 1868 ई में चित्रकार तारा द्वारा चित्रित शामियाने में बैठे महाराणा शम्भूसिंह जो बेमाली के एक ठाकुर से वार्तालाप करते हुए चित्रित हैं। इसमें राजसी ठाट-बाट एवं बैठने की विशेष पद्धति का चित्रण है। चित्र राजप्रसाद संग्रह उदयपुर में सुरक्षित है। महाराणा शम्भूसिंह के बाद महाराणा सज्जनसिंह (1874–1884 ई.) गद्दी पर बैठे तथा भवन में निर्मित हुआ। महाराणा फतेहसिंह के राज्यकाल (1884–1930 ई) में शिकार के कई चित्र अधिक बने थे, शिकार करते समय का चित्र बनवाने की प्रथा इस काल में अधिक दिखाई देती है। इस काल के कई चित्र जगदीश मित्तल संग्रह हैदराबाद, कुंवर संग्रामसिंह संग्रह जयपुर तथा राजमहल संग्रहालय, उदयपुर में सुरक्षित हैं। **भालू का शिकार** तत्कालीन बारीक दृश्य अंकन की उल्लेखनीय कृति है (चित्र संख्या 82) 21½" × 16" के आकार के इस चित्र में चित्रकार के अपने ढंग से छोटी-छोटी पहाड़ियों में छाया प्रकाश एवं हल्की गहरी झाड़ियों का अंकन किया है। यह चित्र राजप्रासाद संग्रहालय उदयपुर में सुरक्षित है। चित्र में नामोल्लेख नहीं मिला है पर यह चित्र चित्रकार पन्नालाल गौड़ की चित्रण पद्धति का एक उत्कृष्ट उदाहरण है इसके अतिरिक्त उन्होंने मेवाड़ के **महाराणाओं के व्यक्ति** चित्रों का चित्रण कार्य किया जो प्रताप संग्रहालय उदयपुर में सुरक्षित हैं।

उदयपुर में परम्परागत चित्रण कार्य जितनी चरम सीमा तक पहुँचा उतना ही चित्रकार कुन्दनलाल जी एवं घासीरामजी के चित्रों में यथार्थता एवं आधुनिकता की ओर झुकाव देखते हैं। उन्होंने छाया प्रकाश एवं रंग-संयोजन में विशेष दक्षता पाई। श्री कुन्दनलाल शर्मा मेवाड़ के प्रथम शिक्षित चित्रकार थे जिन्हें महाराणा ने 1889 ई. में जे जे. स्कूल आफ आर्ट, बम्बई से कला की उच्च शिक्षा के पश्चात् तीन वर्ष के लिये 'स्लेड युनिवर्सिटी कालेज लंदन' में कला शिक्षा हेतु भेजा। जहां वे मानवाकृति अंकन प्रतियोगिता में भी पुरष्कृत हुये। उनके द्वारा चित्रित महाराणा प्रताप चित्र की राजा रवि वर्मा ने भी प्रतिकृति की जो बहुत प्रसिद्ध हुई। उन्होंने रवि वर्मा के साथ प्रतियोगी बनकर कार्य किया व सफल हुये। उनके चित्रण कार्य में भारतीय एवं पाश्चात्य कला पद्धति का सम्मिश्रण उदयपुर के गोल महलों के अतिरिक्त **क्षमा याचना**, **रामायण के दृश्य**, **जैन श्रावक**, जैसे वृहद तेल चित्रों एव अन्य प्रपत्रों की सामग्री डा० शिवकुमार शर्मा उदयपुर के संग्रह में सुरक्षित है। इसी प्रकार **ग्रामीण युवती एवं कुम्हारिन बाजार की ओर** जैसे भावात्मक स्फूर्त-चित्र नाथद्वारा के श्री भगवानजी, कन्हैयालालजी की चित्रशाला में सुरक्षित है, सभी चित्रों में आधुनिक कला की जागृति स्पष्ट दिखाई देती है (चित्र सं. 89) उनके सहयोगी चित्रकार घासीरामजी ने नाथद्वारा में रह कर ही छाया प्रकाश में मौलिक एवं विशुद्ध रंगों की योजना चित्रों में अपनाई उनके कई चित्र विदेशों में प्रकाशित हुये तथा अपनी नवीन पद्धति में विशेष ख्याति प्राप्त की श्री हिम्मतसिंह स्वरूपरिया उदयपुर के संग्रह में सुरक्षित **राणा प्रताप** का चित्र उनकी कुशल अंकन पद्धति का अच्छा उदाहरण है। (चित्र सं. 90)

इसी काल में परम्परावादी चित्रकार पन्नालालजी मेवाड़ा भी कला के क्षेत्र में विशेष उल्लेखनीय रहे हैं जिन्होंने मेवाड़ की स्थानीय परम्परा में ही चित्रों का निर्माण किया। मीठाराम मन्दिर उदयपुर

2. राव बखतावर रो बणायों ॥ संवत 1910 महाराणाजी श्री स्वरूपसिंहजी। मगरा तोषला में शिकार हुई।

में सुरक्षित 1899 ई. का चित्रित **रघुवरदासजी महन्त** का चित्र (चित्र सं. 87) उनका अच्छा उदाहरण है। उसी शृंखला में चित्रकार नारायणजी ने कई परम्परागत चित्रों की रचना की उनमें **राजा व रानी** की उल्लेखनीय कृति नाथद्वारा में उनके पुत्र श्री **नरोत्तम** शर्मा के संग्रह में सुरक्षित है जिन्होंने स्वयं भी परम्परा व आधुनिक चित्रण पद्धति के समन्वय से कई आकर्षक चित्रों की रचना की उनमें **कृष्ण** एवं **शिव** की बादलों में अंकित मुखाकृतियों के प्रकाशित चित्र जन जीवन में बहुत अधिक लोकप्रिय रहे अन्य चित्र **राम वन गमन, कृष्ण** एवं **गोपियां** तथा कई **श्री नाथजी** की पिछवाइयां उल्लेखनीय हैं। यही पद्धति उनके अन्य भ्रता श्री भूरा लालजी की रही उनमें परम्परावादी दृष्टिकोण अधिक स्पष्ट रहा है।

महाराणा भूपालसिंह जी के राज्य काल (1930-1955 ई.) में उक्त चित्रकारों के अतिरिक्त श्री चतुरभुज शर्मा ने कई तेल-चित्रों की रचनायें की जिनमें **महाराणा के व्यक्ति चित्र** एवं **हल्दी घाटी युद्ध** (चित्र सं. 92) 84" × 51" की वृहत चित्र राज प्रासाद संग्रहालय उदयपुर में सुरक्षित श्रेष्ठ कृतियों में उल्लेखनीय हैं चित्रकार श्री छगनलाल गौड़ लघु चित्रों के निर्माण में अपनी बारीक परदाज अंकन पद्धति के लिये बहुत प्रसिद्ध हुये। आपने **महाराणा भीमसिंह के साथ कर्नल टॉड** के चित्र की कई प्रतिकृतियां की जो कला की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखती हैं।

मेवाड़ में चित्रकार श्री नन्दलाल शर्मा ने भारतीय पुनर्जागरण कालीन चित्रण पद्धति का सूत्र-पात किया तथा जल रंगों में परम्परागत चित्रों से समन्वय कर कई **दृश्य चित्रों** के साथ **पूजा, प्रतीक्षा आक्रोश** एवं अन्य कई भारतीय विषयवस्तु पर उत्कृष्ट चित्रों को रचना कर विशेष दक्षता प्राप्त की (चित्र सं. 93 अ एवं ब) जिसे तत्कालीन चित्रकारों ने भी सराहा।[1] उनके सहयोगी चित्रकार श्री भंवर शर्मा ने उसी पद्धति में कई श्रेष्ठ चित्रों की रचना की तथा उदयपुर क्षेत्र में अपने समय के प्रतिष्ठित चित्रकार रहे।

इसी शृंखला में श्री गोवर्धन जोशी ने ग्रामीण चित्रों में जन जीवन का चित्रण कर विशेष ख्याति प्राप्त की, आपके चित्रों **'बरात'** में परम्परा एवं आधुनिकता का उचित समन्वय है (चित्र सं. 94)। आज भी कई चित्रकार इस शैली में स्थानीय परम्परानुरूप चित्र निर्माण में निरन्तर व्यक्त है उक्त सभी चित्रकारों का विस्तृत विवेचन इस ग्रन्थ के अन्तिम अध्याय 'मेवाड़ के चित्रकार' में किया जा रहा है।

मेवाड़ चित्रशैली के क्रमिक विकास में इस क्षेत्र के शासकों एवं चित्रकारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है जिनके चित्रों की तिथियुक्त शृंखला 1229 ई. से अब तक निरन्तर कई कलाकृतियों में सर्वत्र मिलती हैं। फलस्वरूप परम्परागत शैलियों में भारतीय चित्रकला का प्रतिनिधित्व करने वाली यही शैली एक मात्र प्राचीन चित्र शैली के रूप में अपना स्थान बनाती है।□

---

1. चित्र उनके सुपुत्र श्री सुभाष भारद्वाज उदयपुर के सौजन्य में सुरक्षित है।

4. चित्रण केन्द्र एवं भित्ति चित्रावशेष

मेवाड़ के विभिन्न स्थानों में चित्र निर्माण की अपनी अपनी निजी चित्रण परम्पराएं रही हैं, आहड, चित्तौड़, चावण्ड एवं उदयपुर में मेवाड़ नरेशों ने चित्रकारों को राज्याश्रय दिया तथा देलवाड़ा जैन एवं नाथद्वारा एवं वल्लभ सम्प्रदाय के धार्मिक केन्द्र रहे हैं, जहां चित्रकला को पूर्ण प्रश्रय मिला। देवगढ़, प्रतापगढ़, शाहपुरा, बस्सी, बेगू, केलवा आदि ठिकानों में भी स्थानीय चित्रण पद्धतियों के अनुकूल चित्रकारों ने कार्य किया फलस्वरूप इस भू-खण्ड में बारहवीं सदी से अब तक विभिन्न कला केन्द्रों की पृष्ठ भूमि बन जाती है।[1]

इन उक्त केन्द्रों में चित्रित प्राचीन चित्रों का विस्तृत विवेचन द्वितीय एवं तृतीय अध्याय में कर दिया गया है किन्तु मेवाड़ में विकसित होने वाली स्थानीय शैलियों में देवगढ़, नाथद्वारा एवं शाहपुरा में प्रचलित चित्र कला के मौलिक स्वरूपों की शैलीगत विशेषताएं अपना अलग स्थान रखती हैं।

देवगढ़ की चित्र शैली

देवगढ़, उदयपुर के उत्तर में 68 मील दूर एक प्रमुख ठिकाना है। महाराणा जयसिंह के राज्यकाल में रावत द्वारिकादास चुंडावत ने देवगढ़ ठिकाना 1680 ई. में स्थापित किया।[2] यहाँ के रावत सौलहवें उमराव कहलाते थे, जिन्हें प्रारम्भ से ही चित्रकला की ओर गहरी रुचि थी। महाराणा सग्रामसिंह एवं महाराणा जगतसिंह द्वितीय के राज्यकाल में निर्मित मेवाड़ के चित्रों की शैली के अनुरूप ही देवगढ़ में (1710-1720 ई. के मध्य) मित्ति-चित्र भी बने। ऐसा प्रतीत होता है कि उदयपुर नगर के चित्रकारों को ही इस कार्य के लिए सम्भवतः लगाया गया होगा।[3] देवगढ़ के कपड़ द्वारा महलों में कई चित्र इसी प्रकार के बने हैं, उनमें **शिकार, हाथियों की लड़ाई, राज दरबार का दृश्य, कृष्ण लीला** आदि के चित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। देवगढ़ के अन्य महलों में **अजारा की ओवरी "मोती महल"** आदि में भी भित्ति-चित्र देखने को मिले हैं। ये चित्र चित्रकार चोखा की चित्रण पद्धति के महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं।

महाराणा अरिसिंह के समय मेवाड़ में कुछ जागीरदारों और महाराणा के मध्य वैमनस्य हो गया था। देवगढ़ के रावत विद्रोही जागीरदारों के पक्ष में थे तथा महाराणा के विरुद्ध युद्ध भी किये।[4] उदयपुर के भटियानी चोहट्टे में स्थित पुरानी देवगढ़ की हवेली इसी काल में महाराणा

---

1. लेखक द्वारा - राजस्थानी चित्रकला में मेवाड़ की उप-शैलियां, शोध पत्रिका वर्ष 27, अंक 3, पृ. 46-56।
2. कविराज श्यामलदास—वीर विनोद, भाग 1, पृ. 138।
3. श्रीधर अन्धारे—देवगढ़ पेंटिंग, ललितकला अकादमी पोर्टफोलियो नई दिल्ली, पृ. 78।
4. जेम्स टाड—एनल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान, भाग 1, (1920) पृ. 221।

ने अधिकृत कर तुड़वा दी। महाराजा माधोसिंहजी जयपुर को देवगढ़ की राजकुमारी 1728 ई. में ब्याही गई थी। महाराजा की मृत्यु के बाद महारानी चूंडावतजी जयपुर राज्य का पूर्ण काम-काज देख रही थी, रावत जसवंतसिंह ने उसे सहायता दी एवं लम्बे समय तक जयपुर में रहे थे। इस काल में निर्मित **रावत जसवन्तसिंह** का चित्र जयपुर शैली में ही बना जिसमें मुगल एवं जयपुर का शैलीगत प्रभाव है यह चित्र म्यूजियम ऑफ फाईन आर्टस, बोस्टन संग्रहालय में सुरक्षित है। महाराजा भीमसिंह के राज्य काल (1786-1824) ई. में देवगढ़ के रावत राघवदास एवं मेवाड़ के सम्बन्ध पुनः स्थापित हुए।

देवगढ़ चित्र शैली में मेवाड़ शैली के अनुरूप रंगों का प्रयोग बहुत कम मिलता है, इसके विपरीत हरे, पीले रंगों का अधिकाधिक प्रयोग है। पुरुष और स्त्रियों की आकृतियों में निकटवर्ती मारवाड़ का प्रभाव रहा है। यहां के चित्रकारों व उनके आश्रयदाताओं में भी घनिष्ठ सम्बन्ध रहे हैं। चित्रकारों का आश्रयदाताओं के साथ शिकार में जाना, गोठ में भाग लेना, होली खेलना तथा अन्त.पुर के चित्रांकन कार्यो से इसकी अच्छी पुष्टि होती है। देवगढ़ ठिकाने के रावले में निर्मित भित्ति चित्रों में कला की तत्कालीन प्रचलन स्पष्ट दिखाई देता है।

देवगढ़ में निर्मित चित्र आज विभिन्न संग्रहालयों में सुरक्षित हैं अतः उनमें शिकार राजसी ठाटबाट, शृंगारिक एवं धार्मिक तथा ऐतिहासिक घटनाओं सम्बन्धित कई चित्रों की रचना हुई है।

1. **कुंवर अनोप सिंह द्वारा सुअर का शिकार :** चित्रकार वग्ता की उल्लेखनीय तिथियुक्त कृति है।[2] जिसे 1769 ई. में चित्रित किया था। इस चित्र में सुअर का शिकार उसकी करुण भावनाओं को दर्शाता है। कुंवर द्वारा जोशपूर्ण ढंग से शिकार किया जा रहा है। यह कृति देवगढ़ के चित्रों की प्रारम्भिक पृष्ठभूमि बनाती है। यह चित्र कुसुमराजेय स्वाली संग्रह बम्बई में सुरक्षित है।

2. **शिकार पश्चात् गोठ :** इस चित्र में राजकुमार अनोपसिंह शिकार से लौटते समय विश्राम करते दिखाये गये हैं। चित्र को 1808 ई. में चित्रकार वग्ता ने चित्रित किया।[3] इसमें शिकारियों द्वारा विश्राम के समय जंगल में माँस पकाना, मछली पकड़ना तथा उसे भून कर राजकुमार को देने आदि के मार्मिक क्षणों को चित्रित किया है। यह चित्र प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय बम्बई में सुरक्षित है। (चित्र संख्या 75 एवं रेखांकन संख्या 73)

3. **रावत गोकुलदास अपने दरबारियों के साथ होली :** चित्र चित्रकार चौखा द्वारा 1811 ई. में चित्रित किया गया। इसमें दरबारियों से राजसी ठाठ बाठ के साथ होली खेलने का आकर्षक चित्रण है। चित्र एन बोमन बहरम संग्रह बम्बई में सुरक्षित है।

4 **रतिक्रीड़ा**—कुंवर संग्रामसिंह नवलगढ़ के संग्रह में सुरक्षित चित्रकार चौखा द्वारा 1810 ई. में चित्रित महत्त्वपूर्ण कृति है। जोशपूर्ण स्त्री-पुरुष रतिभाव को दर्शाने वाला यह एक प्रतिनिधि चित्र है। (चित्र संख्या 74)

5. **गोधूली बेला**—चित्रकार चौखा द्वारा 1813 ई. में निर्मित[4] धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत चित्र है। यह चित्र सर कावसजी संग्रह बम्बई में सुरक्षित है। चित्र में कृष्ण एवं अन्य

---

1. माइलोक्लेव लेंड बीच - "पेंटिंग ऐट देवगढ" आर्काइव्ज ऑफ एशियन आर्ट, XXIV 1970–81।
2. कुंवर श्री अनोक(प) सींघ जी री सुवीरो पोनों चतारा बगता रा हाथरो सं. 1826 भादवा वद 6 र वे घोडो सुरंग सारंग देवगुड कुंवरजी।
3. म्हा रावतजी श्री गोकलदासजी री सूरत रो पानो खरला री मंगरा सकार खेल पाछा पदार वराज्या भावरो पांनो (सं) 1865 रा असाढ वद 14रे दन तीजा पारा काचरी ओवरी म्हे बराज्या पानो नीजर हुवो : कलमी चतारो वगतो।
4. "श्री जी गऊ चराय पाछा पदारतारी सीबी पानो तीजे पोरं दरीखाने बराज्या नजर व्हो सं. 1870 री : चेत ब्द 3 कलमी चतारो चोखो।"

ग्वाल-बाल गायों के साथ बहुत ही कलात्मक ढंग से संयोजित किये गये हैं। साथ ही इसमें तत्कालीन वल्लभ सम्प्रदाय के क्रिया कलापों एवं भावों को दर्शाया है।

देवगढ़ ठिकाने में राजकुमार अनोपसिंहजी से सम्बन्धित कई चित्रों का निर्माण हुआ है। अनोपसिंह रावत राघवदासजी के कुँवर थे उनके कई वृहद् चित्र विभिन्न संग्रहो में सुरक्षित हैं। रावतसर के देवगढ़ परिवार से सम्बन्धित रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत के संग्रह में कुँवर अनोपसिंह के उत्कृष्ट चित्र हैं तथा हाल ही में पाये गये देवगढ़ के एक बड़े संग्रह सरकावसजी जहांगीर संग्रह बम्बई में देवगढ़ के कई उत्कृष्ट चित्र सुरक्षित हैं। कुँवर अनोपसिंह की मृत्यु कुँवरपदे काल में ही हो गई थी उनके पुत्र रावत गोकुलदासजी के कई चित्र शिकार से सम्बन्धित मिले हैं। जिनमें रात्रि में सांभर का शिकार चौखा द्वारा 1800 ई. का उत्कृष्ट चित्र रावत नाहरसिंह संग्रह देवगढ़ में ही सुरक्षित है। इस शैली के कुछ अन्य चित्र इस प्रकार हैं :

1. **रावत राघवदास :** चित्रकार कंवला द्वारा 1778 में चित्रित चित्र कुँवर संग्रामसिंह संग्रह जयपुर में सुरक्षित है। जिसमें घोड़े पर बैठने का राजसी ठाठ-बाठ इस चित्र की उल्लेखनीय विशेषता है। (चित्र संख्या 70)।

2. **शिकारी कुत्ते का चित्र :** चित्रकार वगता द्वारा 1806 ई. में निर्मित एक आकर्षक चित्र है। जिसका ऐतिहासिक महत्त्व उसके पृष्ठ भूमि में अंकित पुष्पिका से बनता है। यह चित्र प्रिंस आॅफ वैल्स संग्रहालय बम्बई में सुरक्षित है।

3. **रावत गोकुलदास जंगली सुअर का शिकार करते हुए :** 1811 ई. में चित्रकार चौखा द्वारा निर्मित एक गतिपूर्ण श्रेष्ठ कृति है। यह प्रिंस आॅफ वैल्स संग्रहालय बम्बई में सुरक्षित है।

4. **रावत गोकुलदास घोड़े पर सवार :** 1811 ई. में चित्रकार बगता द्वारा चित्रित एक उल्लेखनीय कृति है, यह चित्र सरकावसजी जहांगीर संग्रह बम्बई में सुरक्षित है।

5. **सूर्य पूजा :** 1800 ई. में लगभग चित्रकार वगता द्वारा चित्रित इस चित्र में एक महिला सूर्य को जल अर्पित करती हुई दिखाई है। जिसमें ठण्डे रंगों का चित्र संयोजन है। यह चित्र प्रिंस आॅफ वैल्स म्युजियम बम्बई में सुरक्षित है।

6. **रावत गोकुलदास श्रीनाथजी की पूजा करते हुये :** प्रिंस आॅफ वैल्स संग्रहालय बम्बई में सुरक्षित 1811 ई का चित्रकार वगता की आकर्षक कृति है। इससे इस ठिकाने में बल्लभ सम्प्रदायी प्रभाव स्पष्ट हो जाता है।

7. **रावत नाहरसिंह जनाना में :** प्रिंस आॅफ वैल्स संग्रहालय बम्बई में सुरक्षित 1831 ई. का बैजनाथ द्वारा चित्रत राजसी शृंगारिक ठाट-बाट का प्रतिनिधि चित्र है।

8. **नाहरसिंहजी प्रेमिका को प्याला देते हुये :** चित्रकार बैजनाथ द्वारा 1830 ई. में चित्रित आकर्षक चित्र है जो प्रिंस आॅफ वैल्स संग्रहालय बम्बई में सुरक्षित है।

9. **कर्नल टॉड की सवारी :** 1800 ई. में चित्रित एक ऐतिहासिक घटना क्रम को प्रस्तुत करता है। यह चित्र ब्रिटिश म्युजियम लन्दन में सुरक्षित देवगढ़ का एक उत्कृष्ट चित्र है।

10. **नाहरसिंह द्वारा सुअर की शिकार :** चित्रकार बैजनाथ द्वारा 1830 ई. में चित्रित चित्र रावत नाहरसिंह संग्रह देवगढ़ में सुरक्षित है।

11. **नाहरसिंह द्वारा शेर का शिकार ;** देवगढ़ ठिकानों में सुरक्षित 1832 ई. की बैजनाथ द्वारा चित्रित चित्र।

12. **हल्दीघाटी की लड़ाई** देवगढ़ ठिकाना में सुरक्षित 1879 (1822 ई०) चौखा द्वारा चित्रित उल्लेखनीय कृति है।

उक्त चित्रों के अध्ययन से देवगढ़ चित्रण केन्द्र में मौलिक चित्रशैली का विकास स्पष्ट दिखाई देता है देवगढ़ के चित्रों की आकृतियां, जोशपूर्ण व्यक्तित्व को दर्शाती हैं तथा परम्परा का उचित प्रतिनिधित्व करती है। यह चित्र शैली मेवाड़ शैली में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। **महाराणा भीमसिंहजी** जो स्वयं भी देवगढ़ गये थे, इस घटना को चित्रकार चौखा ने बहुत सुन्दर कलात्मक ढंग से कई चित्रों में चित्रित किया है। राजप्रासाद उदयपुर के संग्रह में सुरक्षित चित्र इसका श्रेष्ठ उदाहरण भी है। यहां के चित्रकार बगता (1769 से 1820 ई०) और कंवला प्रथम : (1775 – 1810 ई०) : दो उल्लेखनीय चित्रकार थे। बगता के दो पुत्र थे कंवला द्वितीय :(1800–1850 ई०) : एवं चौखा : (1770–1830) : , उन्होंने देवगढ़ चित्रशैली को बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। कंवला (द्वितीय) कालान्तर में बदनोर चले गये, जहां अपनी निजी चित्र शैली का विकास किया। चौखा एवं उनके पुत्र बेजनाथ देवगढ़ में ही कार्य करते रहे। देवगढ़ अभिलेखों में चित्रकार हरचन्द एवं नंगा का उल्लेख बदनोर के चित्रकारों में मिलता है। चित्रकार नंगा महाराणा जगतसिंह द्वितीय के राज्य में उदयपुर में भी उल्लेखनीय रहे हैं।

बनास नदी के किनारे पर उदयपुर के उत्तर दिशा में यह वैष्णव भक्ति का तीर्थ आज भी कला का तीर्थ स्थल बना हुआ है। महाराणा राजसिंह (1652–1680 ई.) ने औरंगजेब के धर्म विरोधी आतंक के विरुद्ध श्रीनाथजी, विठ्ठलनाथ जी एवं द्वारकाधीश को मेवाड़ क्षेत्र में सुरक्षित स्थान दिया और ब्रज के वल्लभ सम्प्रदायी सभी वैष्णव धर्मावलम्बियों एवं श्रीनाथजी की सम्मानपूर्वक सुरक्षा का यहां प्रबंध किया गया। फलस्वरूप उदयपुर से 30 मील दूर सिंहाड गांव में 20 फरवरी, 1672 ई० को यह पाट स्थापित हुआ।[1] कालान्तर में यही श्रीनाथजी का धार्मिक केन्द्र नाथद्वारा नाम से प्रसिद्ध हुआ।

श्रीनाथजी एवं वैष्णव सम्प्रदाय से संबंधित अन्य मूर्तियां मूल रूप से मथुरा में थी। औरंगजेब के हिन्दू धर्म विरोधी रुख के कारण अधिकांश मूर्तियां मथुरा से अन्य स्थानों पर ले जाई गई। मेवाड़ में श्रीनाथजी, द्वारकाधीशजी आदि की मूर्तियां (1671 ई०) में स्थापित हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में भक्तों की लगातार मांग के कारण श्रीनाथजी व द्वारकाधीश की प्रतिमाओं को चित्र बनाकर ही लगाया जाता था। कालान्तर में कृष्ण लीला के कई दृश्य चित्रित किये गये। इनमें श्री कृष्ण की आकृति, श्रीनाथजी की मूर्ति के अनुरूप बनाई गई। पृष्ठभूमि में मुख्य रूप से केले, आम, कदम्ब, आदि के पेड़ बनाते रहे हैं। गायों का मनोरम अंकन (चित्र संख्या 85 व 86) आसमान में देवताओं आदि के अभिप्राय विशेष आकर्षक हैं। नाथद्वारा के चित्रों में मुख्यतः कृष्ण लीला के चित्र अधिक बने हैं. उन पर कई पट एवं पिछवाईयां मिलती हैं।[2] इनमें **शरद पूर्णिमा, दानलीला, रासलीला, अन्नकूट, गोपाष्टमी, जल विहार सिंहासन** आदि उल्लेखनीय है। इनमें श्रीनाथजी की आरती और नियमित मुद्राओं का अपना विशिष्ट ढंग है। **मंगला, शृंगार, ग्वाल, राजभोग, अत्थापन्न, भोग, संध्या और शयन** की भाव-भंगिमाएं बड़ी ही आकर्षक है (चि. सं. 86) **महाप्रभु एवं श्रीनाथजी के मिलन** की घटना का दृश्य है। यह चित्र पुष्टि मार्गी वल्लभ सम्प्रदाय की प्रचलित कथाओं में विशेष महत्त्व रखता है इसमें उक्त घटना के सभी पात्रों एवं अभिप्रायों की कलात्मक अभिव्यक्ति है। कृष्ण लीला के दृश्य चित्रों में निम्नांकित महत्त्वपूर्ण विशेषताएं मिलती हैं:–

1. केन्द्रीय आकृति प्राय श्रीनाथजी की काली नील कांटी के रंग से अंकित है। श्रीनाथजी के कई दर्शन एक ही चित्र फलक में चित्रित कर चित्रकारों ने बहु आयामी चित्रण पद्धति का अच्छा प्रयोग किया जिसमें मुख्य पात्र को कई स्थानों पर दिखाने का प्रयास बड़े ही

---

1. कविराजा श्यामलदास—वीर विनोद, भाग 2 पृ. 453।
2. रोबर्ट स्केलेटन—राजस्थानी टैम्पल हैंगिग्स आफ दी कृष्ण कल्ट पृ. 23।

कलात्मक ढंग से किया है। यहां की पिछवाईयों में प्रायः यह छटा हम सर्वत्र अंकित देखते हैं। (चित्र सं. 85)।

2. नारी आकृतियों में छोटा कद मुख मुद्रा अपेक्षाकृत बड़ी, चौड़े वक्षस्थल, आंखें तिरछी देवगढ़ तथा मारवाड़ चित्रशैली के अधिक निकट दिखाई देती है, देखें चित्र सं. 85 एवं 86।

3. पृष्ठभूमि में सघन वनस्पति का अंकन एवं केले के पेड़ों का अंकन बहुत ही सरल आकृतियों में चित्रित किया है। आसमान, नदी नालों का वास्तविकता वादी काल्पनिक अंकन विशेष देखा जाता है।

4. भगवान कृष्ण से सम्बन्धित दृश्यों में कृष्ण द्वारा बाँसुरी की सहायता से **राधा को जगाना** तथा **राधा का स्नान** 1830 ई० के चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में सुरक्षित है। चित्रों में श्रीनाथ जी को कृष्ण के स्थान पर अंकित किया गया है। पशुओं की भाव भंगिमाएँ बहुत ही आकर्षक हैं, जिनमें गायों का अंकन इस शैली में बहुत अधिक सुदृढ़ एवं प्रभावपूर्ण है। जो अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। गायों में मातृत्व की भाव-भगिमाएँ अपनी मौलिक परम्परा का निर्माण करती है।

मेवाड़ के शासकों में महाराणा संग्रामसिंह ने वैष्णव धर्म को अधिक प्रश्रय दिया। 18वीं सदी के उदयपुर में चित्रित **गीत गोविन्द** के चित्रों पर नाथद्वारा की चित्रण पद्धति का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इनमें स्थानीय पर्वतों एवं प्राकृतिक दृश्यों को अंकित करने के प्रयत्न किये हैं। शिकार के चित्रों में भी प्राकृतिक दृश्य हैं, वे इसके अनुकूल है। पुरुष आकृतियां मुख्यतः व्यक्ति चित्रों में ही अधिक मांसल है एवं गहरी रेखाओं द्वारा चित्रित की गई है। रंगों के प्रयोग में नीम्बुआ पीला रंग पृष्ठभूमि में दिया गया है। हरे और पीले रंगों का अधिक प्रयोग हुआ है तथा देवगढ़ की चित्रण पद्धति के अनुरूप आकृतियों को अंकित किया गया है। मेवाड़ के लाल रंग का यहां के चित्रों में कम से कम प्रयोग दिखाई देता है। बीसवीं सदी में नाथद्वारा की यह लोक चित्र शैली अपने धार्मिक प्रभाव से इतनी प्रसिद्ध हुई है कि डा० आनन्द कुमार स्वामी ने राजपूत चित्र शैली में इसे ही **मेवाड़ शैली** की संज्ञा दे दी।[1] इसके अतिरिक्त नाथद्वारा में पिछवाइयों को वृहद चित्रों के रूप में पाते हैं। राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में सुरक्षित **शाही सवारी** नामक पिछवाई 6'×5' के आकार में 18वीं सदी में की एक महत्त्वपूर्ण कला कृति है इसमें प्रासादों का बहुत ही उत्कृष्ट एवं मौलिक चित्रण हुआ है जो किसी अन्य शैली में देखना दुर्लभ है। इसी सग्रह में **मुरलीधर** नामक पिछवाई में कृष्ण का लयबद्ध अंकन विशेष आकर्षक है (चित्र सं 84) में ये रूप एवं आकार स्पष्ट देखे जा सकते हैं।

श्रीनाथ जी की धार्मिक छवियों, पिछवाइयों आदि के चित्रण हेतु इस केन्द्र में कई चित्रकार यहां पर बस गये हैं। ये चित्रकार वल्लभ सम्प्रदाय के कृष्ण भक्ति शाखा के अनुयायी हैं, जो श्रीनाथ जी के विभिन्न उत्सवों एवं पर्वों पर छवियों एवं पिछवाइयों का चित्रण करते है। नाथद्वारा में प्राचीन भित्ति-चित्र संख्या 103 भी महुए वाले अखाडे व गोवर्धन कुण्ड पर पाये गये हैं, ये 1800 ई० से 1874 ई० के मध्य चित्रित हुए हैं जिनका भिति चित्रों में विस्तृत विवेचन किया है। श्रीनाथ जी की छवियां बड़ी से बड़ी भव्य रूप में तथा छोटी से छोटी अंगूठी के नगीनों हेतु तैयार करना यहां के कलाकारों की कुशल चित्रण पद्धति के अनूठे उदाहरण हैं। यहां बसने वाले चित्रकारों में लगभग पचास परिवार हैं, ये दो वर्गों में है, दोनों ही जांगीड़ एवं गोड़ ब्राह्मण जाति के अन्तर्गत आते हैं। ये उदयपुर, जयपुर व जोधपुर से आये तथा एक तीसरा वर्ग पूरबिया, दिल्ली व अलवर से श्रीनाथ जी के साथ आया बताते हैं। यहां के चित्रकारों में उपमन्यू गोत्री चित्रकारों की प्राचीन शृंखला मिलती है तत्पश्चात् रामचन्द्र बाबा एवं नंग जी के उल्लेख मिलते हैं।

---

1. डा. मोतीचन्द—मेवाड़ पेंटिंग, भूमिका ललितकला अकादमी, नई दिल्ली, 1960।

नाथद्वारा के प्रारम्भिक प्रमुख चित्रकारों की शृंखला एवं भित्तिचित्रण कार्य में श्री चतुरभुज जी, नारायण जी एवं उदयराम जी के कार्य उल्लेखनीय रहे हैं महुआवोल अखाड़े में अंकित **'ठोडीरागिनी'** भित्तिचित्र पेण्डावल गोत्र शिल्पी चित्रकार एकलिंगजी की कलाकृति है। श्री सुखदेव जी श्रीनाथ जी के चित्रण कार्य में प्रवीण थे। चित्रकार हरदेव जी गोस्वामीं महाराज के व्यक्ति चित्रण कार्य में मुखिया चित्रकार के रूप में नियुक्त रहे। उनके पुत्र घासीराम जी उन्हीं के कार्य को आधुनिक छाया प्रकाश में शुद्ध रंगों के प्रयोग करने वाले प्रतिभाशाली चित्रकार थे जिन्होंने तेल चित्रण एवं व्यक्ति चित्रण में विशेष रुचि ली, उदयपुर के श्री कुन्दनलाल जी के विदेशी शिक्षा से यह भी प्रभावित थे, वे अपने जीवन के अन्तिम दिनों में यहीं देहली वाली धर्मशाला के अलंकरण कार्य में लगे हुए थे। और घासीराम जी के साथ रहे इस काल में नाथद्वारा के चित्रकारों में श्री हीरालाल जी, रामलाल जी देवलाल जी, जगन्नाथ जी, नरोत्तम जी, भूरालाल जी, विठ्ठल जी, भगवान जी, गिरधारी व प्रेमनरेन्द्र जी आदि प्रमुख चित्रकार कार्य कर रहे थे। इनमें से अधिकांश चित्रकार मेवाड़ की शैलीगत चित्रण पद्धति से हटकर प्रायः समाज की गतिविधियों का अंकन करने लग गये थे।

यहां के सभी चित्रकार धार्मिक कला परम्परा के साथ-साथ व्यवसायिक चित्रण कार्यों में भी विशेष क्रियाशील हैं। इन चित्रकारों के वंशवृक्ष का क्रमबद्ध उल्लेख भी इस ग्रन्थ के अन्तिम अध्याय में किया गया है।

विभिन्न ठिकाने एवं चित्रण कार्य

शाहपुरा:– यह उदयपुर से उत्तर में भीलवाड़ा जिले में स्थित प्रमुख ठिकाना है इसे शाहजहां ने महाराणा जगतसिंह प्रथम से छीन कर उनके ही चचरे भाई सुजानसिंह को फूलिया परगने के पट्टे सहित 1627 ई० में दे दिया।[1] फलस्वरूप मेवाड़ में शाहपुरा को एक अलग राज्य का दर्जा मिला था। यहां से प्राप्त चित्रों पर स्थानीय लोक कला का प्रभाव अधिक है। यह प्रभाव **राजा उम्मेदसिंह के व्यक्ति चित्र** 1768 ई० में स्पष्ट दिखाई देता है जो कावस जी जहांगीर संग्रह बम्बई में सुरक्षित है।[2] यहां पर चित्रित **राग माला** चित्र सम्पुट 1772 ई भी इसी स्थानीय चित्रण पद्धति में है जो अपने मौलिक स्वरूप के साथ ब्रिटिश म्यूजियम लन्दन के ओरियेंटल सेक्शन में सुरक्षित है।[3] इन चित्रों में शाहपुरा की प्राचीन मौलिक चित्र शैली का विकास है जिसमें चित्रकारों की कलात्मक कार्य कुशलता स्पष्ट दिखाई देती है। रागमाला का यह चित्र सम्पुट चित्रकार सुलालजीत द्वारा निर्मित किया गया तथा महारावल श्री बखतसिंह जी को भेंट किया था। यहीं पर अन्य चित्रकार श्री ताजू का 1794 ई० लगभग में चित्रित चित्र संख्या 67 संघर्ष मेवाड़ चित्र शैली में अपना मौलिक स्थान रखता है। यह चित्र पर्दाज के अंकन कार्य पर आधारित है, छाया प्रकाश का मेवाड़ में यहीं से प्रभाव दिखाई देने लगता है। शाहपुरा में लघु चित्रों में **रावत माधोसिंह की जन्म गांठ** 1850 ई० चित्र संख्या 69। हाल ही मुझे श्री रामचन्द्र शर्मा व्याकुल संग्रहालय जयपुर में उपलब्ध हुआ है। चित्र में वेगूं, वेदला, पारसोली बनेड़ा आदि के ठाकुर बैठे हुये हैं तथा चित्र संयोजन बहुत ही आकर्षक है।

यहाँ के कई देवालियों तथा राम द्वारा के चित्रण कार्य में : पड चित्रण की लोक शैली में भित्तिचित्र बने हैं जो स्वतः अपनी मौलिक परम्परा बताते हैं। इस परम्परागत कार्य में यहां के जोशी परिवार की उन्नत परम्परा रही है। उनमें शाहपुरा के श्री दुर्गालाल[4] तथा भीलवाड़ा के

---

1. कविराज श्यामलदास—वीर विनोद, भाग 1, पृ. 141।
   गो. ही. ओझा—राजपूताना का इतिहास, पृ. 935।
2. श्रीधर अन्धारे—प्रिंस ऑफ वैल्स म्युजियम बुलेटिन नं. 11 (1971) पृ. 64–70।
   पांनो राजा जी ऊमेद सींघ जी री छबी रो बाबत सांकरसा।
   नीजर कीदो सम्मत 1825 वर्षे माह वदी 8 भोमे...... ॥
3. श्रीधर अन्धारे—ब्लयूटिन ऑफ प्रिंस वैल्स म्यूजियम ऑफ वेस्टर्न इण्डिया (नं. 10-1967 पृ. 43-53)।
4. श्री दुर्गालाल जोशी को 1967 ई. में राष्ट्रपति स्वर्णपदक से सम्मानित किया गया।

श्रीलाल जी नें बहुत ख्याति पाई है। इनके पूर्वजों में टेकजी मुकन्द जी की सशक्त कला परम्परा विभिन्न देवालयों में द्रष्टव्य है। उनमें **देवनारायण मन्दिर, तेलियों का देवरा** (चित्र संख्या 107) तथा रामद्वारा में धूलजी, जुडावजी व घीसूलाल जी द्वारा निर्मित उल्लेखनीय चित्र मिलते हैं जिनका भित्ति चित्रों में विस्तृत विवेचन किया गया है।

बनेडा:— भीलवाड़ा में स्थित बनेडा ठिकाना जिसे राजगढ़ भी कहते रहे हैं। यहां कई चित्र बने हैं। **शिवरात्रि मेला** चित्र यहां की कला का एक अनुपम उदाहरण है। इसका संयोजन अपनी मौलिक विशेषतायें लिये हुये हैं। चित्र में समानान्तर विस्तारीय विभाजन करके तालाब में शिव मन्दिर और इसके किनारे पर स्थित मन्दिरों का चित्रण यहां के चित्रकारों की कुशल परम्परा को व्यक्त करता है। ये चित्र लोक कला पद्धति के अन्तर्गत है।

बेगूं:— चित्तौड़ के पास ही बेगूं प्राचीन काल से शस्त्र निर्माण का केन्द्र रहा है। लोहे पर उत्कीर्ण रेखा चित्रों की कला परम्परा का यह प्रसिद्ध केन्द्र रहा है। चित्रकार ताजू द्वारा इस केन्द्र पर कई चित्रों की रचना की गई।

बदनोर:— प्राचीन काल से मेवाड़ का ठिकाना है, देवगढ़ से चित्रकार बगता के पुत्र कंवला द्वितीय (1870—1850 ई०) के पहुंचने के पश्चात् रावले के भित्ति चित्रों का निर्माण कार्य हुआ।[1] यहीं पर चित्रकार हरचन्द व नंगा ने भी कार्य किया जो इनसे पूर्व महाराणा जगतसिंह द्वितीय के राज्यकाल (1733–1751 ई०) में संभवतः यहां चित्रण कार्य हेतु बुलाये गये थे।

बस्सी:— यह चित्तौड़गढ के पास ही एक प्राचीन ठिकाना है, जो लोक-कला से प्रभावित रहा, कृतियां कठपुतलियों, गणगौर तथा लघु चित्रों की चित्रण शैली में दिखाई देती है। नाथद्वारा के चित्रकार गुलाब जी के सौजन्य में चित्रकार ऊंकार जी की रेखांकनयुक्त पुस्तिका में यहां के उत्कृष्ट आलेखन मिले हैं। (रेखा चित्र संख्या 72) बस्सी में लकड़ी पर लयबद्ध चित्रण कार्य की भी उल्लेखनीय परम्परा रही जो आज भी प्रचलित है।

केलवा — यह मेवाड़ का प्राचीन प्रमुख ठिकाना रहा है। इस क्षेत्र में चित्रकला का विकास भी विधिवत् हुआ है। यहां से प्राप्त 1745 ई० का चित्र **दुश्चरित्रा नारी का वध** चित्रकार गंगाराम वल्द अमरा की कुशल चित्रण पद्धति को दर्शाता है। कला एवं भाव पक्ष की प्रधानता के साथ ही विभत्स रस की यह महत्त्वपूर्ण कृति है (देखें चित्र संख्या 5।) इस, चित्र से केलवा की ख्याति कला जगत में बहुत अधिक बढ़ गई है। यह चित्र कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर में सुरक्षित है।

घाणेराव:— उदयपुर से पश्चिम में गोडवाड प्रदेश का प्रमुख ठिकाना है। जो मेवाड़ से प्राचीनकाल से प्रभावित रहा है यहीं पर सोमेश्वर गांव गोडवाड में 1418 ई० में धनसार द्वारा सचित्र **कल्प सूत्र** की प्रति निर्मित हुई। जिसका विस्तृत विवेचन द्वितीय अध्याय में कर दिया गया है। इसके समीपवर्ती ठिकाने नाडोल, देसूरी एवं घाणेराव कला के महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहे हैं। घाणेराव में राव दुर्जनसिंह के संरक्षण में चित्रकार नारायण (1750 ई०) को उचित प्रोत्साहन प्राप्त हुआ जिससे मेवाड़ चित्र शैली में देवगढ़ एवं मारवाड़ से मिश्रित अलग चित्र शैली का विकास हुआ। यहां मोटी एवं स्पष्ट रेखाओं की चित्रण पद्धति विकसित हुई। जो मेवाड़ चित्र शैली मे विशेष महत्त्व रखती है। गोडवाड भू-खण्ड महाराणा अरिसिंह (1761-1773 ई०) के राज्यकाल तक ही मेवाड़ का ठिकाना रहा तत्पश्चात् यह मारवाड़ के अन्तर्गत ले लिया गया है।

सावर:— शाहपुरा से उत्तर में अजमेर, बुन्दी एव मेवाड़ के मध्य सावर प्रमुख शिसोदिया वंशी ठिकाना रहा है। जो 1803 में ई० में मेवाड़ से अलग हो गया। इस प्रदेश की कला परम्परा

---

1. श्रीधर अंधारे–देवगढ़ पेंटिंग पोर्टफोलियो, ललितकला अकादमी, नई दिल्ली।

मेवाड़ से विशेष प्रभावित रही है। चित्रकार प्रेमजी द्वारा निर्मित **"ठाकुर वृदसिंह" की सवारी**[1] 1784 ई० का उल्लेखनीय चित्र है यह चित्र सावर के कई चित्रों के साथ पुष्पिका सहित कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर में सुरक्षित है, इस चित्र में ठिकाने की सवारी का बड़ा भव्य एवं आकर्षक चित्रण किया गया है जिसमें चित्रकार भी आगे बैल गाड़ी में बैठा दिखाया गया है। यह चित्र उत्कृष्ट रंग योजना का एक अनुपम उदाहरण है।

उक्त केन्द्रों के अतिरिक्त मेवाड़ के लगभग सभी ठिकानों में चित्रण कार्य होता रहा है। ये चित्र शैलियां चाहे अलग-अलग विकसित होती रहीं किन्तु मेवाड़ में अपना विशेष स्थान रखती हैं। यहां के आश्रयदाताओं तथा चित्रकारों ने सदियों तक कला साधना द्वारा चित्रण की ठोस पृष्ठभूमि बनाई है। बून्दी, कोटा, मारवाड के सिरोही तथा अन्य शैलियों पर इसका प्रभाव दिखाई देता है। स्थानीय शैलियों के आश्रयदाताओं तथा चित्रकारों की कलात्मक अभिरुचियों के कारण मेवाड़ चित्र शैली की कई शैलीगत भिन्नताएँ होते हुये भी उनका परम्परागत स्वरूप ज्यों का त्यों प्रचलित रहा है।

मेवाड़ के प्रमुख भित्ति चित्रावशेष

मेवाड़ में लघु चित्रों के साथ ही भित्ति चित्रों की भी एक अपनी मौलिक परम्परा रही है। इस क्षेत्र में आठवीं सदी में लिखे गये **समराइच्चिकहा** एवं **कुवलयमालाकहा** नामक प्राकृत ग्रंथों में कई स्थलों पर भित्ति चित्रों का उल्लेख है[2] जिससे इस क्षेत्र की प्राचीन गौरवपूर्ण भित्ति चित्रण परम्परा के सन्दर्भ मिलते हैं। यहां इतने लम्बे समय तक चित्रों की कोमल परतें सुरक्षित नहीं रह पाईं और प्राय: सभी चित्र नष्ट हो गये। इस क्षेत्र के विभिन्न राजप्रासादों, हवेलियों, मन्दिरों एवं श्रेष्ठीजनों के निवास स्थानों में जो भित्ति चित्रावशेष देखने में आये हैं, उनका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है:—

चित्तौड़गढ़ से प्राप्त 1229 ई० के शिलोत्कीर्ण रेखांकन पश्चात् कुम्भा के महलों तथा भामाशाह हवेली के उल्लेखों[3] से महाराणा कुम्भा एवं उदयसिंह के काल में उत्कृष्ट भित्ति चित्रों के निर्माण की पुष्टि होती है। इन चित्रों के पहनाव में कुलहदार पगड़ी एवं चाकदार जामा है।[4]

सर्वऋतु विलास के भित्ति चित्र:– महाराणा राजसिंह (प्रथम) के कुंवर पदाकाल में निर्मित वि. सं. 1707 (1650 ई०) कुमार-शोध ग्रन्थ में राजकुमार के महलों में चित्र निर्मित होने का संदर्भ मिलता है।[5] यहीं उनके पुत्र सरदारसिंह का भी निवास स्थान था। उन्होंने पारिवारिक कारणों से आत्महत्या करली और उनकी पत्नी रतलाम में ही सती हो गई, फलस्वरूप इन महलों में **सगेजी का थानक** स्थापित हुआ। चित्रांकन से भवन को सजाया गया, इनमें तत्कालीन भागवत पुराण के **गजेन्द्र मोक्ष** (1655 ई०) गोपीकृष्ण कनोड़िया संग्रह कलकत्ता जैसी ही **देव कन्याओं** का चित्रण मिला है। (चित्र संख्या 95)। पंखों से उड़ती हुई इन नारी आकृतियों की भाव भंगिमाएँ करुणा से ओतप्रोत हैं। इनके पहनाव में लंहगे की आड़ी धारियों के रेखांकन हैं तथा हाथों में दीपक के साथ ही अफीम के फूलों का डोडा (पोस्तफूल) है। राजस्थान में इन्द्रगढ़ के किले कोटा, मगदन शाह की छत्री, आमेर तथा सूर्य मन्दिर सतवास (भरतपुर) आदि स्थानों में ऐसे ही चित्र मिले हैं इन चित्रों में परशियन प्रभावयुक्त वेल-बूटों के अलंकरण हैं। नागौर के भित्ति चित्रों पर भी ठीक यही प्रभाव है सम्भवत: वे चित्रकार यहां से प्रभावित रहे हों। चित्रण में मुख्य रूप से लाल, बेंगनी, हरे व पीले, खनिज रंगों का प्रयोग है जो तत्कालीन लाक्षा रस पद्धति से बने थे। उन पर

---

1. आसोज सुद दशमी शुकरवार सम्मत 1841 श्री ठाकुर-श्री श्री धराज श्रीमनज श्री व्रदसींघजी की असवारी को पानों नजर हुओ चतार—प्रेमजी कलम।। कुंवर संग्रामसिंह संग्रह जयपुर में सुरक्षित।
2. इसी ग्रन्थ के अध्याय द्वितीय के साहित्यिक सन्दर्भ देखें।
3. शोभालाल शास्त्री चित्तौड़गढ़ पृ. 57-59।
4. कार्ल खण्डालावाला आमेर पोर्ट फोलियो, ललितकला अकादमी पृ. 1 व 2।
5. रा. व. सोमानी–हिस्ट्री ऑफ मेवाड़ जयपुर–1976 पृ. 294।

पानी व जलवायु का प्रभाव नहीं पड़ा पर अब ये फोटो पश्चात् रंग की परतों में दब चुके हैं। प्राचीन कला अवशेषों के शोध कार्य में इन भित्ति चित्रों को अचानक छिपा देना बड़ी दु खद घटना है। राज्य सरकार को इस ओर ध्यान देना चाहिये।

कर्ण विलास के भित्ति चित्र:— उदयपुर राजप्रासादों में राजकीय संग्रहालय के नीचे राज्य पुराभिलेख विभाग के भण्डारगृह में महाराणा संग्रामसिंह एवं जगतसिंह (द्वितीय) कालीन फ्रेस्को-बानों एवं फ्रेस्को सैको पद्धति में निर्मित भित्ति-चित्र मिले हैं। प्रथम, गुटाई के इजारों में हाथियों तथा मानवकृतियों का स्पष्ट अंकन है। इनमें पगडी विशेष प्रकार की है। यहीं पर फ्रेस्को सैको पद्धति में सूखी दीवार पर अंकित दो वृहद भित्ति चित्र है। ये व्यक्ति चित्र **महाराणा संग्रामसिंह** एवं जगतसिंह (द्वितीय) के लगभग 1750 ई० में चित्रित हुए हैं और तहखाने के चौथे कमरे में आकर्षण का केन्द्र है। (चित्र सं. 98 एवं 99)

जनाना ड्योडी के भित्ति चित्र:- महाराणा के निजी प्रासादों में अब तक जन सामान्य का पहुंचना वर्जित था किन्तु वर्तमान महाराणा भगवतसिंह जी ने इन प्रासादों को दर्शनीय स्थल बनाकर कला व संस्कृति के अध्ययन में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। अतः प्राचीन महलों के दक्षिण पश्चिमी गुम्बज के नीचे की मंजिल में **कृष्ण लीलाओं, नर्तकियों** एवं **घुड़ सवारों** के कई भित्तिचित्रावशेष मिले हैं। ये चित्र 1650 ई०–1700 ई० के मध्य चित्रित तत्कालीन कला की महत्त्वपूर्ण सामग्री है। इनके ठीक सामने पूजा स्थल में **गणेश** व **रिद्धी-सिद्धी** के भित्ति चित्र अंकित हैं जो परम्परागत पूजन के चित्रण अभिप्रायों में महत्त्वपूर्ण है (चित्र संख्या 99)।

कृष्ण विलास के भित्ति चित्र:— राज प्रासादों में सबसे ऊपर की मंजित में कृष्णा निवास नाम से प्रसिद्ध है, यहां 1830 ई० में चित्रित गोटाई फ्रेस्को के अतिरिक्त फेस्को–सेको में लघु चित्र पद्धति के भित्ति चित्र मिले हैं। इन भित्ति चित्रों का चित्रण महाराणा भीमसिंह की पुत्री कृष्णा कुमारी के स्वर्ग सिधारने की स्मृति में कराया गया। इस निवास में पश्चिमी दीवार के चित्रों में सवारियां, शिकार, धार्मिक पर्व, आदि की अच्छी सामग्री चित्रित है। तत्कालीन सामाजिक दशाओं का पूर्वी दीवार पर अच्छा चित्रण है। तथा तत्कालीन सामाजिक रीति-रिवाजों पर कई चित्र टेम्परा पद्धति में ही अन्य दीवारों पर भी चित्रित हैं। चित्रों में तत्कालीन लघु चित्र शैली का दीवार पर ज्यों का त्यों अंकन मिलता है। मेवाड़ का यह स्थान उत्कृष्ट भित्ति चित्रों से सुसज्जित है। हाल ही में वर्तमान महाराणा सा. ने पूरी दीवारों पर कांच लगवाकर इसको उचित सुरक्षा प्रदान की है।

अम्बामाता मन्दिर के भित्तिचित्र–उदयपुर के पश्चिमी क्षेत्र में अम्बामाता मन्दिर है, जिसका निर्माण स्थानीय शिलालेख के अनुसार महाराणा राजसिंह (प्रथम)[1] के राज्यकाल 1664 ई. से सूत्रधार सुरजानहट व सूत्रधार मेववजी ने किया तथा राजसिंह द्वितीय (1754 ई. से 1761 ई.) के राज्यकाल में इसे चित्रण से सुसज्जित कराया गया। इस काल के गोटाई में निर्मित धार्मिक भित्ति चित्र मन्दिर के **इजारों** में विशेष उल्लेखनीय हैं। यहां पर गोटाई फ्रेस्को में भवानी का दरबार में चित्रित है चित्र में गणेश एवं भगवान शंकर की ताण्डव मुद्रायें कला की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। (चित्र संख्या 97)

जगमन्दिर के भित्ति चित्र:— पिछोला झील के मध्य महाराणा जगतसिंह प्रथम ने जगमन्दिर राज प्रासाद बनवाये। महाराणा संग्रामसिंह जी (1710–1734 ई०) ने यहीं एक बुर्ज में कुछ चित्र अंकित करवाये थे जिनमें मानवाकृति व पशु-पक्षियों को अलंकारिक ढंग से संयोजित किया

1. कविराज श्यामलदास-वीर विनोद भाग 2, पृ. 634।

गया है। देवगढ़ के कपड द्वारा बुर्ज, अजारा की ओंवरी व मोती महल में भी इसी काल के चित्र बने प्राप्त हुए हैं।[1]

बापना हवेली के भित्तिचित्र–जड़ियों की होल उदयपुर में स्थित जैसलमेर के सेठ जोरवरमलजी बापना को महाराणा भीमसिंहजी ने 1818 ई. (वि. सं. 1875) में उदयपुर में नगर सेठ के रूप मे सम्मान दिया। उनका निवास मेवाड़ में नगर सेठ की हवेली नाम से प्रसिद्ध हैं। इस हवेली की तीनों मंजिलों में अलग-अलग समय के चित्र हैं। पहली मंजिल के गोखड़े में **युद्ध, पृथ्वीराज एवं चन्द वरदाई, ढोला मारू, लैला मजनूं**, माधवानल, कामकन्दला तथा हाथियों के विभिन्न स्वरूप शैलीगत विशेषताओं के साथ चित्रित हैं। ऊपर की दूसरी मंजिल में भी इसी प्रकार के चित्र हैं जिनमें **नायक नायिकाएं, पतंग प्रिया, आलश्यकन्या की अंगड़ाई, राजा रानी, कांटों लागो रे देवरिया, बाप्पा रावल,** एवं **रनवास** के चित्र हैं इनमें छतों पर **रति चित्रों** का बहुत ही आकर्षक चित्रण है। हवेली के सभी निवास स्थलों में **हाथियों के परिवार** (चित्र संख्या 107) चित्रित हैं। इन चित्रों का मेवाड़ के भित्ति चित्रों में विशेष स्थान है। ऊपर की मंजिल में खुली छत के चित्रों में कुशल अंकन पद्धति का प्रदर्शन है, जिसमें किशनगढ़ व बून्दी के चित्रकारों की कला का आदान-प्रदान दिखाई देता है। (देखे चित्र सं 110)

बड़ा राम द्वारा -पिछोला झील उदयपुर के पश्चिमी तट पर ब्रह्मपुरी में स्थित इस मन्दिर में गीली गोटाई के भित्ति चित्र बने हैं, ये भित्ति चित्र लाल गेरुएँ रंग के प्रयोग की प्राचीन परम्परा दर्शाते हैं, ये मन्दिर में धार्मिकता एवं सात्विकता का बोध कराते हैं। यही रंग योजना इस मन्दिर के पुस्तक भण्डार एवं शयन कक्ष में निर्मित विभिन्न साधुओं के चित्रों में हैं, जो यहां प्राचीन काल से निरन्तर चलती रही है। यहां 1848 ई. में निर्मित ध्यानीरामजी महाराज की छतरी के भित्ति चित्र तत्कालीन कला की एक अनोखी परम्परा दर्शाते हैं।

श्री नाथूलालजी जड़िया की बैठक के भित्ति चित्र–कसारो की होल उदयपुर में यह प्राचीन परम्परागत चित्रण विषयों का एक अनोखा स्थल हैं इन भित्ति चित्रों में **लैला मंजनूं सूर्पणखा, विभिन्न प्रकार के जानवर** तथा कमरे में ठीक सामने के दालान में एक **रतिक्रिया** का वृहद श्रृंगारिक चित्र दीवार पर अंकित है, जो भित्ति चित्रों में अनोखा भाव दर्शाता है। यह किस दृष्टि से अंकित हुआ, समझना दुर्लभ है। चित्रण में देवगढ़ के चित्रकारों का प्रभाव स्पष्ट होता है, ये चित्र सम्भवतः महाराणा भीमसिंहजी के राज्यकाल में चित्रित हुए हैं।

धाबाईजी की हवेली–घाणेराव की घाटी उदयपुर स्थित इस हवेली में शीश महल कक्ष एक दर्शनीय स्थल है, यहां पर प्राप्त बगीचे में विचरण करते **नायक-नायिकाओं** तथा **चित्रलेखा** के भित्ति चित्र विशेष उल्लेखनीय हैं। साथ ही कई धार्मिक भित्ति चित्रों का अंकन मिलता है, जो आला गीला चित्रण पद्धति के प्राचीन उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

कोठारीजी की हवेली–घन्टाघर के समीप उदयपुर में स्थित कोठरीजी की हवेली में भी भित्ति चित्रों का अच्छा चित्रण हुआ है, यहां चित्रित विभिन्न प्रकार के विषय वस्तु पर भित्ति चित्रों का निर्माण हुआ उनमें **ढोला मारू** एवं **राज दरबार की सवारी** आदि के चित्र विशेष कलात्मक हैं।

पिपलिया हवेली के भित्ति चित्र–उदयपुर के पश्चिमी भाग में नागानगरी ब्रह्मपुरी पिछोला के किनारे पर स्थित इस हवेली का रंग निवास जो तीसरी मंजिल के कक्ष में हैं बहुत आकर्षक कलाकृतियां यहां पर सुरक्षित हैं ये 1800 ई. में बने टेम्परा पद्धति के भित्ति चित्र हैं। यह महाराणा भीमसिंह कालीन राजप्रासादों में कृष्ण निवास के भित्ति चित्रों के समरूप सम्भवतः उसी काल का

1. श्रीधर अंधारे— देवगढ़ पेंटिंग पोर्टफोलियो, ललितकला अकादमी, नई दिल्ली, पृ. 2।

चित्रण है । यहां छत के मध्य वृत्त में **रास** लीला का बारीकी से अंकन हुआ है, जो मेवाड़ के चित्रकारों की उत्कृष्ट कार्य कुशलता का परिचय देता है । इसके समीप ही पुरोहितजी की हवेली में **युद्ध** एवं **शृंगार** के चित्र भी इजारों में मिलते हैं । इस हवेली में **माधवानलकामकन्दला** का बहुत ही कलात्मक चित्रण मिलता है ।

दौलतरामजी की हवेली – खोड़ीग्रामली ब्रह्मपुरी, उययपुर में स्थित इस हवेली में 1850-52 ई. (संवत् 1908-1909) में लाख के रंगों से निर्मित भित्तिचित्रों की परम्परा यहां के रंग भवन में देखने को मिलती है । चित्रों में चित्रकार ने रंग संयोजन में विशेष दक्षता दिखाई है, प्रमुख चित्रों में **शिव परिवार, बीजल और राणकदे, उषा और अनिरुद्ध, कृष्ण व गोपियों की होली** के साथ ही शृंगार एवं वीर रस, में **मात्रिका, 'सुकप्रिया'** एवं **बेलबूटों** के उत्कृष्ट विषय वस्तु पर चित्रण हुआ है ।

कर्जाली की हवेली—मोती चौहट्टा उदयपुर से स्थित इस हवेली में प्राप्त विभिन्न पद्धतियों के भित्ति चित्रावशेषों में लाक्षारस के उत्कृष्ट चित्र देखने को मिले हैं । यहां के चित्रों में हाथियों का परिवार, **मेढ़ों की लड़ाई, शिकार की बड़े पैनल, हवेली का दृश्य** चित्र, **स्वर्ग की झांकी, बादलों की कड़-कड़ाती बिजली में सूर्य** का रथ, **राम पंचायत, राज्याभिषेक, शिव विवाह, चन्द्रमा के हिरन की गाड़ी, इन्द्र** तथा **एरावत हाथी** आदि उल्लेखनीय भित्ति चित्र हैं, ये चित्र 1800 ई. के लगभग निर्मित हुए तथा मेवाड़ की तत्कालीन सांस्कृतिक एवं कलापरम्परा में विषय वस्तु के महत्त्व को स्पष्ट करते हैं ।

बारहट हवेली के भित्तिचित्र—मटियानी चोहट्टा, उदयपुर में स्थित इस हवेली में महाराणा स्वरूप सिंह के राज्य काल में निर्मित चित्र हैं । दरवाजे के ऊपर स्थित दरी खाने में इजारों के भित्ति चित्र आकर्षण का केन्द्र है, जिनमें **सूअर का शिकार, पागल हाथी, झूलती हुई नाइकाएं** तथा **रनवास** में नृत्य आदि के प्रभावपूर्ण चित्र हमेरजी गजधर के तत्वावधान में निर्मित हुए, ये भित्ति चित्र आलागीला पद्धति के उत्कृष्ट उदाहरण हैं । (चित्र संख्या 108 अ एवं 108 ब) ।

पानेरी भवन के भित्ति चित्र—जगदीश मन्दिर के निकट उदयपुर में स्थित देवकिशनजी पानेरी के शृंगार कक्ष में **गोपाल कृष्ण की मुद्राएं, युद्ध का दृश्य, नाव की सवारी** आदि महत्त्वपूर्ण भित्ति चित्र निर्मित हैं । इन्हीं चित्रों में कई **युगल प्रेमियों** एवं रतिचित्रों का अंकन भी दर्शनीय हैं । सभी इजारों में गोटाई की पद्धति में अंकित आकर्षक चित्र हैं ।

गणेशलालजी के रंग भवन चित्र—गनगौरघाट के निकट उदयपुर में स्थित भट्टजी गणेशलालजी के रंग-भवन में सम्वत् 1903 (1845 ई.) के लगभग बने लाक्षा रस चित्रों का अच्छा चित्रण हुआ है, जिनमें **माधवानल कामकन्दला, कन्दुक-प्रिया, शृंगार एवं फुन्दी** के गति पूर्ण रेखाओं में चित्रित-चित्र उदयपुर के भित्ति चित्रों में अपना प्रमुख स्थान रखते हैं । इसके समीप ही गोपालजी पानेरी के भवन में गोटाई व लाक्षारस के उत्कृष्ट भित्ति चित्रों का निर्माण हुआ है ।[1]

एकलिंग मन्दिर के भित्ति चित्र—मन्दिर में स्थित गुसाईजी की गद्दी के पीछे पश्चिमी दीवार पर उपलब्ध **'शिव-परिवार'** चित्र सं. 96 तथा **'हाथियों के मध्य लक्ष्मी'** का भित्ति चित्र उल्लेखनीय हैं । ये चित्र प्रारम्भ में गुटाई चित्रण पद्धति से बने, किन्तु विभिन्न राज्यकाल में साज-सज्जा के समय चित्रकार इन्हें छुए बिना नहीं रहे, अतः इन चित्रों पर पुनः कार्य हुआ ज्ञात होता हैं ।

---

1. पो. भवर शर्मा— आकृति (रा. ल. क. अ. पत्रिका) जुलाई 1973, पृ. 9 प्राचीन भित्ति चित्रों का ज्ञाता श्री भवर शर्मा ने विशेष अध्ययन किया है उनसे प्राप्त सहयोग के लिये लेखक उनका आभारी है ।

ये भित्ति चित्र महाराणा संग्राम सिंह एवं जगतसिंह द्वितीय के राज्य काल 1710-1751 ई. के लगभग चित्रित हुए अनुमानित होते हैं। इनमें चित्रकार जगन्नाथ की चित्रण पद्धति का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इनके अतिरिक्त गुसाईजी के निवास में कई भित्ति चित्र है। यहीं पर लकुलीश मन्दिर के शिलालेख 971 ई. के समकालीन **सरस्वती** के उच्चित्र को पाकर उस काल की उन्नत कला परम्परा का अनुमान हो जाता है।

महुवा वाला अखाड़ा के भित्ति चित्र—नाथद्वारा में मुख्यत: श्रीनाथजी के मन्दिर में प्राचीनतम चित्रों का निर्माण हुआ तथा समय-समय पर भित्ति चित्रों का चित्रांकन में चित्रण कार्य की प्राचीन परम्परा रही है वही पर कई भित्ति चित्रों का निर्माण होता रहा है। महाराणा संग्राम सिंह द्वितीय के राज्यकाल 1710-1734 ई. के मध्य इस अखाड़े में स्थित भवन में बहुत सुन्दर गोटाई के कई भित्ति चित्र बने, जिनमें सुन्दर व सुडोल मानवाकृतियों का अंकन है। अखाड़े की बाहरी दीवार पर अब तक गोटाई फ्रेस्को में निर्मित **'टोडीरागनी'** का चित्र सुरक्षित है, जो उदयपुर से नाथद्वारा पहुँचने वाले शिल्पी चितेरे श्री एकलिंगजी की उत्कृष्ट कृति है चित्र में गतिपूर्ण सरल रेखांकन विशेष प्रभावपूर्ण है। गेरुऐ रंग में रेखांकन होते हुए भी लयबद्धता एवं मौलिक चित्रण पद्धति का यह चित्र संख्या 103 एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

गोवर्धन कुण्ड के भित्ति चित्र—नाथद्वारा के पूर्व दिशा में बसस्टेण्ड के निकट मालाजी मन्दिर में एक बैठक गोटाई फ्रेस्को से सुसज्जित है। ये चित्र गीली गोटाई के हैं। इन चित्रों का निर्माण चित्रकार नारायणजी ने सं. 1925 (1868 ई) में गेरुए रंग की रेखाओं से **युद्ध दृश्य** जिनमें विदेशी सैनिकों का चित्रण हैं, तथा **हाथी ऊँट** व **घोड़ों** की आकृतियां बहुत ही कलात्मक रूपों में अंकित की हैं। इस प्रकार तिथि युक्त चित्रों में यह कलाकृतियां विशेष उल्लेखनीय हैं।

श्रीनाथ मन्दिर नाथद्वारा के भित्ति चित्र:—मन्दिर के धार्मिक कार्यों में प्राय: सूखी, दीवार पर ही चित्रण कार्य होता रहा है, ये नाथद्वारा में नंगारखाना के दरवाजे, सूरजपोल, सिंहपोल ध्रुव बारी, आनार चौक, कीर्तनियों की गली, फूलघर, पानघर, परछना, नवनीत प्रिया मन्दिर एवं कमल चोक की दीवारों पर देखे जा सकते हैं। इनमें धार्मिक घटनाओं का चित्रण है तथा सुन्दर विलास बाग के दरवाजे **मोती महल** के **गोखड़े** के बाहर व प्रवेश द्वार पर **श्री नाथजी** एवं उनके **भक्तों के आदमकद अंकन, आरती उतारती हुई, पानी व दूध पिलाती हुई बृज की नारियां, अप्सराएँ** तथा सवारी के लिये **सजे हुए घोड़े** व **एरावत हाथी** के उत्कृष्ट चित्रण की परम्परा रही है जिसे यहाँ के सभी चित्रकार सम्मिलित होकर निभाते रहे हैं।

देवगढ़ के भित्ति चित्र—देवगढ़ के किले में स्थित महलों के गुम्बजों में 1710-1720 ई, के मध्य **शिकार, हाथियों के झुण्ड, राजसी ठाठ-बाट, राज दरबार** तथा अन्य सामाजिक विषय वस्तु के साथ ही **कृष्ण लीलाओं** से सम्बन्धित भित्तिचित्र अंकित हुए हैं। यहीं पर कपड द्वारा के भित्तिचित्रों में उदयपुर के चित्रकारों ने कार्य किया प्रतीत होता है, जो उदयपुर में महाराणा संग्रामसिंहजी के काल में चित्रित जग मन्दिर के भित्ति चित्रों के अनुरूप हैं। इसी तरह देवगढ़ महलों में **अजारा की ओवरी, मोती महल** आदि स्थानों में चित्र मिले हैं।[1] जो तत्कालीन चित्रकार चोखा की चित्रण पद्धति में 1800 ई. में चित्रित किये ज्ञात होते हैं

कुम्भलगढ़ के भित्ति चित्र—इस दुर्ग का निर्माण महाराणा कुम्भा के राज्य काल में हुआ। उस युग के चित्रावशेष उपलब्ध नहीं हुए हैं, परन्तु प्राचीन मन्दिरों के बन्द हिस्सों में भित्ति चित्रों की सम्भावना की जा सकती है। यहां पर 1850 ई. के बाद इजारों का कार्य करवाया गया जिनमें

---

1. श्रीधर अंधारे— देवगढ़ पेंटिंग, (ललितकला अकादमी नई दिल्ली) पृ. 2।

हाथियों की विभिन्न मुद्राएँ, जंगली हाथी, शेर से लड़ते हुए हाथियों के झुण्ड चित्र सं. 104 भित्ति चित्र उल्लेखनीय हैं ।

शाहपुरा के भित्ति चित्र – शाहपुरा में नाहरसिंहजी, उम्मेदसिंहजी एवं सुदर्शनदेवजी के समय निर्मित बगत विलास, बगरु जल महल, सरवत विलास आदि राजप्रासादों में भित्ति चित्रण कार्य हुआ, किन्तु अब अधिकतर धूमिल पड़ गये हैं । यहीं चमना बावड़ी जो महिला आश्रम में है, इसके उत्खनन में प्राचीन भवन भी मिले हैं । चित्रावशेष मुख्यतः धोबियों के देवरे भाटियों के देवरे, तेलियों से देवरे एवं रामद्वारा में मिले हैं ।

धोबियों का देवरा—शाहपुरा में स्थित तलाब के किनारे प्राचीन देवरे (देवालय) में गेरुए रंग से बहुत ही उत्कृष्ट चित्रों का निर्माण हुआ है । ये चित्र 1700–1750 ई. लगभग के मध्य अंकित हुए प्रतीत होते हैं । इनकी रेखांकित मुद्राओं में यहां की ठोस परम्परा है, जो देवनारायणजी की पड़ों में मिलती है । चित्र अत्यन्त जीर्ण अवस्था में है । (देखें चित्र संख्या 101)

भाटियों का देवरा:—शाहपुर में सर्वत्र पाबूजी एवं देव नारायणजी की फड़ों (पड) के निर्माण का प्रभाव भित्ति चित्रों में मिलता है । मानो यहीं बैठ कर इस कथा–चित्र की प्राचीन काल में व्याख्या की जाती रही हो । ये चित्र सशक्त चित्रण पद्धति के अच्छे प्रमाण हैं, जो यहाँ के चित्रकार धूलजी जोशी द्वारा निर्मित हैं । स्थानीय रामद्वारा में भी जोशी परिवार द्वारा किये गये चित्रण कार्य हैं, जो टेकजी मुकन्दजी की परम्परा के उत्कृष्ट उदाहरण हैं इनका विस्तृत विवेचन चित्रकारों के वंश वृक्ष में किया गया है ।

सिंघवी हवेली गंगापुर—यहां सोमानी मोहल्ले में स्थित सिंघवीजी की हवेली के बाहर झीकीं व आरइस पर बने भित्ति चित्रों में 1820 ई. के कम्पनी शैली से प्रभावित तत्कालीन सामाजिक स्थितियों का चित्रण हुआ है चित्र में **नायक-नायिका** चित्र सं. 109 व **ढोला मारू** के चित्रों की अभिव्यक्ति है । हवेली के बाहर छज्जों के ऊपर एवं गोखडे के नीचे विभिन्न प्रकार के **रति चित्र** भी अंकित हैं । यहीं पर पिछोलियों की हवेली के बाहर भी विभिन्न रंगों के **रेखा चित्र** मिलते हैं जिनमें **सैनिक** एवं तत्कालीन सामाजिक जीवन का स्पष्ट चित्रण है ।

गंगाबाई की छतरी : गंगापुर—1791 ई. में ग्वालियर के महादजी शिन्दे की पत्नी गंगा बाई का यहाँ स्वर्गवास हुआ जो देवगढ़ व उदयपुर के मनमुटाव को सुलह कराने जा रहे थे । इसी स्मृति में इस गांव को गंगापुर नाम से सम्बोधित किया गया । यहां 1805 ई. में छतरी के पत्थरों पर विभिन्न रंगों की सुदृढ़ रेखाओं में सामाजिक कार्यों में लीन **नारियों, राजा-रानी** की **कहानियों, घुड़सवारों एवं सैनिकों** की विभिन्न मुद्राओं को रेखांकित एवं चित्रित किया है । ये चित्र अपने स्थानीय शैली के अनोखे उदाहरण हैं । इनमें मेवाड़ की देवगढ़ शैली तथा यहाँ की स्थानीय भित्ति चित्रों के मिश्रण की एक नवीन परम्परा दिखाई देती है । चित्र संख्या 109 ब इसका अच्छा उदाहरण हैं

जोध निवास सलुम्बर के भित्ति चित्र : सलुम्बर के प्राचीन महलों में बने चित्र काल की तीव्र गति के कारण प्रायः धूमिल एवं नष्ट हो चुके हैं फिर भी 1800 ई. में निर्मित जोध निवास में कुछ भित्ति-चित्र मिले हैं जिनमें **भगवान कृष्ण** तन्वंगी मुद्रा में गायों के मध्य खड़े बाँसुरी बजा रहे है । इसमें गायों का गतिपूर्ण अंकन दर्शनीय है ऐसे ही एक स्थान पर **लैला मजनूं** की भावपूर्ण मुद्राओं का आकर्षक चित्रण है मजनूं को कृषकाय अवस्था में चित्रित किया है । समीप ही पेड़ पर पिंजरे में तोता दिखाया है जिसमें भावात्मकता का पुट है । तीसरा चित्र चन्दवरदाई की वीर रस कवित्त से ओतप्रोत भाषाभिव्यक्ति "**चार बाँस चौबीस गज अंगुल अष्ट प्रमाण**, के अनुरूप चित्रण मिलता है । इसमें पृथ्वीराज द्वारा मोहम्मद गौरी को निशाना बनाते चित्रित किया है । यह चित्र सलुम्बर के प्रासादों के गतिपूर्ण अंकन को दर्शाता है । (चित्र संख्या 100)

वरदिया निवास के भित्ति चित्र: हूमड़ों की गली सलुम्बर में स्थित इस निवास में विक्रम सम्वत् 1922 (1865 ई.) में निर्मित भित्ति चित्र मिले हैं। ये चित्र इस भवन में ऊपरी मंजिल के एक कक्ष में टेम्परा पद्धति से चित्रित किये हैं। इन चित्रों में **शृंगारिक रतिभाव** एवं अन्य सामाजिक **रीति रिवाजों** तथा **ढोला मारू** के कथानक का आकर्षक चित्रण है। दूसरी ओर गोटाई फ्रेस्को में यहां भी **पृथ्वीराज का चित्र** इजारों में चित्रित किया गया है। जो उक्त चित्र के अनुरूप यहाँ का एक प्रिय-विषय जान पड़ता है।

शम्भूलालजी दोषी निवास--सेठी गली सलुम्बर में स्थित इस निवास के ऊपर दूसरी मंजिल में कई महत्त्वपूर्ण चित्रों का चित्रण है। जिनमें **माधवानलकामकन्दला, पृथ्वीराज की वीरगाथाओं** तथा **महाराणा प्रताप के युद्ध** चित्र मिले हैं इन चित्रों में तत्कालीन वेषभूषा में जोश पूर्ण मानवाकृतियों को लाल रंग की पृष्ठभूमि में उभारा गया है। यहीं पर भक्ति भावनाओं से ओतप्रोत–**भगवान कृष्ण गोवर्धन पर्वत लिये** खड़े चित्रित किया है तथा उनके आसपास नर-नारी एवं विभिन्न प्राणियों को उस पर्वत के नीचे सुरक्षित खड़े दिखाया है। सभी मानवाकृतियाँ पर्वत के नीचे लकड़ियाँ टिकाये भावपूर्ण मुद्रा में चित्रित हैं। सलुम्बर के ये सभी भित्तिचित्र यहाँ की स्थानीय परम्परा को दर्शाते हैं। (चित्र संख्या 105)

बाँकियाजी का देवरा :—फतहनगर के सनवाड नामक स्थान में बाँकियाजी का प्राचीन देवालय है। यहाँ के चित्र मेवाड़ के तिथियुक्त भित्ति-चित्रों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। यह प्राचीन देवरा उपमन्यु गोत्री नाथद्वारा के अंगीरा चित्रकारों के कुल देवता का है। यही देवरा प्राचीन काल में इस वंश वृक्ष का निवास लदानी (मावली) होने की याद दिलाता है, जिस पर विस्तृत व्याख्या अन्तिम अध्याय में की गई है। चित्रकार चतुर्भुजजी का तिथियुक्त चित्र सं. 106-स है, सं. 1936 (1879 ई.) में इस देवरे के चित्रों का निर्माण कार्य किया गया। इन चित्रों में विभिन्न **देवी देवताओं, हाथियों की लड़ाई** तथा दरवाजे के दोनों ओर दीपक एवं आरती लिये **खड़ी नारी के** चित्र सं. 107 अ एवं ब की मुद्राएँ विशेष आकर्षक हैं। यहाँ के चित्रों की जानकारी श्री घनश्याम शर्मा के सौजन्य से प्राप्त हुई है। जो स्वयं उपमन्यु गोत्री प्रतिभासम्पन्न परम्परागत चित्रकार है।

मेवाड़ क्षेत्र में प्राप्त उक्त भित्ति चित्रावशेषों में गोटाई के भित्ति चित्र मोटीजीकी से प्लास्टर करके गीली परत पर स्फूर्त रेखांकन से बने हैं। इनको देखते हुए अजन्ता के भित्ति चित्रों की परत बहुत पतली हैं।[1] जबकि मेवाड़ में गोटाई में **फ्रेस्को-बोनों**, आला गीला पद्धति में मोटे प्लास्टर पर चित्र अंकित है तथा सूखी दीवार के भित्ति चित्र प्रायः पतली-परत वाले **फ्रेस्को-सेको** टेम्परा पद्धति में बने हैं।[2] उदयपुर में पीपलिया की हवेली, राज महल के कृष्ण विलास तथा सलुम्बर के वरदिया निवास में देखे गये भित्ति चित्रों में यही टेम्परा लघु चित्र पद्धति हैं। आज भी मेवाड़ विभिन्न पर्वों पर ऐसे भित्ति चित्र सर्वत्र बनते बिगड़ते दिखाई देते हैं। मेवाड़ में यह कला की प्राचीन धरोहर असंख्य स्थानों में अंकित है पर यहां उनमे से चयनित कुछ विशेष स्थलों की विषय वस्तु का उल्लेख मात्र ही कला परम्परा की दृष्टि से उपयुक्त माना है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मेवाड़ के शिलोत्कीर्ण चित्रों, लकड़ी की पट्टलिकाओं, ताड पत्रों एवं कागज पर बने चित्रों की परम्परा में समानता है। शाहपुरा के भित्ति चित्रों में पट्ट चित्रों की पद्धति स्पष्ट दिखाई देती है। मेवाड़ में प्रायः सभी ठिकानों, मन्दिरों एवं राज प्रासादों में भित्ति चित्र निर्मित हुये हैं। यहां प्रत्येक ठिकाने की बैठक में सतह से ढाई फीट ऊँचाई तक के भाग में **इजारा** अंकित करवाने की एक प्राचीन परम्परा रही है जिसे विभिन्न प्रकार के सामाजिक एवं राजसी ठाट-बाट से प्रभावित होकर सुसज्जित कराने की एक मौलिक सूझ-बूझ यहां के चित्रकारों एवं शासकों में रही है, जो भित्ति चित्र फलकों में दृष्टव्य है। ☐

---

1. ई. बी. हेवेल— द आर्ट हेरीटेज आफ इण्डिया पृ. 3।
   जे. ग्रिफित— अजन्ता वाल्यूम। पृ. 18।
2. डा. रा. अ. अग्रवाल— मारवाड़ मुराल पृ- 61-69।

5. चित्रों के प्रमुख विषय

मेवाड़ के सचित्र ग्रन्थों, लघु चित्रों एवं भित्ति चित्रों का विषय वैचित्र्य शास्त्रीय धरातल पर आधारित रहा है । मेवाड़ शैली में प्रारम्भ से लेकर अब तक वर्णित विषयों में प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करने के लिये चित्रकार ने निश्चित रंगों, रेखाओं, प्रतीकों एवं अभिप्रायों की रचना अपने परम्परागत मूल्यों, मौलिक चिन्तन एवं मनन के आधार पर की है । मेवाड़ चित्र शैली में चित्रण के प्रमुख विषय निम्न रहे हैं:—

1. धार्मिक एवं पौरणिक काव्य विषयक चित्र ।
2. ऐतिहासिक चित्र एवं विज्ञप्ति पत्र ।
3. सामाजिक रीति-रिवाज एवं विभिन्न पर्वों का चित्रण ।
4. राग रागिनी, बारहमासा एवं नायक-नायिकाओं के शृंगारिक चित्र ।
5. आखेट एवं युद्ध सम्बन्धी चित्र ।

धार्मिक एवं पौराणिक काव्य विषयक चित्र

कला एवं धर्म का सदियों से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रहा है । कला ने धर्म को रूप प्रदान किया तो धर्म ने कला को सात्विकता दी यही बात मेवाड़ के धार्मिक चित्रों में दिखाई देती है । धार्मिक विषयवस्तु का चित्रण मेवाड़ के प्रारम्भिक चित्रों में अधिक हुआ तथा चित्रों पर जैन व हिन्दू धर्म का विशेष प्रभाव रहा है । जिनमें विभिन्न धार्मिक दर्शन के साथ-साथ पशु पक्षियों का भी भावात्मक अंकन है । सचित्र ग्रन्थों में जो चित्रण सामग्री है, वह श्वेताम्बर सम्प्रदाय से सम्बन्धित जैन ग्रन्थों में **पश्चिमी भारतीय चित्र कला** के रूप में मेवाड़ में विकसित हुई पाई जाती है । कालान्तर में यही विषयवस्तु राजपूत चित्र शैली में दिखाई दी । जैन धर्म में नेमीनाथ प्रभु के रूप में, कृष्ण वासुदेव के रूप में, आदर्श पुरुष बलदेव के रूप में राम को माना है । इसके अलावा सरस्वती, इन्द्र, वरुण, काली, यक्ष यक्षणियां, चक्रेश्वरी अम्बिका तथा पद्मावती के रूप में परिवर्तित होते हुये शनैः शनैः यह स्वरूप राजस्थान के पश्चिमी भारतीय चित्र शैली में मिल गये इसके अतिरिक्त प्रारम्भ से ही श्वेताम्बर जैनों में **कल्पसूत्र** एवं दिगम्बर जैनों में **यशोधर चरित्र** को चित्रित कराने की सुदृढ़ परम्परा रही है । आहड़ में श्वेताम्बर जैन सचित्र ग्रन्थ **श्रावक प्रतिक्रमण सुत्तचूर्णि** का चित्रण हुआ । देलवाडा में श्वेताम्बर जैनियों द्वारा **सुपासनाह चरियम** सचित्र ग्रन्थ एवं वहीं नेमीनाथ मन्दिर में **ज्ञानार्णव** नामक दिगम्बर जैन सचित्र ग्रन्थ भी रचा गया । इन सचित्र ग्रन्थों का मेवाड़ के शैलीगत चित्रण परम्परा में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है । ये तिथियुक्त चित्र मेवाड़ की चित्रकला के प्रारम्भिक पुष्ट प्रमाण है । (चित्र संख्या 10 एवं 11)

मेवाड़ के शासक शिव के उपासक व एकलिंगजी को आराध्य देव मानते रहे हैं साथ ही यहाँ वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार भी होता रहा है । भक्ति आन्दोलन ने इस सम्प्रदाय को नवीन शक्ति दी

तथा मेवाड़ में **मीरा** के पद खूब श्रद्धा से गाये जाते रहे है। कुंभा परम वैष्णव भक्त थे जगतसिंह प्रथम ने जगदीश मन्दिर बनाया एवं **भागवत, गीत गोविन्द, सूर सागर, रामायण, महाभारत** आदि धार्मिक विषय वस्तु पर चित्र सम्पुटों को चित्रित कराया गया। महाराणा जगतसिंह प्रथम एवं राजसिंह के राज्य काल में **रामायण** के विभिन्न **काण्डों** का चित्रण चित्रकार साहीबदीन एवं मनोहर ने किया। रामायण के चित्रों की यही परम्परा महाराणा जयसिंह एवं उनके बाद में भी मेवाड में प्रचलित रही जिसका विस्तृत विवेचन अध्याय तीन में हो चुका है, इन चित्रों में मेवाड़ नरेशों ने अपने आपको सूर्य वंशी होने के कारण मर्यादा **पुरुषोत्तम** भगवान राम के पन्थ में माना है तथा चित्रकारों ने रावण को आक्रामक अमानुषी बाहरी जातियों के रूप में चित्रित किया है। वैष्णव एवं वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायिओं को जब औरंगजेब की हिन्दू धर्म विरोधी नीति अनुरूप ब्रज से निकाल दिया तो महाराणा राजसिंह ने मेवाड़ में नाथद्वारा नामक स्थान में सुरक्षा देकर इस धर्म की रक्षा की। इस तरह उदयपुर नाथद्वारा एवं काँकरोली केन्द्रों में वैष्णव धर्म सम्बन्धित भगवान कृष्ण की लीलाओं के कई केन्द्रों में चित्र बनवाये जाते रहे हैं। फलस्वरूप नाथद्वारा की एक अलग मौलिक चित्र शैली विकसित हुई।

महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी थे तथा उसी काल में धार्मिक चित्रों की रचना सबसे अधिक हुई। तत्पश्चात उनके वंशजों ने वल्लभ सम्प्रदाय को उच्च स्थान दिया और इसके सभी आनन्ददायक स्वरूपों को सूर और बिहारी के काव्यानुरूप मुखरित एवं चित्रित कराया। राधा व कृष्ण का प्रेम अकेला ही इतना रसमय सिद्ध हुआ कि उस पर किसी प्रकार के आवरण की आवश्यकता दिखाई नहीं देती क्योंकि वहां भक्ति की सूरसुरी प्रेम सुधा में मिलकर भावनात्मकता स्वर्गीय सुखों की सृष्टि कर देती है। यही भावाभिव्यक्ति **गीत गोविन्द, कृष्ण चरित्र, कवि प्रिया**, तथा **रसिक प्रिया** के चित्रों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है (चित्र संख्या 32, 40, 41 एवं 53)।

वल्लभ सम्प्रदाय के चित्रों में जो भावाभिव्यक्तियां हैं वे उस समय चित्रित **सूर सागर** की पदावलियां सबसे अधिक मुखरित हुई है। (चित्र संख्या 53) इसके साथ ही कुछ अभिव्यक्तियां ऐसे चित्रकारों द्वारा चित्रित हुईं जो सूरदास के हृदय की गहनता तक पहुँच गये थे। इसी तरह **बिहारी-सतसई** में बिहारी की भावनाओं के अनुरूप चित्रण करने वाले चित्रकार कवि की भावप्रगल्यता को किस हद तक साकार रूप देने में समर्थ हुआ, यह इन चित्रों को देखने से स्पष्ट हो जाता है। इनमें चित्रकार जगन्नाथ महाराणा संग्रामसिंह के राज्यकाल में कई काव्यों को साकार रूप देने वाले प्रतिनिधि चित्रकार थे।

सूर सागर एवं भागवत के चित्रों में पदावलियों के साथ साथ नन्द बाबा कृष्ण जन्म पर गोदान देते हुये, गायों का पूजन करते हुए, ग्वालों को पगड़ी बंधवाते हुए, वस्त्राभूषण बांटते हुए, गाते बजाते ग्वालबाल ब्रजवासीगण दही-दूध की होली खेलते हुए, अन्त.पुर वासी स्वजन, बधाइयां गातीं बृजवनिताएँ प्रसूतिगृह में यशोदा और उनसे सम्बन्धित अनेक दृश्यों का चित्रकार ने एक ही फलक पर बहु आयामी अंकन किया है, जो मेवाड़ के चित्रकारों की कार्य कुशलता के अद्भुत उदाहरण हैं। धार्मिक चित्रों की अनेक घटनाओं के चित्रण में चित्रकार ने **दृश्यजन्यलघुता** का अच्छा प्रयोग किया है जिसमें दर्शक आसानी से एक भाव के बाद दूसरा भाव एक ही चित्रफलक में देख सकता है। भगवान कृष्ण की धार्मिक क्रीड़ाओं के चित्रण में चित्रकार स्वयं भावानुकूल होकर अपने आपको ब्रज का एक **दर्शक** बना हुआ, मानता है। 'मैया मेरी कबहुँ बढ़ेगी चोटी' आदि अनेक पदों और भावनाओं से ओतप्रोत भाव-माधुर्य की तन्मयता में चित्रकार का मन बेचैन होने लगता है। इसी तरह ब्रज की गलियां यमुना के निकुंज, ग्वाल-बाल और प्रेमातुर राधा-रानी के रूप आंखों के सम्मुख आ जाते हैं। इनके विपरीत प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान उदयपुर में सुरक्षित **दुर्गा सप्तशती** 1740 ई.

के लगभग चित्रित ग्रन्थ में दुर्गा की अराधना में देवी देवताओं के साथ राक्षसों का मानवीय कुरूप चेहरों में चित्रण हुआ जो धर्म एवं अधर्म के बदलते रूप सौन्दर्य को दर्शाते हैं यह कृति महाराणा के पूजन में रही म. जगतसिंह द्वितीय के काल से ही धार्मिक आस्था के कारण चन्दन और कुंकुम के छींटों से प्रभावित रही है। इन धार्मिक चित्रों में अद्भूत कौशल और कलाकार की आत्मविस्मृति की अमिट छाप लगी हुई है। जिसे भक्त कवियों ने शब्दों में बान्धा तो मेवाड़ के इन परम्परागत, चित्रकारों ने उसे ही तूलिका व रंगों से साकार रूप देकर अमर कर दिया है। धार्मिक चित्रों का यही क्रम आज भी नाथद्वारा में प्रायोगिक चित्रण रूप में देख सकते हैं।

पशु-पक्षियों का भावात्मक अंकन

इसी धार्मिक परिवेश से मेवाड़ में चित्रकारों ने पशुओं के चित्रण को भी अपना मौलिक मनोवैज्ञानिक रूप प्रदान किया है। कृष्ण के साथ गायें भी श्रृद्धा व भक्ति का विषय बन गई। मयूर व जंगल के अन्य पशु-पक्षियों का भी इन चित्रों में अच्छा चित्रण हुआ है। चित्रकारों ने पशुओं को कहीं देवता मानकर चित्रित किया है तो कहीं स्वयं ने पशुओं के व्यक्तिगत दुःख-सुख की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया है। प्रत्येक स्थान पर बाह्य रूप में चाहे पशु को पशु रूप में दर्शाया गया हो, किन्तु उसे मानवोचित गुणों, करुणा, सहानुभूति, प्रेम आदि से भी विभूषित किया है। घरेलू एवं धार्मिक जीवन को भी पशुओं के माध्यम से व्यक्त किया है। धार्मिक चित्रों में जहाँ कहीं पशुओं का चित्रण है वहाँ चित्र के वातावरण के अनुकूल अपनी मूक-भावना, करुणा, स्नेह तथा सात्विकता से ओत-प्रोत दृश्य दिखाई देता है। 1520 ई. के **युद्ध चित्र** में हाथी व घोड़े युद्ध की भाव भंगिमा में स्वयं भी अनुभव कर रहे हैं। (चित्र संख्या 14) मेवाड़ में गाय के चित्रण में सर्वत्र गति व सजीवता अंकित हुई है। इसकी भाव भंगिमायें देखकर अजन्ता के हाथियों की मुद्रायें याद आ जाती हैं। तूलिका के तनिक संचालन मात्र से उनकी आंखें, गर्दन व कानों में इतना भाव आ गया है कि चित्र में पशु मूक होते हुए भी मानों अपने भावों को व्यक्त करते हैं। मेवाड़ के लघु एवं भित्ति चित्रों में यह बात सर्वत्र देखी जा सकती है। इनमें हाथियों का चित्रण बड़ा रोचक है, हाथी के दांतों, पांवों तथा पीठ के ऊपर की वंक्र रेखायें अपनी प्राचीन पुष्ट परम्परा दर्शाती है। हाथी में जोश पागलपन, कोमल स्वभाव, करुणा, सात्विकता आदि का लयबद्ध चित्रण (चित्र संख्या 47 एवं 50, 101, 103, 107) में अच्छा चित्रण हुआ है। जानवरों को अधिकतम प्रतीकात्मक रूपों में चित्रित किया गया है। हिरण गति एवं रति का प्रतीक है, तो हंस **योवन** का प्रतीक (चित्र संख्या 23, 33, 43) है। ऐसे ही गधा मूर्खता का प्रतीक है, **आर्ष रामायण** में रावण के सर पर एक गधे का मुख अंकित करके विद्या से गधे के समान लदे हुए (चित्र संख्या 30, 34) अर्थात् विद्वान होते हुए भी गधे की भांति मूर्ख होना बताया है। इसी तरह कई पशु-पक्षियों को प्रतीक रूपों में अंकित कर कला व धर्म का घनिष्ठ सम्बन्ध दर्शाने का प्रयास किया है।

ऐतिहासिक चित्र

मेवाड़ में ऐतिहासिक चित्रों का मुख्य रूप से प्राचीन शास्त्रों, विज्ञप्ति पत्रों एवं व्यक्ति चित्रों में चित्रण हुआ है। आठवीं सदी से **समराइच्चकहा**[1] में चित्रण की तत्कालीन योजनायें एवं विषयवस्तु का विवरण इस ग्रन्थ के दूसरे भव में सिंहकुमार व कुसुमावती के प्रेम प्रसंगों में किया गया है। 15वीं सदी में **राजवल्लभ मण्डल** में सूत्रधार मण्डन लिखते हैं कि स्तम्भों एवं दीवारों पर हाथी, घोड़ा, सिंह एवं नृत्य करती हुई नर्तकियां बनाई जावें तथा एक रंग की भूमि बनाई जावे, एक क्रीड़ा का मण्डप हो, राज-वैभव के शौर्य को दर्शाने की इससे अधिक क्या अभिव्यक्ति हो सकती है।[2] इसी को परम्परागत चित्रकारों ने अपने अनुभव के आधार पर शास्त्रीय दृष्टिकोण से राज भवनों में चित्रित किया है, जो हिन्दू परम्परा के सूचक हैं।

---

1. हरमल जेकोबी— हरिभद्र सूरि कृत समराइच्चकहा पृ. 7।
2. राजवल्लभ मण्डन अध्याय 8 श्लोक सं. 20 से 24।

राजा के व्यक्तिगत जीवन को वाटिका अथवा उपवन में चित्रित किया जाना, जिसमें वृक्ष व पौधे चम्पा, कन्द, सुवर्ण, केतकी, नारंगी, लालकनेर, आम, जामुन, केले, चन्दन, बड़ा पीपल, हरडें, आंवला, आशापाला, कदम्ब, नीम, खजूर, दाड़िम, अंगूर, पलासयुक्त बाग हो। वर्ष भर वसन्त ऋतु की बाला, मध्या एवं प्रौढा स्त्रियां सुन्दर सरस गान करती हुई प्रदर्शित है। ग्रीष्म एवं शरद-ऋतु में शीतल जल में इनकी जल-क्रीड़ायें दर्शाई गई हो। ऐसे दृश्य आनन्द विभोर एवं राजविलास की परिपूर्णता के द्योतक हैं। सूत्रधार मण्डन के इस दृष्टिकोण का कुम्भा के सम्पन्न शासन काल में निश्चय ही चित्रण कार्य होगा जिनके अवशेष न मिलने के कारण हम इस शास्त्रीय पक्ष का ही उल्लेख करते हैं। ऐतिहासिक चित्रों में उक्त अभिप्राय मेवाड़ में विशेष महत्त्व रखते हैं।

विज्ञप्ति पत्र

ग्रन्थ चित्रों एवं लघु चित्रों के अतिरिक्त लपेटफलक के रूप में जिन चित्रों का निर्माण हुआ है उन्हें **विज्ञप्ति पत्र** कहते हैं। ये लम्बे कागज पर चित्रित होते थे। इनका ऐतिहासिक महत्त्व अधिक है। एक **विज्ञप्ति पत्र** महाराणा जगतसिंह द्वितीय के समय का उदयपुर से झालोर में भेजा गया था इसमें कई सुन्दर चित्र हैं, प्रारम्भ में महलों का दृश्य बना हुआ है इसके बाद बाजार का दृश्य, मंदिरों का दृश्य तथा हाथीपोल एवं चौगान का दृश्य है। जिसका विवेचन पृष्ठ 30 पर मेवाड़ के चित्रों में देख चुके हैं। इस **विज्ञप्ति पत्र** की शैली तत्कालीन मेवाड़ की उत्कृष्ट परम्परा को दर्शाती है। यह विज्ञप्ति पत्र 18 फीट 5 इंच लम्बा तथा 8 इंच चौड़ा है। ऐसे विज्ञप्तिपत्रों का प्रचलन मेवाड़ में विभिन्न राज्यकाल में होता रहा है। प्रत्येक राजा महाराजा युद्ध या शान्ति के काल में स्थान परिचय हेतु चाहते रहे हैं व चित्रित करवाते थे इनमें विषय वस्तु के साथ ही स्थान विशेष की ऐतिहासिक गतिविधियों का भी गहराई से चित्रण होता था। इसमें राज्यभर का पूर्ण ब्योरा लम्बे चित्र में अंकित करवाया जाता था जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से भेजा जा सकता था, ऐसे ही विज्ञप्ति-पत्रों की प्रतियां बीकानेर ज्ञान-भण्डार में भी देखने को मिली है।[1] इनमें एक 1839 ई. में चित्रित **उदयपुर का विज्ञप्ति पत्र** 70 फीट लम्बा व 1 फीट चौड़ा है।[2] इस तरह के प्राचीन विज्ञप्ति पत्र मेवाड़ की चित्रण परम्परा में अनोखा उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इन चित्रों में तत्कालीन राज-प्रासादों, सड़कों तथा उनके आस-पास की दुकानों, गणगौर की सवारी व पीछोला-झील में नाव की सवारी आदि में मेवाड़ नरेश तत्कालीन वेशभूषा के साथ-साथ चित्रित हैं। ये विज्ञप्ति-पत्र दो गोल लकड़ी के डण्डों के सहारे फिल्म-स्ट्रिप की भांति देखे जा सकते हैं। इनके द्वारा ऐतिहासिक दृष्टि से समाज की तत्कालीन व्यवस्था का उचित परिचय भी हो जाता है उक्त विषय वस्तु के माध्यम से हमें इस प्रदेश की ऐतिहासिक गतिविधियाँ सरल रूप से समझ में आ जाती हैं।

व्यक्ति चित्र

मेवाड़ में व्यक्ति चित्रण की परम्परा भी उतनी ही प्राचीन है जितनी चित्रों की परम्परा है। **समराइच्चकहा** में व्यक्ति चित्रण के सन्दर्भ में शंखपुर के राजा की पुत्री रत्नावली के वर ढूँढने व वर का चित्र बना कर लाने का आदेश देने का उल्लेख मिलता है जिसका उल्लेख अध्याय दो के साहित्य के सन्दर्भों में किया जा चुका है। ऐसा ही आठवीं सदी के ग्रन्थ **कुवलयमालाकहा** में उज्जयिनी की राजकुमारी का चित्रण **"चित्र पुत्तलिया"** भी उक्त सन्दर्भों में पृ. 9 एवं 10 पर उल्लेखित है। जिससे स्पष्ट हो जाता है कि उस काल में व्यक्ति चित्रण की कुशल परम्परा विद्यमान थी। ऐसा ही दसवीं सदी में लिखे **नाग कुमारी चरित्र** ग्रन्थ में राजकुमार का हूबहू व्यक्ति चित्र बनाने का वर्णन है, उसमें लिया है कि राजकुमार जब महल के चौक में आया, तो उसकी छवि लेने को कहा गया, राजकुमार का सादृश्य अंकन किया गया, जिसके कमर में कटारी थी। 1229 ई. के शिलोत्कीर्ण भी चित्रों में **जयतुक** एवं **माऊकी** के रेखांकन व्यक्ति चित्रण का तत्कालीन स्वरूप दर्शाते हैं। तत्पश्चात् वीर विनोद में **सांगा, मीरा** व **प्रताप** के शब्द युक्त व्यक्ति चित्र योजनाएँ 16वीं एवं

---

1. अगरचन्द नाहटा सौजन्य में सुरक्षित।
2. श्री भंवरलाल नाहटा— विज्ञप्ति-पत्र आफ उदयपुर, जैन जरनल जुलाई, 1972 पृ. 11-12।

17वीं सदी के चित्रों की मिलती है। इनमें **महाराणा सांगा** का इतिहास के पन्नों में वर्णन उपलब्ध है उससे चित्रकार चित्र की तथ्यपूर्ण योजना बना सकते हैं। इन तथ्यों के **तजुक-ए-बाबरी** में[1] संदर्भ मिलता है। उक्त सन्दर्भ राणा सांगा के तत्कालीन स्वरूप एवं व्यक्ति चित्रण की उचित पृष्ठभूमि बनाता है। मेवाड़ के ऐतिहासिक व्यक्ति चित्रों में दूसरा **राणाप्रताप** का शब्द चित्र है[2] जो निश्चय ही मेवाड़ के चित्रकारों में चित्रण का प्रमुख आधार रहा जिसकी योजना ऐतिहासिक चित्रों एवं छवि निर्माण में मापदण्ड के रूप में प्रयुक्त होती रही है। इस परम्परा में श्रेष्ठ व्यक्ति चित्र **महाराणा संग्रामसिंह** (द्वितीय) 1720 ई. (चित्र सं. 43) है, जो कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर में सुरक्षित है। इसी तरह राजप्रासाद उदयपुर के कर्ण निवास के भित्ति चित्रों में भी जगतसिंह द्वितीय का वृहद् व्यक्ति चित्रण अपनी **गौरवपूर्ण** परम्परा दर्शाता है (चि. सं. 98-अ) इसी परम्परा में **महाराणा प्रतापसिंह (द्वि.) का व्यक्ति चित्र** 1751-54 ई. राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में सुरक्षित है[3] (चि. सं. 43ब) कृपाराम द्वारा प्रतापगढ़ में चित्रित **पृथ्वीसिंह देवलिया** का 1720 ई. तथा विभिन्न राजाओं के कार्य काल में बने व्यक्ति चित्रों का उल्लेख तृतीय अध्याय में किया जा चुका है।

सामाजिक रीति-रिवाज एवं विभिन्न पर्वों का चित्रण

मेवाड़ चित्र शैली में धार्मिक चित्रण के साथ ही सामाजिक एवं व्यक्तिवादी चित्रण अधिक हुआ है। जिसमें धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र के अनुकूल मानवीय गुणों का विशेष प्रभाव है। इससे चित्रकार द्वारा तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों में कला की साधना करना भी स्पष्ट हो जाता है। मेवाड़ चित्र शैली में प्रारम्भ स अन्त तक समाज की मनोदशाओं के आधार पर शान्त एवं स्वर्गिक सुखों की भावनाओं का चित्रण हुआ है। यही कारण है कि धार्मिक एवं शृंगारिक सभी चित्रों में समान सात्विक भाव झलकते हैं जो तत्कालीन सरल सामाजिक व्यवस्था का सही प्रतिबिम्ब हैं। इस प्रदेश के नरेशों ने समाज की व्यवस्थानुरूप चित्रों में सामाजिक रीति रिवाजों के अंकन को उचित महत्त्व दिया। उदयपुर महाराणा के निजी संग्रहालयों में सुरक्षित सामाजिक पर्वों पर आधारित बड़े चित्रों में **गोगुन्दा शादी में पधारे** 1753 ई.। (चि. सं. 54) तथा दशहरे पर **खेजड़ी पूजन** (1710 ई.) के चित्र सामाजिक पर्वों की प्राचीन परम्परा को स्पष्ट करते हैं ऐसे ही **नवरात्रि में खड़कजी की सवारी** (1711 ई.) महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय के राज्यकाल का महत्त्वपूर्ण चित्र है। यही नहीं महाराणा भीमसिंह के राज्यकाल में "कृष्ण विलास" के भित्ति-चित्रों में मेवाड़ के सभी सामाजिक पर्वों, उत्सवों एवं सामाजिक रीति-रिवाजों का चित्रण है। उक्त चित्रों से इस प्रदेश के महाराणाओं की सामाजिक अभिरुचि भी ज्ञात होती हैं। सामाजिक रीति-रिवाजों एवं सात्विक प्रेम-क्रीड़ाओं का प्रचलन, मेवाड़ में सर्वत्र चित्रित है। 1650 ई. के लगभग निर्मित चित्र सम्पुट **कविप्रिया** 1653 ई. में चित्रित 'रसिक-प्रिया', 1720 के सूर-सागर, 1714 ई के **'गीत-गोविन्द', सुन्दर-शृंगार** व **बिहारी सतसई** के चित्र सम्पुटों से स्पष्ट हो जाता है कि उस काल में कृष्णभक्ति प्रधान वैष्णव धर्म पुनरोत्थान, समाज का एक मात्र ध्येय था। **रघुवंश, श्रीमद्भागवत गीता, महाभारत, आर्ष-रामायण** आदि के चित्रों से इसकी उचित पुष्टि होती है। **मुल्ला दो प्याजा** में मध्यम वर्ग की नसीहत है तो नारी-जीवन से सम्बन्धित सामाजिक गतिविधियां 1780 ई. के **त्रिया-चरित्र** आदि सचित्र ग्रन्थों में व्यक्त की गई हैं तथा **पंच-तंत्र** में पशु गुणों पर आधारित मानवीय नैतिकता का प्रदर्शन है।

---

1. "महाराणा सांगा का मझला कद, मोटा चेहरा, बड़ी आंखें, लम्बे हाथ और गेहुंआ रंग था... इनके बदन पर 84 जख्म शस्त्रों के लगे थे, एक आंख बेकाम, एक हाथ कटा हुआ और एक पैर लगड़ा, ये भी लड़ाई की निशानियां उनके अंग पर मौजूद थीं।"
कविराज श्यामल दास— वीर विनोद भाग 1 पृ 371।
2. "महाराणा का कद लम्बा और पुष्ठ, आखें बड़ी, चिहरा और मूछें बड़ी, हाथ लम्बे और सीना चौड़ा था, पुराने रिवाज के मुवाफिक डाढ़ी नहीं रखते थे; और रंग गेहुआ था; चिहरे पर ऐसी तेजी थी कि तस्वीर देखकर अब भी हर एक आदमी पर रोब छा जाता है"
कविराज श्यामलदास वीरविनोद, भाग 2, पृष्ठ 164-165।
3. ओ. सी. गांगोली—सम राजस्थानी पोर्टेट्स, मार्ग वोल्यूम 11 नं. 2 (मार्च 58) पृ. 22।

इन चित्रों में मानव जीवन के सभी सामाजिक पर्वों, उत्सवों बालक के जन्म, बाल्यवास्था, युवावस्था, विवाह संस्कार, गृहस्थ जीवन, वृद्धावस्था, श्मशान-संस्कार, पैतृक-क्रियाओं, साधु-सन्तों, पुजारी, ज्योतिषी एवं गुरुजनों का सामाजिक सम्मान, चित्रकार, शिल्पियों, श्रेष्ठी जनों तथा हरिजन एवं भिखारियों आदि सामाजिक वर्गों का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में चित्रण अवश्य हुआ है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस चित्रशैली में भारतीय समाज की हिन्दू परम्परा का उचित निर्वाह हुआ है, तत्कालीन वेशभूषाओं का सामाजिक महत्त्व, एवं स्त्री पुरुषों की साज सज्जा आदि का विधिवत चित्रण हुआ है जो प्रायः सभी चित्रों में दृष्टव्य है।

राग-रागनियों सम्बन्धित चित्र

राग-रागनियों के चित्रों का प्रारम्भिक स्वरूप 15 वीं सदी से दृष्टिगत होता है। देवशानो-पाड़ो-ज्ञान भण्डार पाटन' अहमदाबाद के **कल्पसूत्र** की सचित्र प्रति (1550) में **राग व रागिनियों** के चित्र अपभ्रंश शैली में बताये पर ये पश्चिमी भारत शैली में चित्रित **कल्पसूत्र** 1575 ई. के चित्र[1] मेवाड़ के प्रारम्भिक चित्रों के अनुकूल है। यही गुजरात अपभ्रंश एवं मेवाड़ चित्र-शैली का पूर्व रूप रहे हैं। अतः राग मालाओं पर ये चित्र ही प्राचीन नमूने प्रतीत होते हैं। कालान्तर में इन चित्रों के चित्रण में दक्षता एवं विविधता बढ़ती गई। प्रसिद्ध कला मर्मज्ञ कार्ल-खण्डालावाला का विश्वास है कि प्रत्येक रागिनियों के ध्यान बीजापुर के इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय के राज्यकाल (1580-1627 ई.) में निश्चित हुए। वह शासक कवि, कला प्रेमी एवं संगीतज्ञ था[2] किन्तु मेवाड़ में इनसे पूर्व महाराणा कुम्भा (1433-1468) जैसे महान् कला प्रेमी, संगीतज्ञ, संगीत प्रेमी एवं संगीत राज्य के लेखक ही इस प्रदेश के शासक रहे। अतः बीजापुर के उक्त शाह से पहले मेवाड़ में राग-मालाओं के ध्यान निश्चित हो चुके थे जिनका विस्तृत विवेचन महाराणा कुम्भा के द्वारा लिखे **संगीत राज** में किया है तत्पश्चात् मेवाड़ में **रागमाला** के चित्रों की परम्परा पश्चिमी भारत शैली के **कल्पसूत्र** 1475 की ही चित्रण पद्धति में विकसित हुई। ये चित्र **सुपार्सनाह चरियम** 1423 ई. की श्रृंखला में है[3] महाराणा कुम्भा कालीन **संगीत राज** पर भी चित्र निर्मित होने की पूर्ण सम्भावना है तथा **चोरपंचाशिका चित्र समूह** के **बसन्त राग, राग मालकोश** एवं **गोरी** प्रारम्भिक राजस्थानी राग मेवाड़ के ही है।[4] इसी श्रृंखला में चावण्ड **रागमाला** 1905 ई. के निशरदी द्वारा चित्रित सम्पुट उल्लेखनीय है।

रागमाला में एक राग के साथ पाँच रागिनियां (पत्नियाँ) मानी गई हैं जिसमें 36 या 42 चित्र बनते हैं। चावण्ड के चित्रित चित्रों में एक राग की छः पत्नियां मानकर 42 चित्रों का चित्र-सम्पुट निशरदी ने तैयार किया। इनमें राग के पुत्र व पुत्रवधुओं तक को जोड़ कर 72-76, 80, 84 तथा 108 तक के चित्र-सम्पुट बने हैं। चावण्ड का उक्त चित्र सम्पुट 42 चित्रों का है जिस में अभी 26 चित्र ही मिले है।[5]

राग-माला के चित्रों को समझने के लिए रागों का समझना आवश्यक है। राग में स्वर आरोह प्रधान तथा रागिनी में अवरोह प्रधान होता है राग-रागिनियों की कल्पना उत्तर भारत में सर्वप्रथम हुई ये तीन प्रकार के हैं। पुल्लिंग रागों में आश्चर्य, साहस व क्रोध की अभिव्यक्ति होती है स्त्रिलिंग रागों में प्रेम ह्रास और दुःख तथा नपुंसक रागों में भय का चित्रण होता है।

मेवाड़ का एक चित्र सम्पुट जेमपैलेस राग माला नाम से सम्बोन्धित किया गया है जो जयपुर के जेमपैलेस में सुरक्षित था यह चित्र सम्पुट 1650 ई. में चित्रित हुआ तथा अब राष्ट्रीय

1. क्लास एबलिंग— रागमाला पेन्टिग 1973 पृष्ठ 130।
2. डा. जगदीश मित्तल — धर्मयुग 19 अक्टूबर 1961, पृष्ठ 8।
3. क्लास एबलिंग— रागमाला पेन्टिग 1973 पृ. 120।
4. नोमर ब्राउन—समअर्ली राजस्थानी राग पेंटिंस, जर्नल ऑफ इण्डियन सोसाइटी ऑफ ओरियन्टल आर्ट वोल्यूम 16, 1948 पृ. 1-10।
5. क्लास एबलिंग – रागमाला पेन्टिग, 1973 पृ. 159।

संग्राहालय नई दिल्ली में सुरक्षित है इसमें सात रागों की पाँच-पाँच रागिनियाँ चित्रित हुई हैं जो चित्रकार के लिये सम्बोधित नामों एवं अभिप्रायों का अच्छा आधार है, मेवाड़ के सभी चित्र निम्न सारिणी के अनुरूप चित्रित हुए हैं इनमें 7 रागो के साथ 35 रागिनियां न होकर 34 ही उपलब्ध हुई है।[1]

भैरव	भैरवी	सिन्दूरी	मालीसरी	ललित	पटमंजरी
मालकोश	खम्भावती	मालीगोड़	गोड़ी	रामगिरी	गुंनकली
हिण्डोल	विलावल	टोडी	देशाख	देवगन्धार	मधुमाधवी
दीपक	धनासरी	वसन्त	कानाड़ो वराड़ी	देसवरती	मैघवेराडी
पंचम	दक्षिणगूर्जरी	काफीगोड मल्हार	ककुभ	विभास	अडानो
श्री	मलाहार	कामोद	असावरी	केदार	—
नट नारायण	सारंग	सोरठ	कल्याण	मेघ मल्हार	मारू

उक्त रागमाला जहां की पूर्व परम्परा चांवड **राग माला** के चित्रों पर आधारित रही है जिसका चित्रण विशेष उल्लेखनीय है। इसमें **राग-रागिनियां** तथा उनके पुत्र एवं वधुओं तक को लिया गया है। अतः संक्षेप में भरतकृत उक्त राग परिवार को राग-रागिनी के चित्रों की मुद्राओं अनुसार चित्रित किया है। प्रत्येक रागिनी भी प्रायः राग शब्द से ही सम्बन्धित होती है। इनका चित्रण मेवाड़ चित्र-शैली में सफलता से वर्गीकृत किया है। रागमाला चित्रों की शैलीगत मौलिकता को रंग, पहनावे, स्थापत्य, संयोजन और अंकन में वर्गीकृत प्रमुख नायक-नायिकाओं का चित्रण चित्रकार के लिये महत्त्वपूर्ण विषय रहा है। ये चित्र सं. 26, 27 में दृष्टव्य है। केशवदास की **कविप्रिया** एवं **रसिकप्रिया** में भी यही मनोवैज्ञानिक पक्ष चित्रकारों के लिये प्रेरणाद.यक रहा है, इसके अनुरूप मेवाड़ एवं अन्य राज्यों में भी ये चित्र बनते रहे है।

बारहमासा का चित्रण

वर्ष भर के बारह मास में नायक-नायिका की शृंगारिक विरह एवं मिलन की क्रियाओं के चित्रण को **बारहमासा** नाम से सम्बोधित किया जाता है। श्रावण मास में हरे भरे वातावरण में नायिका-नायक के काम-भावों को वर्षा में भीगते हुए रूपों में, ग्रीष्म के वैशाख एवं ज्येष्ठ माह की गर्मी में पंखों के प्रतीक, नायिका को हवा करते हुए चित्रित करना, बसन्त की मन-मोहकता में झूमते हुए नायक-नायिकाओं के स्वरूप आदि उल्लेखनीय हैं जिन्हें मेवाड़ के चित्रकारों ने समय के महत्त्व एवं मनोवैज्ञानिक पक्ष का सूक्ष्म अध्ययन कर बारहमासा के विभिन्न चित्रों में साकार रूप दिया है। महाराणा कुम्भा कालीन सचित्र ग्रन्थ **रसिकोष्टक** 1435 ई. में भीखम ने विभिन्न ऋतुओं का चित्रण इसी क्रम में किया है। प्राचीन शृंगार रस की परम्परा का यह ऋतु वर्णन अपने आप में मौलिक स्वरूपों को दर्शाता है। **चोरपंचाशिका, गीतगोविन्द, कविप्रिया** आदि चित्र सम्पुटों में शृंगारी रतिभाव प्रेमी और प्रेमास्पद, नायिक के पारस्परिक सम्बन्ध की पुष्टि करते हैं। जिन्हें शृंगार वियोग और संयोग में वर्गीकृत किया जाता है। वियोग को विरह या विप्रलंभ भी कहा जाता है मेवाड़ के चित्रों में संयोग, शृंगार अनेक प्रकार का बताया गया है। शृंगारिक चित्रों की दृष्टि से संयोग या सम्भोग शृंगार के दो ही भेद हैं। सामान्य सम्भोग तथा पशु पक्षियों का सम्भोग विशेष सम्भोग, आदर्श नायक नायिका में देखा जाता है। विशेष सम्भोग के पुनः बारह भेद हैं, जिनमें प्रत्येक की चार अवस्थाएँ (सत्तायें) हैं।[2] मेवाड़ के शृंगारिक चित्र प्रायः सात्विकवृति से रतिक्रिया का आभास देते हैं चित्र सं. 40। प्रारम्भ में कृष्ण एवं गोपियों की क्रीड़ाओं को चित्रकार ने कहीं-कहीं रतिक्रिया का आधार बनाया है।[3] **गीत गोविन्द**

1. क्लास एबलिंग रागमाला पेंटिंग 1973, पृ. 173।
2. डा. प्रदीपकुमार दीक्षित—नायक नायिका का वेश और राग रागिनी वर्गीकरण पृ. 128
3. दोंजन फिलिप—इरोटिक आर्ट ऑफ ईस्ट तृ. 176

के चित्रों में कृष्ण को विभिन्न प्रकार की प्रेम लीलाओं में दर्शाकर, मानव-मन की सहज प्रक्रिया के रूप में दर्शक को शृंगारिकता के साथ-साथ आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर किया है (चित्र सं. 40 एवं 41) कहीं राधा को कृष्ण के स्वरूप में एवं कहीं कृष्ण को राधा के स्वरूप में दर्शाते हुए सम्भोग की शृंगारिक प्रक्रिया को कलात्मकता से व्यक्त किया है इनमें स्त्री-पुरुष रूपी मानव मन की रति एवं प्रेम भावनाओं को समरूप दर्शाने का प्रयास किया है (चित्र संख्या 53) इन चित्रों में स्थान-स्थान पर कामदेव को प्रतीक रूप में उनके धनुषबाण को उग्र या शान्त रूप से अंकित करते हुए काम-भाव की दशा और वातावरण के प्रभाव को चित्रित करने की सफल अभिव्यक्ति की है ।[1] रीति-कालीन कवियों की उन्नत अभिव्यक्ति के आधार पर चित्र-सम्पुटों की रचना इस चित्रशैली में दृष्टव्य है । चित्रकार जगन्नाथ द्वारा चित्रित **बिहारी-सतसई, सुन्दर शृंगार** की भांति **गीतगोविन्द, रसिक प्रिया** एव **कविप्रिया** में उक्त तथ्यों का स्पष्ट परिचय हो जाता है । पूर्ण रतिभावना की सम्पुष्टि कलात्मक पक्ष में अन्तर्हित हुई है जो मनोवैज्ञानिक एवं तान्त्रिक दोनों संदर्भों से जुड़ी है । इन चित्रों में उच्च शृंगारिक भाव का चित्रण है, जहां शृंगारिक विषयवस्तु भी सात्विकता से कहीं पृथक् नहीं है । चित्रकार स्वयं कवि भी रहे है वे कवियों की साकार भावनाओं को लेकर इस चित्र शैली में चित्रणकार्य करते रहे उनमें चित्रकार जगन्नाथ विशेष उल्लेखनीय हैं । इसी तरह बिहारी एवं केशव जैसे रीतिकालीन कवियों की कल्पनाओं को उनके काव्यों के अनुकूल शृंगार माधुर्य को साकार रूप देने हेतु **गीत गोविन्द, सूर सागर** एवं **बिहारी सतसई** के चित्रों का निर्माण हुआ । इन चित्रों में रति एवं काम भाव को साकार रूप दिया गया है, चित्रों में शैलीगत विशेषताओं का अंकन अधिक कलात्मक नहीं रहा फिर भी काम व्यक्त हो जाने से चित्रण की ये कमियां छिप गई हैं । राग-रागिनी, बारहमासा तथा युगल-प्रेम के चित्र **गीत गोविन्द, ढोलामारू, मुल्ला दो प्याजा, कविप्रिया, रसिक प्रिया** एवं अन्य सभी सामाजिक चित्र छोटे-बड़े मेवाड़ के विभिन्न ठिकानों में चित्रित हुए हैं देवगढ़ के चित्रकार चौखा की कृति चित्र सं. 74 इस भाव का उत्कृष्ट उदाहरण है । भित्ति चित्रों में भी ये प्रचलित रहे हैं उदयपुर के कृष्ण निवास, नाथूलालजी जड़िया, बापना हवेली एवं सुलम्बर, देवगढ़, केलवा, बदनोर गंगापुर एवं अन्य कई ठिकानों के शृंगारिक चित्र इस प्रभाव की स्पष्ट प्रतिक्रियाएँ दर्शाते हैं ।

आखेट एवं युद्ध चित्र

मेवाड़ सदैव ही अपनी वीरता एवं पराक्रम में अग्रणी रहा है । यहाँ के महाराणा एवं सामन्त वर्ग ने सदैव ही आखेट को क्रीड़ा के रूप में मानकर उसे **शिकार** की संज्ञा दी है । सभी महाराणाओं ने अपने दैनिक कार्यक्रम में शिकार को महत्त्व दिया है जो एक तरह से युद्ध आदि का खेल के साथ प्रशिक्षण था इनमें शेर भालू, शावक, चीते व **हरिण का शिकार** महाराणाओं, जागीरदारों एवं सामन्तों के प्रिय विषय रहे हैं ।[2] मेवाड़ के राज प्रासाद संग्रहालय उदयपुर में सुरक्षित 1764 ई. में अरिसिंह द्वारा शिकार की सवारी एक कलात्मक कृति है । महाराणा अरिसिंह के राज्यकाल में शिकार से सम्बन्धित चित्रों का अधिक निर्माण हुआ जिनमें कुंवर संग्रामसिह संग्रह के चित्र सं. 60, 61, 62, 65 के अतिरिक्त बड़ौदा संग्रहालय में सुरक्षित **सूअर व शेर के शिकार** के कई उल्लेखनीय चित्र हैं, शिकार को जाते हुए महाराणा जगतसिंह द्वारा **हाथी का वध** बड़ौदा संग्रहालय का एक श्रेष्ठ चित्र है[3] इसी तरह लखनऊ के प्रादेशिक संग्रहालय में महाराणा जगतसिंहजी **शेर व सूअर को लड़ाने व उनकी शिकार** का आकर्षक चित्र है महाराणा भीमसिंह द्वारा **शेर का शिकार** के चित्र बड़ौदा संग्रहालय में सुरक्षित है । मेवाड़ के इन चित्रकारों ने पहाड़ों व झाड़ियों के मध्य सभी जंगली जानवरों का चित्रण बहुत सुहावने ढंग से किया है । इन चित्रों में एक ही फलक पर जानवर के गोली लगने से लेकर अन्त तक की अवस्थाओं में दर्शाने का प्रयास किया है चित्र सं 62 महाराणा

---

1. रोजन फिलिप—इरोटिक आर्ट ऑफ ईस्ट, पृ. 155 ।
2. कैटलाग राजस्थानी चित्रों में शिकार प्रदर्शनी, अप्रेल, 1972 (पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग, राजस्थान जयपुर) ।
3. बुलेटिन—म्यूजियम एण्ड पिक्चर गेलेरी, बड़ौदा-वोल्यूम 12, 1955–56, प्लेट 20–22

अरिसिंहजी कालीन **बाघ की शिकार** 1766 ई. तथा चित्र सं. 82 महाराणा फतहसिंहजी कालीन **भालू की शिकार** 1900 ई. विशेष उल्लेखनीय हैं। युद्ध चित्रों में भी मेवाड़ नरेशों की रण-नीति का स्पष्ट परिचय मिल जाता है जो इस भू-भाग की भौगोलिक एवं ऐतिहासिक स्थिति दर्शाते हैं। इस क्षेत्र में सांगा कालीन प्राचीन **युद्ध चित्र** (चित्र सं. 15) 1520 ई. लगभग मेवाड़ में चित्रित उत्कृष्ट चित्र है[1] **रामायण** में रावण जटायु युद्ध चित्र सं. 30, **राघव दास युद्ध** चित्र सं 66 आदि उल्लेखनीय हैं इन चित्रों में इस प्रदेश की सैनिक, युद्ध विद्या, रथ एवं पैदल के साथ हाथी तथा घोड़ों पर मानवीय युद्ध प्रणालियों के उदाहरण इनमें गतिपूर्ण आकृतियाँ चित्रण की कुशल परम्परा के उल्लेखनीय उदाहरण हैं। 1935 ई. में भूपालसिंहजी के राज्यकाल के प्रमुख चित्रकार चतुरभुजजी ने **हल्दीघाटी** नामक वृहद तैल चित्र विभिन्न प्रकार की युद्ध क्रियाओं व युद्ध स्थल के दृश्य को दर्शाने वाला सफल चित्र है चित्र सं. 92)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न काल में चित्रित होने वाले विभिन्न विषयों के चित्र सम्पुटों में चित्रकारों ने युद्ध दृश्यों का मौलिक अंकन किया है। **आर्ष रामायण** 1651 ई. के चित्रों में राम-रावण युद्ध के चित्र **महाभारत** में चक्रव्यूह रचना के युद्ध दृश्यों में मानवीय हलचल बचाव एवं आक्रमण के प्रायोगिक अनुभव साकार रूप में दृष्टिगत होते हैं ये चित्रकार के मौलिक चिन्तन एवं मनन की कार्य कुशलता स्पष्ट करते हैं।

मेवाड़ के चित्रों में तत्कालीन समाज

मेवाड़ की सांस्कृतिक परम्परा यहां से प्राप्त प्राचीन अवशेषों से भी स्पष्ट हो जाती है। यहां प्रत्येक युग में सभ्यता एवं संस्कृति का नवीन अभ्युदय होता रहा है। यह एक ऐसा भू-भाग है जहां पाषाण युगीन मानव जीवन के अवशेष चित्तौड़ के पास बेड़च व गंभीरी नदी के तटों में उपलब्ध हुए हैं। यही उत्तर पाषाणकाल में अस्मायुद्धों का कारखाना होने के प्रमाण मिलते हैं। दूसरी शदी ई. पू. में इसी भूभाग में शिविगणराज्य के तथ्य सामने आते हैं। यही नहीं गुप्तकाल में भी यह भूमाग कला का उन्नत केन्द्र रहा है। जो चित्तौड़ से सात मील दूरी पर उत्तर में "माध्यमिका" नाम से प्राचीन सभ्यता का केन्द्र था।

प्रागेतिहासिक कालीन 'आयड़' के अवशेष सिन्धु सभ्यता के समकालीन सांस्कृतिक आदान प्रदान को दर्शाता है वहां से प्राप्त ठिकारियों पर रेखांकन यहां के मानव की सुसभ्य एवं कलात्मक भावनाओं की अभिव्यक्ति देते हैं, मेवाड़चित्र शैली में समाज का यही चित्रण इसकी पुष्ट परम्पराओं के साथ लघुचित्रों में व्यक्त किया गया। मेवाड़ चित्र शैली में मुख्य रूप से सामाजिक प्रक्रियाओं एवं व्यक्तिवादी भावनाओं की अभिव्यक्ति रही है। जिनमें धार्मिक और राजनैतिक परिस्थितियों में सामाजिक मनोदशाओं को ध्यान में रखते हुए चित्रकारों ने अपनी कला की साधना की, जो चित्र संख्या 1 एवं 2 से ही प्रचलित रही है।

सामाजिक चित्रों में अक्सर उत्सवों तथा पर्वों पर पहने जाने वाले वस्त्रों व परिधानों के निश्चित रंगों का संयोजन इस भूखण्ड के अनुरूप मिलता है। बसन्त ऋतु में पीले वस्त्र धारण करना बालक के जन्म उपलक्ष में पहनाई जाने वाली पीली साड़ी व पीलिये का प्रयोग तथा सौभाग्यवती स्त्रियों के लाल व गुलाबी कपड़े इनके प्रतीक हैं। इसके विपरीत विधवाएं श्वेत या पक्के रंगों के वस्त्र धारण किये हुए, धर्माचार्यों एवं उपदेशकों द्वारा श्वेतवस्त्र तथा साधुसन्यासियों द्वारा भगवा वस्त्र पहनना मेवाड़ की सामाजिक एवम् सांस्कृतिक प्रथाओं के परिवेश में ही है। (चित्र सं. 10 एवं 11)

मनोवैज्ञानिक पहलुओं को ध्यान में रखते हुए चित्रकारों ने तत्कालीन सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि में सामाजिक परिस्थितियों का पुष्ट अंकन सिन्दूर, काजल मेंहदी, महावर आदि के रूप में भी

---

1. स्टूअर्ट केरी वेल्स—ए प्लावर फ्रोम एवरी मेडो 1972, पृ. 23।

किया है। मेवाड़ की इन्हीं सामाजिक दशाओं का सदियों से चित्रकारों की तूलिका एवम् रंगों पर प्रभाव रहा है जिसमें चित्र वातावरण के अनुसार ही रंगबिरंगे एवं प्रभावपूर्ण बन गये हैं। जो मेवाड़ के सामाजिक जीवन की अच्छी झांकियां प्रस्तुत करते हैं विभिन्न राग रागनियों के स्वरूप इनकी पुष्टि में सहायक है (चित्र संख्या 24, 25, 26 एवं 27)।

ज्यों-ज्यों मेवाड़ पर मुगल संस्कृति का प्रभाव आया चित्रों में भी बारीकी का प्रचलन बढ़ने लगा जो मुख्य आकृति याने चित्र की दृष्टि केन्द्रित करने वाले स्वरूप-कृष्ण, राम, रावण, राजा व रानी तथा इनसे सम्बन्धित विशेष घटनाओं में आकृति के अनुसार जिस तरह बड़ा आकार हो उसी तरह उसके मुख की ओर दृष्टि केन्द्रित कर दर्शक को बारीक से बारीक रेखांकन या बिन्दु का अंकन चित्रकार ने सूक्ष्म कार्यकुशलता को दर्शाने हेतु किया है। यह बारीकियां कहीं-कहीं तो इतनी सूक्ष्म हो गई कि एकबाल-परदाज से भी बारीक मुख्य आकृति में अंकन दर्शाया गया है। (चित्र संख्या 78)।

मेवाड़ के अन्तिम चरण में राजनैतिक, शृंगारिक एवं धार्मिक वल्लभ सम्प्रदाय के चित्रों में तो यह बारीकी इतनी बढ़ गई थी कि अंगुठी के नगीने में भी श्रीनाथजी की छवि का कलात्मक वास्तविक सूक्ष्म अंकन मिलता है ये इस चित्र शैली के चित्रकारों की कार्यकुशलता के प्रमाण है। इससे बढ़कर विषय वैविध्य चित्रों में अन्यत्र दिखाई देना दुर्लभ ही हैं। □

6. चित्र संयोजन का विश्लेषणात्मक अध्ययन

मेवाड़ के परम्परागत फलक संयोजन[1] में चित्रोपम तत्त्व रेखा, रूप, रंग एवं प्रतीकों के तकनीकी अंकन पद्धतियों की नवीन विधाएँ तथा रूपों के नवीन अभिप्राय अपना विशेष महत्त्व रखते हैं, इनका गहराई से विश्लेषण एवं संश्लेषण के साथ अभ्यास किया जावे तो आधुनिक चित्रकला में होने वाले प्रयोगों को हम नये रूप मात्र में ही पाते हैं। इन परम्परागत चित्रों में भारतीय कला के सभी शास्त्रीय सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ है। फलस्वरूप इन चित्रों के चित्रण तत्त्वों की समीक्षा का सूक्ष्म विवेचन कला एवं भाव पक्ष की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में करना उपयुक्त होगा।

परम्परागत चित्रण तत्त्व, रूप, अभिप्राय एवं प्रतीकों का अंकन

बीसवीं सदी में चित्र देखने के कुछ निश्चित दृष्टिकोण क्रोंचे, रोजर फ्राई, क्लाइव बैल, ए. सी ब्रेडले, वाल्टर पेटर एवं आर. जी. कोलिंगवुड द्वारा निर्धारित किये गये थे उस कसौटी पर यदि परम्परागत लघु चित्रों को देखा जाये तो इनमें **कलावादी सार्थक रूप** हमारे सामने तत्कालीन कला समीक्षा की महत्त्वपूर्ण भूमिका बनाते हैं। सार्थक रूपों से अभिप्राय है उक्त दार्शनिकों द्वारा स्थापित नवीन दृष्टि, जो भावों को जन्म देती है।[2] इनसे स्पष्ट होता है कि लघु चित्रों की आकृतियों को इस चित्र शैली में विशेष प्रभावपूर्ण **विरूपन** के साथ चित्रित किया जाना इस क्षेत्र में पश्चिमी भारतीय अपभ्रंश चित्र शैली से अवतरित कला तत्त्वों का सुलझा रूप है। जो दर्शकों के मन में तीव्र प्रभाव डालने में समर्थ होता है। पहाड़ों का गतिपूर्ण संयोजन, आसमान में वक्राकार रेखायें, मानवीय आकारों में वस्त्रों के अलग-अलग स्वरूप तथा चित्रण इकाइयों को विभिन्न रूपों, अभिप्रायों एवं प्रतीकों में गतिपूर्ण रेखाओं के साथ कुशलतापूर्वक संयोजित करते हुये अंकित करना मूल ध्येय रहा है। नारी केश-विन्यास में सर्पाकार श्याम रंग की तीखी वेणी व आँखों पर काजल रूपी काली रेखायें स्वयं आकृतियों के रूप में उभरती दिखाई देती है। इनमें प्रत्येक अभिप्राय एवं प्रतीकों के रूप में चित्रण की कार्य कुशलता दिखाई देती है जो दर्शक को अपने आप में दर्पण की भांति तन्मयता से भुला देने की ओर प्रेरित करती है। यही नहीं इन चित्रों की महत्त्वपूर्ण विशेषताएं दर्शक के मनोभावों के अनुरूप सौन्दर्यात्मक अनुभूति देने तक में ये चित्र पूर्ण सक्षम रहे हैं।

मेवाड़ के लघु चित्रों का चित्र संयोजन भारतीय चित्र कला के शास्त्रीय विधि-विधान पर आधारित है चित्रों में कथा वस्तु के अनुरूप स्थान की रिक्तता, आकृति की जमावट, रूप एवं रंग की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति आदि में एक विशाल दृष्टिकोण होता है जिससे चित्रकार अपनी इच्छानुसार अभिव्यक्ति करने में सफल होता है। सूनापन दिखाने के लिए चित्र फलक पर विस्तृत जंगल में छोटी सी

1. लेखक द्वारा—फलक संयोजन की सैद्धान्तिक प्रक्रिया–आकृति जुलाई, 76 पृ. 27–29।
2. डा. निर्मला जैन—रस सिद्धान्त और सौन्दर्य शास्त्र, पृ. 83।

आकृति अंकित करके उस सूनेपन को तीव्र करना कलाकार की कुशल अंकन पद्धति का द्योतक है। उचित जमावट ही सही संयोजन है। कला आलोचक माइकेल जेकोब ने इसके महत्त्व एव जमावट के विभिन्न **प्रकारों** रूट्स को स्पष्ट किया है।[1] चित्र योजना की उचित जमावट या संयोजन में संतुलन का ध्यान रख कर मेवाड़ के चित्रकारों ने इन चित्रों से दर्शक पर स्पष्ट अभिव्यक्ति की अमिट छाप छोड़ दी है। इस सन्तुलन का मुख्य ध्येय दृष्टि विश्राम या शान्ति है जिसे प्राप्त करने के लिये चित्र फलक पर आकृतियों वर्णों एवं **तान** (टोन) का उचित वितरण करते हुए चित्र-सन्तुलन के सौन्दर्य को प्रकट करना है। सन्तुलन एवं दृष्टिभार को इस चित्र शैली में कुछ मूलभूत तत्त्वों एवं इकाइयों वेन्यू की (Vanue Keys) के आधार पर प्रयुक्त किया है।[2] कहीं **रेखाभार** रेखाओं को खड़ी, आड़ी, तिरछी दिखाकर किया है, तो कहीं **आकृतिभार** आकृति को बड़ी व छोटी या अधिक अलंकृत या सादी अंकित करके किया गया है साथ ही **वर्णभार** में दृष्टिगत भावों का हल्के व गहरे रंगों में अलग-अलग रंग श्रेणी के आधार पर सफलता से चित्रित किया है।

यही नहीं, चित्रभूमि का विभाजन इस चित्रशैली में सैद्धान्तिक आधार लिये हुए है जिनमें कहीं **समविभक्त** (फार्मल डिविजन) से अन्तराल को विभाजित कर आलंकारिक संयोजन दिखाया है तो कहीं **असमविभक्त** (इन-फोर्मल डिविजन) है। सही माने में चित्रकार की कार्यकुशलता इनसे ही स्पष्ट होती हैं। मेवाड़ शैली के फलक संयोजन में ये मौलिक विशेषताएँ सर्वत्र दृष्टिगोचर होती हैं। ये निम्न हैं:—

अन्तराल (स्पेस) के दो **स्वरूप सक्रिय** तथा **सहायक अन्तराल** होते हैं **अंतराल** तथा आकार अवस्था को हम चित्र में स्पष्ट देखते हैं। आच्छादित तल, आकार भिन्नता, आकार स्थिति, रेखीयक्षयवृद्धि तथा वातावरण क्षयवृद्धि के आधार पर चित्रों में सूक्ष्म संयोजन की पद्धतियों को अपनाया गया है[3] जिससे पूर्वज कलाकारों की कलात्मक सूझ-बूझ का अच्छा परिचय (चित्र सं. 71, 78, 89 आदि में) मिलता है। मेवाड़ के चित्रों में चित्रकार ने फलक संयोजन के कुछ ऐसे सूत्रों को रचा है कि उनसे मानवाभिव्यक्ति को उचित बल मिला है। भावों की सफल अभिव्यक्ति में जमावट का सिद्धान्त रंगों के माध्यम से अधिक महत्त्वपूर्ण रहा है। दुःखद स्थिति के चित्रण में भूरे रंगों का बाहुल्य, एवं अशुभ रंगों का प्रयोग होना अंकन में तेज रंगों की भी मेवाड़ चित्रशैली में ऐसी जमावट है कि चित्रकार चित्र फलक के रंगीय रेखांकन मात्र से ही अपनी अभिव्यक्ति दर्शक को करा सकता है। यहीं सन्तुलन व अनुपात का सिद्धान्त चित्र फलक में उतर जाता है जिसके बढ़ाने व घटाने पर वस्तु के प्रमुख एवं गौण तत्त्वों को व्यक्त करने में सहायता मिलती है, रंगों व रूपों में यह अनुपात मेवाड़ के प्रायः सभी चित्रों में देखा जा सकता है।

रेखा, रंग व रूपों की **पुनरावृत्ति** बड़ी-छोटी व हल्की गहरी **झाईयों** में की गई है। बिन्दु, रेखा, रंग एवं उसकी **श्रेणियों** को बराबर अंकित करना ही चित्र में आलंकारिक एवं संयोजनात्मक दृष्यानुसार गति को उत्पन्न करना है। (चित्र संख्या 44, 68) मेवाड़ के चित्रों में वाटिका हेतु पेड़ों की बार-बार पुनरावृत्ति तथा फूल **और** पत्तियों से दृष्टिक्रम को भावानुकूल बना दिया गया है। मानवाकृतियों एवं विषयवस्तु में पुनरावृत्ति करने पर चित्रफलक को स्पष्ट रूप से समझाया जा सकता है। कृष्ण को एक ही चित्र मे कई बार अंकित करने एवं फलक के अलग-अलग टुकड़ों का विभाजन करने से इस सिद्धान्त का भली-भांति निर्वाह होता रहा है। यहीं नहीं चित्रों में **बहुआयामी**

---

1. माइकेल जेकोब्स दी आर्ट ऑफ कम्पोजिशन, पृ. 61।
2. मेटलेण्ड ग्रेव्ज—दी आर्ट ऑफ कलर्स एण्ड डिजाइन पृ. 276-281।
3. वही, पृ. 233।
   डा. शर्मा एवं अग्रवाल—रूप प्रद कला के मूल आकार, पृ. 39।

(मल्टी डाईमेशनल) संयोजन विभिन्न कालों एवं घटनाक्रमों को एक फलक में सरलता से व्यक्त कर पाया है। (चित्र संख्या 18, 33, 36, 40, 44, 59, 62, 71, 78, 82 में यह कुशल संयोजन स्पष्ट दिखाई देता है) चित्र में दर्शक की दृष्टि को एक जगह न रखकर दृष्टि क्रम के प्रभाव को बनाये रखा गया है। भावों के साथ-साथ रेखाओं, रूपों तथा रंगों में दृश्यात्मक गति उत्पन्न करना ही श्रेष्ठ संयोजन की प्रक्रिया है।[1] इस शैली के चित्रकारों की कार्यकुशलता का यही एक मापदण्ड है। मेवाड़ में चालकोलिथिक कालीन कलावेशेषों से लघुचित्रों तक यही क्रम देखा जा सकता है।

सामंजस्य एवं भावात्मकता

इसे सम्बद्धता का सिद्धान्त भी कहा जाता है जिससे **भावों की एकात्मकता** उपलब्ध प्रमाणों के अनुरूप हो सकें। इसमें स्वर्णिम विभाजन, नियोजित भूमि विभाजन, सरलीकृत आकारों का विषय वस्तु से सम्बन्ध, विवेक युक्त रंग संयोजन आदि से मानव मस्तिष्क एवं कलाकृति के मध्य तादात्म्य उत्पन्न होता है। इसी तरह रंगों का सामंजस्य चित्रकार की कार्यकुशलता का भी द्योतक है। किन्तु रूप सामंजस्य भावों के अनुकूल गौणता और प्रमुखता के आधार पर किया जाता है इससे दृष्टि सौम्यता के साथ-साथ चित्र फलक में शान्त शाश्वस्त भाव दृष्टि गोचर हो जाते हैं।[2] यही नहीं आधुनिक चित्र संयोजन तत्त्वों के सिद्धान्तानुसार **वैचारिक दृष्टि** से एकात्मकता एवं समन्वय स्थापित करने प्रक्रिया हेतु मेवाड़ चित्रशैली के चित्रों में बुद्धिवाद पर आधारित चित्रण से चिन्तन एवं मनन की प्रमुखता दिखाई देती है। यदि वह चिन्तन सरल आकृतियों से उत्पन्न नहीं होता है तो इसमें प्रतीकात्मक आकार एवं आकृति अंकित कर **वैचारिक** दृष्टि के अनुकूल दिखाना (**जक्स्टा** पोजीशन) केवल दर्शक को उस विषय वस्तु के साथ तनमय करने की प्रक्रिया है। **आर्ष रामायण** के चित्रों में रावण के सिर पर गधे का मुंह अकित होना गुणात्मक तादात्म्य का स्पष्ट उदाहरण है। (चित्र संख्या 30 एवं 34) आधुनिक चित्रकला में यही तत्त्व **मैटाफिजीकल अद्भुतवादी, अभिव्यंजनावादी** तथा **ददाईस्ट** कलाकारों की चित्रण पद्धति में बड़ी तेजी से विकसित हुआ। **गीतगोविन्द** के चित्रों में राधा क विरह, कृष्ण की बाल-क्रीड़ाओं, काली नाग का वर्गीकरण आदि चित्रों से चित्रकार ने वैचारिक एक सूत्रता बांधी है। इससे दर्शक विभिन्न भावों में विचरण करने लग जाता है। ऐसी क्रियाएं चित्रों में विभिन्न स्थानों पर अलग-अलग भावों के साथ दृष्टिगत होती हैं। (चित्र 62, 68, आदि)

सरलीकृत मूल आकार

मेवाड़ के चित्र फलकों में मूल आकार आकाश, पहाड़, जमीन, प्रासाद आदि की पृष्टभूमि देकर भावों के अनुसार विरूपित कर चित्रण को प्रभावपूर्ण किया है। मानवाकृतियों में नाक विशेष तीखी गोल चेहरे, आँख सरल मछली जैसी, छोटे कद की स्त्रियां किन्तु आकर्षक वक्ष स्थल एवं वस्त्रों के सरल अंकन उनके सौन्दर्य को बढ़ाते हैं। चित्रण का यही शास्त्रीय पक्ष हमें पश्चिमी भारतीय प्राचीन परम्परा से प्राप्त हुआ है जो इस चित्रशैली के सरलीकृत आकारों में मिलते हैं। चेहरे को चित्रित करने में प्रायः पार्श्व बिम्ब को ही ग्रहण किया जाता रहा है तथा प्रारम्भिक लघु चित्रों में मरु गुर्जर शैली के पूर्व चित्रित ताड़पत्रों को छोड़कर सर्वत्र एकतरफा मुखाकृति का चित्रण पाया जाता है मुखाकृति के रूपों की स्पष्ट अभिव्यक्ति का यह एक मौलिक सिद्धान्त रहा। इसे समसामयिक सांस्कृतिक परम्परा के अनुरूप, सुरक्षा हेतु अपनाया गया था[3] यह चित्रकार का एक परोक्ष तरीका था जिससे कि वह आँख, नाक एवं अन्य उभरे तथा दबे अंगों-प्रत्यंगों की स्पष्ट अभिव्यक्ति कर सके। अतः इन चित्रों में दो चश्मी से डेढ़ चश्मी सवा चश्मी एवं एक चश्मी स्वरूप अंकित होने लगा। यही एक **चश्मी** चेहरे जैन चित्रशैली की निकलती हुई आँख के हटते ही मेवाड़ चित्रशैली

---

1. "द कन्सेप्शन मस्ट कम फर्स्ट देन यूज डायनोमिक सिमेट्री टू परफेक्ट द एर्जेन्जमेन्ट।" माइकेल जेकोब्स—द आर्ट ऑफ कम्पोजिशन, पृ. 61।
2. मेटलेण्ड ग्रेव्ज—द आर्ट ऑफ कलर एण्ड डिजाइन पृ. 23।
3. प्रकाश परिमल—राजस्थान भारती, भाग 11, अंक 1, पृ. 1-19

का स्वरूप निर्धारित करते हैं। ये चेहरे सम्पूर्णतया एक चश्मी रहे किन्तु कालान्तर में पुनः धीरे-धीरे डेढ़ चश्मी, सवा चश्मी तथा तथा दो चश्मी चित्रित होने लग गये। इस चित्रशैली में विभिन्न रूपों को अपने शैलीगत ढ़ंग से आवश्यकतानुसार सरलीकरण किया गया है जिनसे शैली की मौलिकता दिखाई देती है। मेवाड़ के प्राचीन चित्रावशेष अधिक कलात्मक एवं 'तौड़युक्त' हैं, धीरे-धीरे सामान्य स्तर पर शैली का विकास हुआ, विरूपित रूप धीरे-धीरे हटते गये। किन्तु स्वरूप ज्यों का त्यों अपनी मौलिक स्थिति में अवतरित होता रहा। मकान, महल, साधु, सन्यासी, ईश्वर, राजा, रानी, दासी, भिखारी सभी का तीव्र प्रभाव दर्शाने हेतु विरूपित कर के अंकित किया गया है। राजा समाज में उच्च स्थान रखता है तो चित्र में उसे अन्य आकृतियों से बड़ा रूप देकर चित्रित किया गया है, छोटे वर्ग के लोगों को राजा के अनुपात में छोटा प्रस्तुत किया है (चित्र सं. 49) जो भारतीय परम्परागत चित्रण की विशेषता अनुसार भगवान बुद्ध के सम्मुख राहुल और यशोधरा के अजन्ता की भित्ति चित्र परम्परा को दर्शाते हैं। रूपों की साज-सज्जा में कई नवीन आकार इस चित्रशैली में दिखाई देते है जो बाद में कुछ निश्चित प्रतीक सूत्र बन गये। साज-सज्जा या वस्त्रों के आभूषणों पर डा० हरमन ग्वेत्स ने इन्हीं प्राचीन चित्रों के आधार पर विशेष अध्ययन एवं विश्लेषन किया है।[1] जो इस क्षेत्र की समृद्ध परम्परा के सूचक हैं।

प्रताप संग्रहालय, उदयपुर में सुरक्षित प्राचीन चित्र सम्पुटों में इन चित्रों को सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर रूप विश्लेषण का भी उचित अवसर प्राप्त हो जाता है। स्त्री-पुरुष साज-सज्जा को कुछ निश्चित रूप कवि बिहारी के शब्द चित्रों[2] के अनुसार भी मेवाड़ चित्रशैली में चित्रित हुए जिनमें बिन्दियां, अंगराग टीका या तिलक का प्रयोग भृकुटियों के बीच सम्प्रदाय की छाप को दर्शाने के लिए हुआ तथा मेंहदी का प्रयोग शरीर अंगों "हाथ पैरों की अगुंलियों" आदि में हुआ। सिर पर प्रायः रत्नजड़ित या गोटेदार पगड़ी, भालवेद, रत्नजड़ित पट्टी या ताजों व फूल पगड़ी के ऊपर लगाये जाते थे, कुलेदार पगड़ियां मोती एवं रत्नों से पिरोई हुई होती थी, कानों में बालियों का ही क्रमबद्ध बदलता स्वरूप मिलता है। भुजबंद कुहनी से ऊपर व कंकण कलाई का आभूषण नूपुर आदि अजन्ता की परम्परा से प्राप्त रूपों को दर्शाता हैं, पगड़ी शुद्ध राजपूती पतली व लम्बी (प्रायः 6 इंच चौड़ी 37 फीट लम्बी), तथा धोती अधोवस्त्र जिसे बांधने के अनेक प्रकार इन चित्रों में दिखाई देते हैं।[3] चावण्ड के रागमाला सम्पुट की पगड़ी एवं जामा के पहनाव से ही कुछ कला मर्मज्ञों ने मेवाड़ शैली पर मुगल प्रभाव माना। किन्तु यहां यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि ये पहनाव सर्वथा भारतीय है। अकबर ने स्वयं इसे अपनाया था। मुगल वेशभूषा हुमायूं के समय से ही समाप्त हो चुकी थी। मेवाड़ में यह पहनाव मुगल प्रभाव से नहीं अपितु भारतीय परम्परानुसार अजन्ता के भित्ति चित्रों एवं जैन चित्रों में प्रतिपादित रूपों का ही विकसित स्वरूप है जिसे इस काल के चित्रकारों ने अपनाया। पीताम्बर 'कृष्ण का पीला अधोवस्त्र', लंगोटी व टोपी प्रायः ग्वालों के लिए, तो ऋषि मुनियों को सूक्ष्म अधोवस्त्रों के साथ चित्रित किया है। चादरा, शाल, दुशाला एवं अंगरखा तथा जामा एक दरबारी पोशाक थी जिसमें नीचे तक झूलता हुआ कोट होता था, कमर से ऊपर व कन्धे पर तानीदार कोट राजपूती एवं मुसलमानी प्रभाव पश्चात् चित्रित होने लगे अचानक एक लम्बा घेरदार, तानीदार कोट मध्यवर्गीय लोगों की आकृतियों एवं किसानों के लिये प्रयोग में लिया गया, चूड़ीदार पायजामा कुषाणकाल से ही भारतीय पोशाक रही, कच्छा व कमरबंद आदि का प्रयोग मानवीय आकारों में सर्वत्र मिलते हैं। चावण्ड के चित्रों में चित्रित पगड़ी

---

1. हरमन ग्वेत्स—राजपूत पेंटिंग, पृ. 23–36।
2. सीस मुकट, कटि काछनी, कर मुरली, उर माल।
   इहिं बानक मो मन बसौ, सदा बिहारीलाल ॥ 30॥
   जगन्नाथ रत्नाकर—बिहारी रत्नाकर पृ. 127।
3. रामगोपाल विजयवर्गीय—राजस्थानी चित्रकला, पृ. 66।

कुलेहदार पगड़ी का ही विकसित स्वरूप है तथा चाकदार जामा का प्रचलन चित्रों में ज्यों का त्यों रहा। कार्ल खण्डेलावाला की मान्यतानुसार इनका प्रसार उत्तर प्रदेश के देहली जोनपुर क्षेत्र में ही था।[1] ये तथ्य उपरोक्त आकारों की परम्परा देखने पर अनुपयुक्त लगते हैं।

इस भू-खण्ड में प्राप्त 16 वीं सदी के चित्रों में पगड़ी, दुपट्टा, जामा, कमरबंद, पटका व धोती का पहनाव चित्रों में मिलता है। निम्न वर्ग के लोगों में हल्की एवं कम कीमत की तथा ठिकानों के ठाकुरों तथा राजाओं की पोशाकें अधिक महंगी एवं बारीक होती थीं जो चित्रों में स्पष्ट अंकित हैं। 16वीं सदी के बाद पहनावे में परिवर्तन आया, कारण कि मेवाड़ के महाराणा करणसिंह शाहजहां के पगड़ी बदल भाई बने। मुगल पगड़ी का भी इसके बाद में प्रचलन हुआ। जगतसिंह प्रथम, राजसिंह एवं जयसिंह के राज्यकाल में 'शाहजानी पगड़ी' चलती रही। अमरसिंह द्वितीय ने पगड़ियों की नई शैली अपनाई जो छोटी पगड़ी थीं। यह महाराणा राजसिंह द्वितीय तक चली, इसे 'अमरशाही पाग' कहते हैं। महाराणा अरसी की पगड़ी, बूंदी शैली के निकट है जो महाराणा भीमसिंह एवं जवानसिंह के राज्यकाल तक चलती रही। जवानसिंह के बाद पगड़ी के रूपों में बहुत अधिक परिवर्तन आये। महाराणा स्वरूपसिंह ने जो पगड़ी में परिवर्तन किया उसे 'स्वरूपशाही पगड़ी' नाम से सम्बोधित किया गया। महाराणा फतहसिंहजी ने पगड़ी का नया ढंग अपनाया जो अब तक मेवाड़ में प्रचलित है फरूकशियर तथा मोहम्मद शाह के काल में जो जामें प्रचलन में लाये गये वे महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय एवं जगतसिंह द्वितीय के काल तक प्रचलित रहे। तत्पश्चात् इस पोशाक में भी परिवर्तन आया। वैष्णव परम्परानुसार यहां बारह कसों की अंगरखी का पहनाव पुरुषों में महत्त्वपूर्ण माना जाता था। इसे राज दरबार के मुखिया ही पहन सकते थे, अन्य नहीं। चित्रकारों में मुखिया को पहनने की पूर्ण छूट थी।[2]

वस्त्रों के कई निश्चित रूप नारी चित्रों में भी मिलते हैं। सारी (संस्कृत नाम साटी, सारिका) दुपट्टा, ओढ़णी, चादर आदि। चोली, अंगिया, लहंगा, घाघरा (कटि से नीचे का वस्त्र), झुगली पेशवाज पैजामा आदि को चावण्ड एवं समीपवर्ती चित्रकारों ने साहित्यिक चिन्तन के आधार पर अंकित किया। चित्रों में नायक नायिकाओं के विभिन्न हाव-भाव चित्रित करने के लिए कई अभिप्रायों का चित्रण इस शैली की मौलिकता को दर्शाते हैं। **उक्ता या उत्कंठिता नायिका** किसी वृक्ष के नीचे अथवा ऊपर उपवन के पास तृण या पत्तों की शैय्या के पास बैठी हुई या खड़ी होकर प्रतीक्षा करती चित्रित की जाय। सामने जलाशय, मृत शावक के अभिप्रायों का अंकन हो। इसी तरह **गीत गोविन्द** के चित्रों में काम-वासना के भाव का अभिप्राय पेड़ों में कामदेव को चित्रित करके दिखाया है। धनुष कमान को प्रेम पीड़ा का प्रतीक दर्शाते हुए राधा और कृष्ण के प्रेम सम्वादों में अभिव्यक्ति करवाई है यह वासना जितनी तीव्र हुई उतना ही तेजी से धनुष खींचते हुए कामदेव को अकित किया गया है। आर्ष रामायण के चित्रों में रावण के मस्तक पर गधे का मुँह होना भी ऐसे ही अभिप्राय है जो चित्रकार की बौद्धिकता और कलात्मकअभिव्यक्ति का समन्वय प्रस्तुत करते हैं। (चित्र सं. 30, 35, 40 एवं 41)

रंगों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव

रंगों का कला सृजन एवं अभिव्यक्ति में अपना विशेष मानसिक दायित्व होता है। मेवाड़ के प्रारम्भिक चित्रों में प्राथमिक रंगों से ही चित्र सृजन किया जाता रहा है। जिसका तात्पर्य यह नहीं है कि यहां के चित्रकार मिश्रित रंगों से अपरिचित थे। इसका प्रमुख कारण तो यह रहा है कि वे कला को साधना के साथ-साथ सूक्ष्म भावाभिव्यंजना का साधन मानते थे अतः वे अपने चित्रों में कम से कम

---

1. कार्ल खण्डालावाला एवं डा. मोतीचन्द—न्यू डोक्यूमेन्टस ऑफ इण्डियन पेंटिंग पृ. 75।
2. लेखक द्वारा—आकृति, (राज. ललितकला अकादमी) जनवरी, 76 मेवाड़ के चित्रकारों का सम्मान एवं चित्र सुरक्षा।

रंगों की आवृत्ति करते थे। इनका दूसरा कारण युग विशेष की मानसिक स्थिति से भी कहा जा सकता है क्योंकि तत्कालीन युग में आधुनिक जीवन की संप्रेषणीयता की जटिलता उत्पन्न नहीं हुई थी। केवल कुछ निश्चित मनोविकार थे जो कम रंगों के उपयोग से व्यक्त किर दिये गये।[1]

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से रंगों का मानसिक धरातल सदियों पूर्व से ही निश्चित हो चुका था। मनुष्य में अनेकों प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रही है। यही वर्गीकरण रंगों में संवेगों के आधार पर मेवाड़ के तत्कालीन चित्रों में मिलता है।

मेवाड़ के शासक प्रायः बाहरी आक्रमणों से युद्ध की आग में लिपटे रहे हैं यही कारण है कि यहां प्राथमिक रंगों में लाल रंग का चित्र में या उसके बाहरी किनारों पर चित्र फलक में जाने अनजाने अधिक प्रयोग में लिया गया है। यह रंग क्रोध, वीरता एवं उग्रता का प्रतीक है इसी तरह नीला जिसमें गहरा नीला रंग घृणा का प्रतीक है तो पीला रंग प्रसन्नता का प्रतीक है अतः ये मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से अलग-अलग वर्णों में अलग-अलग भावों पर आधारित हैं। मिश्रित रंगों में केसरिया रंग राज दरबार के चित्रों में प्रयोग में अधिक लाया गया जो शौर्य एवं खुशहाली का प्रतीक है किन्तु उसमें कुछ लाल रंग मिलाने या नारंगी करने पर वही रंग वासना का प्रतीक बन गया तो बैंगनी रंग निराशा की भावनाओं को स्पष्ट करने हेतु प्रयोग में लिया, हरा रंग आह्लाद व प्रेम के लिये प्रयोग में लिया गया, जो विभिन्न रंग श्रेणियों के अवसर पर **गीतगोविन्द, रसिक प्रिया कृष्ण चरित्र, बिहारी सतसई** 40, 41 के चित्र सम्पुट में उपरोक्त रंग श्रेणियों का अच्छा प्रयोग मिलता है। देखें सं. 28, 29, 30, 37, 38, 53, व 54 दृष्टव्य है।

इन चित्रों को देखने से ज्ञात होता है कि जिस प्रकार प्राथमिक रंगों का सामंजस्य स्पष्ट होता है उतनी ही मात्रा में प्रवृत्ति के विरोध भी उत्पन्न होते जाते हैं। निष्फल रंगों में काला रंग माना गया है वैसे सभी रंगों का मिश्रण ही काला याने छाया में प्रत्येक भाग को छिपा देता है और छायावृत्ति भावों को दर्शाता है। इसी तरह सफेद रंग शान्त या निष्क्रिय भावों या प्रकाश का द्योतक है जिससे आत्म–सन्तुष्टि सात्विकता एवं शान्त रस के भाव अभिव्यक्त होते हैं।

यही नहीं मेवाड़ के चित्रकारों ने रंगों को ज्योतिषीय दृष्टि के आधार पर भी विभाजित किया है। जिनमें शनि को नीला, सूर्य को लाल, बृहस्पति को पीला, चन्द्र एवं राहू को काला, शुक्र को हल्का नीला तथा बुध को हरित वर्ण में दर्शाया है। मेवाड़ चित्र शैली में चित्रकार इन प्रतीकों के ज्ञान को प्राप्त करने पर ही चित्रण कार्य में पारंगत माना जा सकता था।

रंगीन अनुभूति एवं क्रियात्मक संचालन को तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है। पहला **ह्यू** जिसे मेवाड़ी शब्द में झाई कहा गया है वह हल्के रंग की गहरे के साथ पास-पास हल्के गहरे रखते हुए स्पष्ट की जाती है। यह इस चित्र शैली में सभी जगह प्रयुक्त हुआ है। दूसरा **टोन**-रंग श्रेणियां गहरी व फीकी झांई जो हल्के से गहरे किस्म की परख को स्पष्ट सफेदे पर सलेटी रेखाएं सभी चित्रों में दृष्टव्य है। **क्रोम**-संतृप्ति का प्रकार है जिसमें तथाकथित रंग की अधिकतम सीमा उससे आगे न बढ सके उसे हम "सेंच्यूरेशन" की रंग प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। भगवान कृष्ण के लिये जितने भी नीले रंग प्रयोग में आये हैं उनमें यह पूर्णता का सूत्र अपनाया गया है।

इस चित्र शैली में चित्रकारों की कुशल परम्परागत रंगांकन पद्धति का प्रयोगात्मक स्वरूप दिखाई देता है। प्रत्येक जगह सफेद रंग का तथा सफेद पर सफेद झाई का एवं गहरे पर फीकी झाईयों में चित्र फलक में विशेष गति उत्पन्न करने का एक अच्छा उदाहरण मिलता है। मेवाड़ चित्र शैली में मुख्यतः देशी रंगों का ही प्रयोग हुआ जिसमें अभ्रकी, आसमानी, बादामी, रूपा (रजत)

---

1. लेखक द्वारा—रंगों का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं मेवाड़ शैली, शोध पत्रिका, वर्ष 28, अंक 1, पृ. 58–61।

चेरा-चेहरा धूम्र-गोरी गोर गुलाबी, कारी (काला), खाकी, लाल, सिन्दूरी, नारंगी नीला सबज, सोना, सुफेद, बसन्ती, रोशनी आदि रंगों को चित्रकार स्वयं हाथ से बनाकर प्रयोग में लाते थे ।

चित्र आकर्षण में लाल, जोगिया, पीला पृष्ठभूमि के विपरीत रंगों का प्रयोग चित्रकार ने बड़ी कुशलता के साथ किया है । इन्हीं रंगों को गहरे फीके ढंग से प्रयोग में लेकर कई प्रकार के रंगों की अभिव्यक्ति की है । जिनमें प्रतीकात्मक रंगों का बहुत अधिक महत्त्व रहा है ।

मानव स्वभाव के अनुसार रज, तम और सत्व, ब्रह्म-मूर्ति ब्रह्मा, विष्णु और महेश, त्रिकाल प्रातः, मध्याह्न, सन्ध्या तथा शिशु युवा और वृद्धावस्था की आयु आदि तीन प्राथमिक रंगों से दिखाना इस चित्र शैली के चित्रकारों की प्रखर बुद्धि का द्योतक है । पीला रंग शिशुता का द्योतक है । लाल युवा का और नीला वृद्धावस्था का इसी प्रकार प्रातःकालीन पीला, मध्याह्न का लाल और सन्ध्या का नीला प्रतीक रंग है । रज, तम और सत्व में रज लाल, तम नीला एवं सत्व को पीले रंग से दर्शाया है । शान्त और भयानक रंगों को भी पांच तत्वों में विभाजित किया है । प्रत्येक तत्त्व का एक प्रतीक है । अग्नि का लाल, पृथ्वी का पीला, वायु का काला, आकाश का नीला और जल का सफेद रंग दर्शाया है । इन रंगों से इन परम्परागत चित्रों के आकारों की आध्यात्मिक अभिव्यक्ति को बहुत अधिक प्रभावयुक्त बनाया गया है ।

यही नहीं मेवाड़ चित्र शैली के कुछ रंग तो चित्रकारों ने सूत्रबद्ध रूप से निश्चित कर लिये हैं । जिनको हम प्रारम्भ से अब तक के चित्रों में देखते हैं । अभ्रकी (पीला भूरा), आसमानी (आसमानी नीला) बादामी (बादाम जैसा भूरा) चांदिया रूपा (रजत वर्ण) चेरा (चेहरा) (हल्का लाल ईंट जैसा) धुम्र (धुएं का रंग) गौरी या गोर हल्का पीला (सुनहला) गुलाबी (गुलाब जैसा लाल) कारी या काला काजल का रंग) खाकी (भूरा हरा) लाल सिन्दूर या सिन्दूरी सुरखी (रक्त वर्ण) नारंगी (सन्तरे जैसा) नीला (गहरा नीला) सबज, सज या सोजा (हरा) सोना (स्वर्ण वर्ण) सुफेदा, धोली या धुवली (स्वेत वर्ण) बसन्ती पीली (केसरिया) रोशनी (बैंगनी) आदि रंगों को हम पिछली पांच सदियों से क्रमशः चित्रों में परम्परा के रूप में पाते हैं । जिससे ये रंग चित्र शैली बौद्धक बन गये हैं ।

रंगों के पूर्ण ज्ञान का विश्लेषण हम इस चित्र शैली के चित्रकारों द्वारा चित्रित चित्र निर्माण प्रक्रिया से कर सकते हैं । रंगांकन करने की भी एक विशिष्टि प्रक्रिया थी जो चित्रकार द्वारा फलक संयोजन एवं आधार भूमि तैयार करने में अपनाई जाती थी जिसे चित्रकार शुभ नक्षत्र में गुरुजनों को प्रणाम कर इष्टदेव का स्मरण कर पूर्वाभिमुख होकर श्वेत वस्त्र धारण कर ब्राह्मणों का पूजन कर स्वस्ति वाच के साथ प्रारम्भ करता था । चित्र रचना का यह एक परम्परागत तरीका मेवाड़ चित्र शैली के चित्रकार अब तक निभाते रहे हैं । जो धार्मिक एवं कलात्मक समन्वय की परम्परा को दर्शाता है ।

रंग संयोजन के आधार पर मेवाड़ के लघु चित्रों को विभिन्न कालों में विभिन्न अनुपातीय सिद्धान्तों पर महत्त्वपूर्ण योजनाएं दिखाई देती हैं जो 1260 ई. के **श्रवग पदिक्रमण सुत्त चूर्णि, 1424 ई. में सुपासनाह चरियम** 1550 ई. 1570 ई. लगभग के **भागवत पुराण** एवं **चौरपंचाशिका,** 1600 ई. 1650 ई. लगभग के **गीत गोविन्द, राग-रागमाला रसिक प्रिया, बिहारी सतसई, कृष्ण चरित्र** आदि चित्रों के आधार पर करेंगे । रंग अनुपात से हमारा तात्पर्य है कि चित्र में किस तरह कौनसा रंग सबसे अधिक प्रयोग में लिया गया, उस शताब्दी के लिये अपना प्रतिनिधित्व करता हो ।[1] उसके बाद चित्र फलक में विभिन्न रंगों की भिन्न-भिन्न मात्राओं को ज्यों का त्यों रंगीन पत्तियों के आधार पर रखकर चित्र की रंग अनुपातीय तुलना का विश्लेषण किया जा सकता है ।

1. लेखक द्वारा— अर्ली आर्ट ट्रेडीशन ऑफ मेवाड़, बलावूत जयपुर, पृ. 85-89 ।

इस सूत्र के अनुसार चित्रकार रंग श्रेणियों रेखाओं के हल्के गहरे स्थान व रूप के सम्बन्ध में आवश्यक विरूपन करके तथा विषयगत आकार अभिव्यक्ति को अधिक कलापूर्ण अंकित कर दर्शक को स्वर्गिक संसार में बैठा भ्रमित कर सकता है। यही नहीं इस रंग संयोजन की प्रभुता का दर्शक के मन पर इतना तीव्र प्रभाव पड़ जाता है कि दर्शक अपने आपको राम व कृष्ण के युग में का दर्शक हो ऐसा अनुभव करने लग जाता है। एक छोटे से चित्र फलक का मानव मन पर इससे और अधिक क्या प्रभाव पड़ सकता है। इसकी चरम सीमा इस चित्र शैली के परम्परागत चित्रों में स्पष्ट दृष्टव्य है।

युद्ध, शिकार, राज दरबार, शृंगार कक्ष आदि के अलग-अलग रंग निश्चित किये गये हैं। साथ ही रंगों की निश्चिय जातियां एवं वर्ग बनाये गये हैं। समाज, जाति और वर्ग के लोगों के श्रेष्ठ सम्बन्धों की भांति लाल, केसरिया, गुलाबी बादामी रंगों को एक जाति में लिया गया है। नीला, बैंगनी व हरा रंग दूसरी जाति का है। इसी प्रकार सफेद, निम्बुआ, पीला, पीत पीला, और सुआ पंखी, को अन्य जाति का माना है। यही कारण है कि कलाकारों ने इन रंगों के सम्मिश्रण पर उपरोक्त रंग वर्गों के आधार पर उभार एवं झाइयों को सही एवं शास्त्रीय ढंग से अंकित किया है। ऐसे ही हल्दी व नीम्बू के मिश्रण से कुंकुम बनता है वही प्रतीक सुहाग का मान कर इसे प्रयोग में लिया है ऐसी तकनीकी विधियों का भी भाव एवं योजना पर प्रभाव पड़ा है रंग निर्माण का विस्तृत विवेचन सप्तम अध्याय में किया जा रहा है।

रेखाओं का स्वरूप

परम्परागत चित्रों में रेखाओं को अधिक प्राथमिकता दी है। मेवाड़ चित्र शैली में भी इसका निर्वाह उत्कृष्ट चित्रों के अंकन में हुआ है। फलक संयोजन में रेखा उसकी आत्मा है जो दो बिन्दुओं को जोड़ने पर दृष्टि में लयबद्धता का संचार करती है। सीधी एवं घुमावदार रेखाओं से यह पेड़ों की पत्तियों, फूलों, प्रतीकों एवं सरल मानवाकृतियों की भावात्मक अभिव्यक्तियों में अलग-अलग रूप से प्रयोग में लाई गई है।

लघुचित्र में रेखाएं कहीं गहरी, कहीं पतली, कहीं हल्की व कहीं मोटी, छाया प्रकाश व्यक्त करती है तो कहीं बारीक आकर्षण को लिये अपनी गति के साथ हर्ष दुःख उल्लास आशा-निराशा, विरह-मिलन, मन्दता एवं तीव्रता की तेज, चुभन को स्थापित करती है। साथ ही यह आकार में सरलीकरण हेतु सीधी व घुमावदार प्रतीकात्मक रूपों के साथ विलीन हो जाती है। सफेद पृष्ठभूमि पर अपना रंग संयोजन जिस मात्रा में होना चाहिये रेखा के माध्यम से ही फलक के समान गति प्रवाहित कर चित्र की आत्मा बन जाती है। इन रेखात्मक फलकीय गतियों का आधुनिक देय चित्रों में महत्त्वपूर्ण स्थान बन गया है जो परम्परागत चित्र शैलियों की ही देन है। विस्तृत रूप में देखा जाय तो एक मोटी रेखा का सूक्ष्म भाग आकार बन जाता है। यही नहीं रेखा पर ही आकार अधिक आश्रित रहता है। भारतीय कला आलोचकों ने कलाकार की कार्य कुशलता को परखने में रेखा को प्रमुख स्थान दिया है।[1] रेखा के महत्त्व को दक्षिणी पश्चिमी राजस्थान में लिखे 9 वीं सदी के प्राकृत ग्रंथ "कुवलय माला कहा" में पहले ही प्रमुख स्थान था[2] रेखा भय, क्रोध, हंसी, करुणा तथा ग्लानि की अभिव्यक्ति का मूल आधार रही है कहीं सर्पाकार रेखाओं ने दर्शक को भयभीत किया है तो कहीं तनी हुई रेखाएँ आशा का संचार करने में सफल रही है।

परामपरागत चित्र शैलियों में रेखाओं ने ही रूप की अनेक आकृतियां रची हैं, अनेकानेक सौन्दर्य के भावों की नींव डाली है तथा कई प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति को स्पष्ट किया है।

---

1. रेखां प्रशंसन्त्या चार्या वर्तनां च विचक्षणा।
स्त्रियो भूषणमिच्छति वर्णाढ्यमितरे जनाः॥ विष्णु धर्मोत्तर पुराण-चित्र सूत्र 41/11
2. 'रेहा ठाणय भावेहि सजुय वण्णविरयणा सारम्।
जाणमि चित्त यम्म णरिन्द दट्ठुं पि जाणामि॥
डां. आदिनाथ नेमीनाथ उद्योतन सूरिकृत 'कुवलयमालाकहा' (सिंघवी जैन ग्रंथ सिरीज), पृ. 185। पंक्ति 12

आदेश का संकेत, दृढता तथा प्रतीक्षा का बोध तो केवल सीधी रेखा के प्रयोग से ही कर दिया जाता है। कहीं-कहीं लावण्ययुक्त गोलाकार रेखाओं को प्रदर्शित कर माधुर्य एवं लालित्य की मुद्रा उंगलियों से स्पष्ट की गई है। श्रृंगार, आत्मसमर्पण, आह्वान, प्रसन्नता, औत्सुक्य और प्रणय का संकेत करती हुई कम्पनयुक्त रेखाएँ भयभीत भी करती है। मेवाड़ चित्रशैली में रेखाओं की अनेक गतियां एवं रंगों का कम ज्यादा प्रयोग करना इस चित्रशैली में भावों पर आधारित रहा है जिसे इस चित्र शैली की आत्मा कह सकते हैं। इस प्रकार परम्परागत लघुचित्रों के विश्लेषण में चित्र संयोजन में आकार रंग रेखा ही नहीं अपितु चित्र में दृष्टि संचालन (टेक्श्चर) भी बारीक परदाज फूल-पत्ती व बेल बूंटों में विधिवत पाते हैं।

ऊखल बन्धन चित्र का कला पक्ष विवेचन

मेवाड़ चित्रशैली के चित्र संयोजन की कलावादी चरमसीमा का अनुदर्शन मुख्य रूप से 16वीं सदी के चित्रों में देखा जा सकता है जिसका प्रत्येक युग में रेखा प्रधान फलकीय संयोजन में परि-पालन हुआ है। तकनीकी दृष्टि से इस काल के चित्रों में विभिन्न तान (टोन) पोत (टेक्स्चर) एवं अवकाश (स्पेस) चित्र कृति के आलंकारिक स्वरूपों में स्पष्ट दिखाई देते हैं जिसमें कलापक्ष का विधिवत् विश्लेषण ऊखल बन्धन 1575 ई. लगभग में चित्रित चित्र से कर सकते हैं भागवत् के ये चित्र मेवाड़ चित्र शैली का अच्छा प्रतिनिधित्व करते हैं। यह चित्र कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर में सुरक्षित है। जिसका विस्तृत विवेचन द्वितीय अध्याय में कुलेहदार एवं चौरपंचाशिका समूही चित्रों के अन्तर्गत किया गया है यह मेवाड़ की उत्कृष्ट कृतियां हैं। ऊखल बन्धन चित्रसंख्या 17 का (आकार 6 इन्च 8 इन्च) में है इसका फलकीय कलात्मक विश्लेषण करने पर हम आधुनिक चित्र संयोजन के सिद्धान्तानुसार रेखा चित्रों के आधार पर अध्ययन की नवीन दृष्टि बना सकते हैं।[1] इसे निम्न आधारों के अनुरूप देखना चित्र समीक्षा का एक रचनात्मक पक्ष है देखें फलक सं. 17 में 1 से 6।

(i) फलकीय निर्माणात्मक रेखाएं।
(ii) विभिन्न तान एवं परतों का सरल संयोजन।
(iii) त्रिआयामी फलकीय गतियों का निरूपण।
(iv) फलकीय लघुजन्यता के आधार पर आच्छादित सरल आकारों की जमावट।
(v) आकृतियों का घनत्व एवं विस्तारीय संयोजन।
(vi) धरातलीय रूपांकन का तनाव एवं फलकीय गतियों का निरूपण।

परम्परागत चित्रों को देखने की उक्त कलात्मक दृष्टि के आधार पर मेवाड़ के प्राचीन चित्र-कारों की कार्यकुशलता को पहचाना जा सकता है। चाहे उन्होंने इन सिद्धान्तानुसार उस काल में चित्रों की रचना नहीं की थी किन्तु उनकी कलात्मक दृष्टि निरन्तर कार्यरत रहने से परिपक्व थी तथा आधुनिक संयोजन के सभी सिद्धान्तों की कसौटी पर भी ये चित्र खरे उतरते हैं। इससे परम्परागत चित्रशैलियों का महत्त्व स्वतः परिलक्षित हो जाता है।

मानवीय अभिव्यक्ति

जीवन के सभी रसों की अभिव्यक्ति इस चित्रशैली के चित्रों में हुई है। बिना रस एवं छंद के इतनी सरल स्वाभाविक भावों की अभिव्यक्ति सम्भव नहीं हो सकती। मेवाड़ के चित्रकारों ने रेखाओं, रंगों और तूलिका के द्वारा चित्रों में आत्मा को प्रतिष्ठित कर दिया है। इनमें शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध छाया दुःख, आनन्द, अर्चना, भक्ति, अनुराग, वैराग्य, वात्सल्य एवं श्रृंगारिक मनोभावों को दर्शाया गया है।

मानवीय स्वभाव की यह भावाभिव्यक्ति हम उदयपुर के प्रताप संग्रहालय में सुरक्षित 1650 ई. लगभग के चित्रसम्पुट कविप्रिया, रसिकप्रिया, तथा गीतगोविन्द आदि के कई प्राचीनचित्रों

1. हैनरी एन राजम्सन आर्ट स्ट्रक्चर—ए टेक्स्ट बुक ऑफ क्रिएटिव डिजाइन, पृ. 75।

में देखते हैं। राधा व कृष्ण के प्रेम में श्रृंगार एवं शान्त रस की प्रधानता है, **रघुवंश** में 1750 ई. लगभग के सामाजिक रीति-रिवाजों एवं नैतिक भावनाओं का प्रदर्शन है, **गजेन्द्र मोक्ष** में हाथियों की विभिन्न मुद्राओं एवं करुण रस की अभिव्यक्ति का स्पष्ट चित्रण है। इसी तरह **सूर सागर** 1720 ई. तथा **कृष्ण चरित्र** 1800 ई. लगभग के चित्रों में शान्त, श्रृंगारिक एवं वात्सल्य भावों की यथार्थ उपलब्धि है। **मालती माधव** में शान्त एवं श्रृंगार रस, **कादम्बरी** में शान्त रस. **पृथ्वीराज रासो** एवं **भागवत् गीता** के चित्रों में वीर तथा वीभत्स भावों का स्पष्ट चित्रण है। इस प्रकार **एकलिंग महात्म्य** तथा **एकादशी महात्म्य** में शान्त सात्विक भावनाओं का चित्रण है तो **कालियादमन** में भयानक रौद्र रस की व्यंजना होती है इसके अतिरिक्त जहां उदयपुर के प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान में सुरक्षित चित्रसम्पुट **आर्ण रामायण** (1651 ई.) में मानवीय नैतिक स्वभाव की अभिव्यक्ति हैं तो वह सरस्वती भण्डार में सुरक्षित चित्रकार जगन्नाथ द्वारा चित्रित **सुन्दर श्रृंगार** (1726 ई.) तथा **बिहारी सतसई** चित्रसम्पुट श्रृंगार रस के अनुपम उदाहरण हैं। जो तत्कालीन चित्रों में स्पष्ट दृष्टव्य है।

सौन्दर्यानुभूति में ऐसे रसों की उपलब्धि से मानव मस्तिष्क में हुई प्रतिक्रिया को कला गुरु श्री अहिवासीजी ने **मानसिक धक्के** (एस्थेटिकशोक) नाम दिया है। इस चित्रशैली में एक के बाद दूसरे चित्र का क्रमिक अवलोकन करने से हमें इसका स्वतः अनुभव हो जाता है। इसके साथ ही अहिवासीजी ने परम्परागत विभिन्न मानवीय मुद्राओं एवं स्वरूपों को रेखा चित्रों द्वारा उदाहरण देते हुए उनके निश्चित प्रतिमानों पर विस्तृत प्रकाश डाला है।[1] इसी तरह पोर्वात्य एवं पाश्चात्य चिन्तन की परम्पराओं में भाव एवं संवेग को चित्रण का मूल तत्व माना गया है। एक ओर अभिनवगुप्त स्थाय्येव रस कह कर रस अभिव्यक्ति में भाव की प्रतिष्ठा करते हैं तो दूसरी ओर पश्चिम के विचारक काव्य एवं चित्रण की विविध रूपात्मक शब्दावली के अन्तर से संवेगों की अभिव्यक्ति स्वीकार करते हैं।[2] इस शैली में भावों के इसी शास्त्रीय पक्ष को हम साकार रूप में देख सकते हैं।

सौन्दर्य शास्त्री क्रोचे, ब्रेडले, वांसाके, संटायन, कालिंगवुड, कैरिट व डुकास आदि किसी न किसी रूप में कला को संवेग की अभिव्यंजना में स्वीकार करते हैं। भरत ने भाव विवेचन में इन्हीं संवेगों भावों को आठ रसों एवं आठ स्थायी भावों में विश्लेषित किया है।[2] इनमें भी रति, उत्साह, क्रोध और जुगुप्सा को प्रधानता देते हुए वे हास, विस्मय, शोक तथा भय को व्यापक मानते हैं। मेवाड़ चित्रशैली के चित्रों को इन्हीं भावात्मक प्रक्रियाओं की कसौटी पर रखकर मूल्यांकित किया जा सकता है। (चित्र संख्या 51 73, 74) अभिनव गुप्त द्वारा संस्कृत सौन्दर्य-शास्त्र के ग्रन्थों में नौ स्थायी भावों को प्राथमिकता दी गई है।[3] रति हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय और शर्म के स्थायी भाव स्पष्ट व्यक्त किये हैं।

'प्रतीक्षारत राधा' चित्र का शास्त्रीय विवेचन

मेवाड़ के प्राचीन चित्रकार अपनी मौलिक शैलीगत विशेषताओं के धनी रहे हैं। इन्होंने जहां काल्पनिक चित्रों को सजीव बनाया है वहां इनकी तूलिका ने भारतीय काव्य की आत्मा को स्पर्श करते हुए कवि की भावभूमि को भी उभारने का एक सफल प्रयत्न किया है।[4]

क्वाइव बेल द्वारा कलाकृति में रेखाओं व रंगों के संयोग-सम्बन्ध एवं सौन्दर्यपरक दृष्टि से निर्मित रूपों को सार्थकरूप "सिग्नीफिकेन्ट-फोर्म" नाम दिया गया है जो समस्त चाक्षुक कलाओं की सामान्य विशेषता है।[5] चित्र में स्थित भाव एवं संवेग को सार्वभौमिक सत्यता की कसौटी पर रख

---

1. वाचस्पति सेठ कन्हैयालाल पोद्दार, अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ. 731।
2. डा. निर्मला जैन—रस सिद्धान्त और सौन्दर्य शास्त्र, पृ. 307।
3. "रति होसश्च शोकश्च क्रोधोत्साहो भयं तथा।
   जुगुप्सा विस्मय श्चैत्यमष्ठो प्रोक्ताः शमोऽपिच॥"
   श्री शालिग्राम शास्त्री—साहित्य दर्पण, भाग 1, श्लोक 175, पृ. 137।
4. लेखक द्वारा—विरहणी राधा चित्र की भावात्मक समीक्षा मधुमति-फरवरी 37 पृ.67
5. डा. निर्मला जैन—रस सिद्धान्त एवं सौन्दर्य शास्त्र, पृ. 282।

कर इस चित्र के चित्रकार की प्रतिभा एवं आत्मज्ञान सम्बन्धी कलात्मक सूझ-बूझ को मूल्यांकित किया जा सकता है। मेवाड़ में निर्मित परम्परागत चित्रसम्पुटों में **गीत गोविन्द** के ये चित्र शास्त्रीय पद्धति पर आधारित हैं।

भाव एवं संवेग के आधार पर चित्राकृति के विश्लेषणात्मक स्वरूप[1] को हम मेवाड़ चित्र-शैली के 1550 ई. लगभग के **'गीत गोविन्द'** चित्र सम्पुट से **'प्रतीक्षारत राधा'** चित्र का चयन कर सकते हैं।[2] चित्र का आकार $8\frac{1}{2} \times 6$ है तथा जलरंगीय टेम्परा से चित्रित है जिसमें चित्रकार के परम्परागत शास्त्रीय अध्ययनयुक्त विचार, साकार रूप से दर्शनीय हैं। यह चित्र देखने से भी अधिक अध्ययन एवं मनन करने में विशेष महत्त्व का है। यह चित्र एक प्रकार से आलेख या लिखे हुए (हेरोग्लिप्स) बीजाक्षरों जैसी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति का निश्चित रूप प्रदर्शित करता हैं। उक्त चित्र ग्यारहवीं सदी के प्रमुख गीतकार जयदेव द्वारा लिखित **गीत-गोविन्द** के तीसरे गीत की दूसरी पंक्ति पर आधारित है।[3]

चित्र के शीर्ष भाग की यह पंक्ति चित्रकार की शास्त्रीय पृष्ठभूमि को व्यक्त करती है जिसका आशय है "जब बसन्त ऋतु में मदनोत्सव के समय कुसुम-वाटिका में कुसुम पादपों का स्नेही भंवरों द्वारा रसा-स्वादन किया जा रहा है और ऋतु की मादकता से उन्मत्त बकुल वृन्द भी स्वच्छन्द गगन में बिहार कर रहे हैं, उस समय **प्रोषित-पतिका** (नायिका) अपने प्रियतम के विरह में शोकानुभूति से आकुलित हो रही है।"

चित्र की इस भावाभिव्यक्ति में चित्रकार की चित्रण कार्यकुशलता भी उल्लेखनीय है। प्रथम तो उसने विषयानुकूल उपयुक्त वातावरण का अंकन किया है जिसमें नायिका प्रोषित-पतिका आलम्बन विभाव है। बसन्त ऋतु के आगमन का दृश्य इसमें उद्दीपन विभाव हैं जिससे नायिका के प्रियतम से मिलने की उत्कन्ठा तीव्रता से परिलक्षित हो रही है। साथ ही प्रियतम के वियोग से खिन्न वदना होना, अनुभाव की कायिक चेष्टाएं हैं। फिर भी मदनोत्सव का आनन्द उठाने के लिये वह वाटिका में पहुंचती है। वहीं प्राकृतिक वातावरण को देखकर बहुत अधिक उद्विग्न होती है। यहां चित्रकार ने आल्हादपूर्ण वातावरण में नायिका की खिन्न चित्त वृत्तियों के अंकन की विशदता को कुशलतापूर्वक स्पष्ट रूप से अंकित किया है।

नायिका विषाद की मूर्ति बनी हुई है। यह उसकी अंग मुद्राओं से व्यक्त हो रहा है। उसके आसन की मुद्रा दाहिने घुटने पर कोहनी टेक कर चिंता से भारी सिर को सहारा देने की अभिव्यक्ति है। दूसरे हाथ से शरीर को संभालने से संभवतः उसकी शारीरिक आसक्ति व्यजित हो रही है। भारी सिर के लटकने तथा नेत्रों के विस्फरित होने से चिन्ता की गहनता स्पष्ट लक्षित हो रही है। उसकी मुखाकृति से यह भी सूचित हो रहा है कि इस असह्य विरह वेदना से वह अवाक् (मौन) है। शारीरिक अक्षमता एवं चिन्ताग्रस्तता आदि चित्र की भावात्मक विशेषताएं हैं जो चित्रकार की कुशल भावाभिव्यक्ति की द्योतक हैं। चित्रकार ने अपने सूक्ष्म अंकन प्रणाली एवं प्रतीकात्मक रंग योजना का स्थान-स्थान पर वातावरण के अनुकूल चित्रण करके चित्र के कला एवं भाव को विशेष प्रभावी बना दिया है।

चित्र में यौवनावस्था की अभिव्यक्ति में नायिका के अंग प्रत्यंग एवं आभूषणों का शास्त्रोक्त चित्रण है। युवाओं के गले में हार, वियोग के सन्ताप से हृदय फटने आदि की अनुभूति चित्र में है।[4]

---

1. राधा कमल मुकर्जी—दी शोसियल फंक्शन ऑफ आर्ट, पृ. 119।
2. प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय बम्बई, चित्र सं. 54, 38।
3. "उन्मद मदन मनोरथ पथिक बधूजन जनित विलापे।
   अलि कुल सकुल कुसुम समूह निराकुल बकुल कलापे।।"
   प. केदारनाथ शर्मा—गीत-गोविन्द काव्यम् पृ. 11।
   युवामंङ्गेषु हाराः, स्फुटचित हृदय वियोगस्य तापे:
4. श्री सालगराम शास्त्री – साहित्य दर्पण, भाग–2, पृ. 49।

यही नहीं चित्र में सुखद वातावरण का चित्रण भी सूक्ष्म निरीक्षण के आधार पर अंकित है जिसे मदनोत्सव पर्व की संज्ञा दी गई है मेवाड़ के आठवीं सदी में लिखे हरीभद्र सूरि द्वारा रचित ग्रन्थ **समराइच्चकहा** में इसका उल्लेख पाकर इसकी प्राचीन परम्परा भी स्पष्ट होती है[1] चित्र का यह वातावरण नाइका में तो मदनोत्सव के आनन्द को और अधिक तीव्र कर रहा है किन्तु इसकी विपरीत प्रतिक्रिया 'प्रोषित पतिका' नायिका में होनी स्वाभाविक है। चित्रकार ने अप्रत्यक्ष रूप से तीव्र मनोदशा दर्शाने में सफलता पाई है । वाटिका में पुष्प खिल रहे हैं, भंवरे मंडरा रहे हैं और बकुल वृन्द स्वच्छन्द आकाश में विहार कर रहे हैं। यह सभी नायिका के विरह को उद्दीप्त करते हैं।

चित्र में कलावादी विशेषताओं के साथ-साथ भाव पक्ष को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। इस क्रम में भाव एवं संवेगों की चित्रानुभूति के आधार पर मेवाड़ चित्र-शैली के चित्रों में दर्शक अपने विभिन्न मनोभावों को जागृत करता है। इनमें आनन्द की एक रूपता का महत्त्व है जो विभिन्न रसों की उपलब्धि कराता है। रस आस्वाद्य है। संवेगों की प्रक्रिया दर्शक के मन में स्वतः विकसित होती रहती है। इसमें दर्शक की दृष्टि अपने रूपवादी संवेगों द्वारा कलात्मक सौन्दर्य में आनन्द-विषयक तत्वों को चुनती है। यही दार्शनिक मत कान्ट महोदय का भी रहा है। क्लाइव बेल. रोजर फ्राई आदि ने भी इसी रूपवादी सौन्दर्यानुभूति को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है।

शास्त्रीय-दृष्टि से यह शृंगार रस प्रधान चित्र है। प्रवासी पथिक आलम्बन है, प्रोषित पतिका नायिका आश्रय है. इस तरह राधा के प्रेमी कृष्ण, जिनकी चिन्ता ही विषयालम्बन है, प्राकृतिक छटा उद्दीपन है, नायिका की चिन्ताग्रस्त मुद्रा एवं विशेषासन्न मुद्रा, भारी बदन, विस्फरित नेत्र, आदि विरह जनित भावों की कायिक चेष्टाएं हैं जो अनुभाव के अन्तर्गत आती हैं। इसमें स्मृति चिन्ता आदि **सहचारी** (संचारी) भाव हैं तथा रति स्थाई भाव है। रस **विप्रलम्ब** (वियोग) शृंगार है। अतः चित्रकार ने शास्त्रीय विप्रलम्ब शृंगार की आवश्यक अवस्थाओं का चित्रण बड़ी ही मार्मिकता एवं कलात्मक भावनाओं से किया है। साहित्य संगीत और कला का यह बौद्धिक संगम मेवाड़ के परम्परागत चित्रों में सर्वत्र व्याप्त है।

प्राचीन भारतीय लघुचित्र परम्परा में चित्रकार द्वारा चित्र-सौन्दर्य को जानने की मुख्य परिपाटी बौद्धिक रही है। इन चित्र शास्त्रियों ने प्रत्येक चित्र को शास्त्रयुक्त बनाया है। यही कारण है कि आचार्य एवं पण्डित भी इनका रसास्वादन करते नहीं चूकते हैं। इस प्रकार परम्परा से प्राप्त अनुभव एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में प्रचलित बौद्धिक समृद्धि एवं शास्त्रीय चित्रण पद्धति का मेवाड़ चित्र शैली के चित्रकारों ने भली-भांति निर्वाह किया है।

मेवाड़ के चित्रकारों ने चित्र निर्माण में इसी स्वयं प्रकाश ज्ञान, अन्तः प्रेरणा एवं प्रतिभा को फलक पर संयोजित किया है जिसे शास्त्रीय मापदंडों में ही बांधना एवं मनन करना अपेक्षित है। ये चित्र, चित्र न होकर प्रतिभा सम्पन्न कलाकारों के लिपिबद्ध भाव प्रतीत होते है, जिन्हें चित्रफलक में ढालकर साकार रूप दिया है।

कला एवं भाव पक्ष

कुंवर संग्रामसिंह, संग्रह जयपुर संग्रहित **गीत-गोविन्द** 1950 ई. के एक अन्य चित्र **"राधा व कृष्ण की अनबन"** कला एवं भाव पक्ष की उत्कृष्ट कृति हैं जिसमें भाव स्निग्ध **प्रणय प्रसंग में रत कृष्ण व राधा** (स्वाधीन पतिका प्रोढ़ा नायिका) का है। इस लघुचित्र में प्रणय व्यापार की अद्वितीय अभिव्यक्ति है, क्योंकि इस भाव की पूर्ण व्यंजना कृष्ण और राधिका के चेहरों पर स्पष्ट दिखाई देती है। चित्रकार ने चित्र को दो भागों में दो शरीर अलग होने के भाव दिखाये हैं किन्तु साथ ही आत्मा एक होने का प्रतीक बहते हुए नाले की गतिपूर्ण रेखांकन से अभिव्यक्ति की है जो चित्र संयोजन को इकाई में बांध रहा है। (चित्र संख्या 35)

1. हरमन जेकोबी हरिभद्र सूरि कृत समराइच्चकहा, पंचमभव पृ. 373, 635, 636।

परिजात हरण चित्र का विश्लेषणात्मक अध्ययन

राजस्थान की परम्परागत कला पद्धतियों में चित्र संयोजन के सैद्धान्तिक स्वरूपों का विशेष महत्त्व है। इस प्रदेश में मेवाड़ के प्रारम्भिक लघु चित्रों की रचना इस प्रवाह में उल्लेखनीय है। मेवाड़ में प्रारम्भिक गुर्जर प्रभावकाल से ही चित्रकारों ने अपने चित्र संयोजन में बोधिक सूझ-बूझ से विविध रूपों आंख, नांक, ठुड्डी, विभिन्न पोशाकों, प्रासादों, पशु-पक्षियों, फूल पत्तियों एवं पेड़-पौधों का सरल रेखाओं में विरूपन कर **नवीन आयामों** की स्थापना की है यही कला के प्रेरणा स्रोत भी थे। इनमें चित्र संयोजन की एक अपनी मौलिक परम्परा रही है। अध्ययन की इस कसौटी पर मेवाड़ के एक प्राचीन लघु चित्र का हम शास्त्रीय दृष्टि में उल्लेख करते हैं।

प्रारम्भिक मेवाड़ चित्र शैली के प्राचीन उत्कृष्ट चित्रों में "पारिजात हरण (लगभग (1540 ई.) सा. नाना के चित्र भागवत् पुराण से लिया है यह चित्र अमेरिका के नस्ली हीरा मानिक संग्रह में सुरक्षित है।[1] (चित्र सं. 18) चित्र संयोजन के **फलकीय सिद्धांतों** में कलात्मक "फोर्मल" गुणों के आधार पर इस चित्र का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने पर सर्वप्रथम इसको अलग-अलग रंगीय तलों में विभाजित करना होगा। रेखांकन 1 में अनुमानित संकेतों से रंग श्रेणियों का प्रथक्करण किया गया है। लघु चित्र साधारणतया **द्वी-आयामी** होते थे। प्रस्तुत मेवाड़ चित्र शैली का यह चित्र भी **द्वी-आयामी** चित्रण की विशेषताओं के अन्तर्गत लिया जा सकता है। डेविडफ्रेन्ड के अनुसार[2] सामान्यतया लघुचित्र शैली को द्वी आयामी इसलिए माना गया है कि उसमें छाया प्रकाश का प्रयोग नहीं है। लेकिन रंग-रेखाओं के **समायोजन** द्वारा कलाकार जिस अपेक्षित प्रभाव से तीसरे आयाम को उत्पन्न करते थे वहीं चैत्रिक कुशलता मेवाड़ के प्रारम्भिक चित्रों में सर्वत्र मिलती है। इस चित्र में मुख्यतः श्याम, रक्त एवं पीत रंग का प्रयोग है, पीले के साथ उसका पूरक रंग नीला है तो लाल रंग का पूरक हरा प्रयोग में लिया गया है।

चित्र के मुख्य पात्र विष्णु को लक्ष्मी के साथ गरुड़ पर आसीन दिखाया है। चित्र के मध्य भाग को तनिक बाईं ओर बढ़ाकर दृष्टि को रोकने का सफल प्रयास किया गया है। लक्ष्मी और गरुड़ के पीले रंग से विपरीत विष्णु का नीला रंग एवं पेड़ों का हरा रंग है जो लाल पृष्ठभूमि में उष्ण रंग योजना के अन्तर्गत शीतलता प्रस्तुत करते हैं। पत्तों का हरा रंग एवं उनका **गति संचालन** "टेक्श्चर" विष्णु के गौरव को उभारता है। लाल रंग की पृष्ठभूमि के बड़े भाग दाहिनी ओर इन्द्राणी के लाल वस्त्रों एवं दोनों ओर के मकानों की खड़ी व आड़ी लाल पट्टियों से चित्र में संतुलन कायम किया गया है। इसी तरह बीच वाले लाल हिंगलू रंग को दोनों ओर के गहरे रंग से भी सन्तुलित किया है। पीले रंग की मोटी व पतली आकृतियां प्रासादों के लम्बी छत्रियाँ, वृक्षों के तने एवं आड़ी जमीन, लक्ष्मी-गरुड़ तथा विष्णु की धोती इत्यादि की मोटी रेखायें पूरे चित्र को **एक इकाई** "इन्टीग्रेशन" या "हारमोनी" में बांधती है। इसी तरह हरे रंग को भी वृक्षों में तथा बाईं ओर गरुड़ के नीचे बगीचे या अलंकरण युक्त सतह में प्रयोग करके सन्तुलित किया गया है। जगह-जगह पर इन मुख्य-मुख्य रंग वाले विस्तारों "स्पेस" को हल्के रूप में अर्थपूर्ण अलंकरण से तोड़ा है, जैसे कि पेड़ में सफेद फूल, प्रासादों के खम्बों एवं आड़ी पट्टियों में किया लाल अलंकरण तथा विष्णु की धोती के सल बताने वाली लाल रेखाओं से अलंकरण की पुनरावृत्ति एवं रंग सामंजस्य बहुत ही आकर्षक रूप से स्थापित किया गया है।

रंग संयोजन के साथ ही आकारों का सरलीकरण इस चित्र का मूल कलात्मक पक्ष है। यहां भी विष्णु मुख्य पात्र हैं जो अपना 'मुखियापन" स्पष्ट रूप से निभा सकें ऐसे अंकित हैं। यह पूरी हलचल डाइनामिक इकाई चित्र के मध्य भाग के आसपास ही अच्छे कलात्मक ढंग से अंकित की गई है। इससे विपरीत दोनों बाजुओं के पात्र गति शून्य हैं दाहिनी ओर दो खड़ी

---

1. स्पान—अगस्त 1967 पृ. 18।
2. "बैन आर्टिस्ट टाक एबाउट बेलेंसिंग, हारमोनाईजिंग एण्ड युनिफाईंग द स्टेप्स एण्ड अदर एलीमैन्टस् इन ए पेंटिंग दीज रिलेशनशिप आर बेसीकली टू डाइमेन्शनल।"
डेविड फ्रेण्ड कम्पोजिशन—ए पेन्टर्स गाइड टू बेसिक प्रोबलम्स एण्ड सोल्यूशन, पृ. 15।

ग्राकृतियों ग्रोर बाईं ग्रोर दो बैठी ग्राकृतियों को ग्रंकित कर सामने के मकान की निर्जीव रचना के ग्रनुकूल कर देना भारतीय चित्र संयोजन की एक बड़ी विशेषता है जो खड़ी व ग्राड़ी रेखाग्रों की गति शून्य स्टेइक इकाई ग्राकृतियों में स्पष्ट दिखायी देती है।[1] यह मेवाड़ के परम्परागत चितेरों की ग्रनोखी सूझ-बूझ को व्यक्त करती है। चित्र सं. 18 के रेखांकन 2 एवं 3 में ग्रंकित गति क्रम को देखें।

मेवाड़ चित्र शैली का यह एक प्रारम्भिक उत्कृष्ट चित्र है जिसमें किसी भी बाह्य चित्र शैली का प्रभाव नहीं है। परवलयाली ग्रांख भागवतपुराण के चित्रों में चित्र कृष्ण स्नान 1500 ई. लगभग चित्रित माधुरी देसाई संग्रह बम्बई के चित्र सं. 16 से ही प्रायः हट गई थी, ग्रांख विशेष प्रकार की मोटी विपरीत दो कमानीदार रेखाग्रों के मध्य एक बिन्दु लगाकर सौन्दर्य की ग्रति दर्शा रही है। ठुड्डी के नीचे की गोलाई इस काल से चित्रों में दिखाई देने लगती है। साड़ी एवं धोती के पल्ले चित्र शैली की विशेषता के ग्रनुसार ही ग्रागे की ग्रोर झूलते दिखाये हैं तथा सादा ग्रलंकरण एवं रेखाग्रों की गतियां भारतीय परम्परा को दर्शाती है। रंगीन ग्राकृतियों को पूर्ण करने के लिये जो रेखायें लगायी गई हैं वह जैन चित्र शैली के चित्रों की भांति लिखावट "केलीग्राफिक लाइन" के समान है। द्वि-ग्रायामी सफल प्रक्रिया को देखते हुये इस चित्र को एक कुशल ग्रलंकरण शैली के ग्रन्तर्गत लिया जा सकता है।

विषयवस्तु की दृष्टि से यह चित्र कथानक की भी स्पष्ट ग्रभिव्यक्ति करता है। (चित्र सं. 18) "पारिजात हरण" स्वर्ग के पारिजात वृक्ष को धरती पर लाने का स्पष्ट ग्रंकन चित्रकार ने कुशल रेखा रंग एवं ग्राकारों के साथ कर लिया है फिर भी पूरे चित्र का विषय मूल्यांकन ग्रपेक्षनीय है जो भारतीय एवं प्राचीन कथानक को व्यक्त करता है।

चित्र में दाहिनी ग्रोर खड़े पुरुष-स्त्री की ग्राकृतियों में पुरुष पात्र "विष्णु" पर कई ग्रांखों की ग्राकृतियां हैं। पुराणों में इन्द्र का वर्णन सहस्त्राक्ष या हजार ग्रांखों वाले बताये हैं, जैसे महेश को त्रिनेत्री-कपाल के मध्य तीसरा नेत्र वाला बताया जाता है वैसे ही इन्द्र की हजार ग्रांखों में से कुछ शरीर पर ग्रंकित है। नीले रंग का शरीर पुराणों में विष्णु एवं उनके ग्रवतारों का ही बताया गया है, इनके ग्रतिरिक्त सभी साधारण ग्रादमी गौर या श्याम वर्ण में दर्शाये जाते हैं। ग्रतः यह बताना ठीक है कि नीले रंग के शरीर वाले व्यक्ति विष्णु भगवान हैं। ऊपरी भाग में कमल दल के ऊपर लक्ष्मी को गोद में लिये गरुड़ के सिर पर ग्रासीन बताकर कलाकार ने इस मान्यता की साग्राधार रूप से पुष्टि कर दी है। दूसरा विष्णु के हाथ में लिये ग्रायुध, शंख, चक्र, गदा एव पद्म इस बात को स्पष्ट कर रहे है कि यह विष्णु की ग्राकृति है। इसी तरह गरुड़ का गरुड़ होने के दो ग्राधार हैं। मुंह की जगह चोंच ग्रंकित करना एवं पक्षी जैसे पैर। नीचे बाग बगीचे जैसी जगह स्वर्ग का बगीचा जहां पारिजात का वृक्ष था उसका ग्रधिपति इन्द्र ही होने के नाते यह स्वर्ग का बाग स्पष्ट प्रतिपादित हो रहा है। विष्णु के द्वारा यह वृक्ष वहां से उठाकर पृथ्वी पर लाने की कथा हमारे पुराणों में है।

उक्त विषयवस्तु के तथ्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस चित्र शैली में चित्रकार ने विषयवस्तु का विधिवत् एवं ज्ञान युक्त निरूपण किया है। चित्रकार ने एक ही चित्र में कथा के नायक विष्णु को तीन बार बताया है।[2] ऐसा करके उसने एक छोटे से चित्र फलक में विभिन्न स्थल एवं काल की कुशलता के साथ चित्रित कर दिया है। यही भारतीय परम्परा को ग्रनोखा वरदान इस मेवाड़ चित्र शैली के उत्कृष्ट चित्र में स्पष्ट हो जाता है। कला एवं भावपक्ष के ऐसे चित्र संयोजन की कुशल प्रक्रिया को पाश्चात्य समकालीन कलाकार बहुत प्रयत्न करते हुए भी ग्रंकित करने में सफल

---

1. मिटलेण्ड ग्रेव्ज—द आर्ट ऑफ कलर एण्ड डिजाइन न्यूयार्क, 1951, पृ. 92।
2. लेखक द्वारा—आकृति (रा. ल. अ. जयपुर) जनवरी 1979, पृ. 5-9।

नहीं हो पाये हैं। रंगों एवं रूपों का प्रतीकात्मक प्रयोग भारतीय विचार शैली पर आधारित परम्परा की ही देन है जिससे प्रेरित होकर कार्य करना युग संदर्भ में अपेक्षनीय है।

फलक संयोजन की सैद्धान्तिक प्रक्रिया

भारतीय परम्परानुसार आदिकाल से ही चित्रसंयोजन के कई सिद्धान्त निर्धारित हैं जिनमें वर्तनी व वर्ण विन्यास आलेख्य चित्रों को परखने की कसौटी है। आलेख्य चित्रो में रेखांकन का प्रमुख आधार पूर्वी देशों की कला परम्परा का आवश्यक अंग रहा है। प्राचीन शिल्पाचार्यों ने वर्तनी में तीन तथ्यों का एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया, जो क्षय वृत्ति सिद्धान्त याने क्षय (घटाव) एवं वृद्धि (बढ़ाव) प्रमाण के रूप में मुख्य मापदण्ड रहे हैं।

वर्तनी के विभिन्न प्रकारों को त्रिविधा वर्तना व प्रभेद कहा है जिसमें पत्रजा (क्रोस लाईन), एरिक (स्टम्पिग) तथा विन्दुज (डोट्स) आदि भारतीय चित्र कला में अपनाये गये आयाम हैं।[1] इन चित्रों में चित्रकार सर्वप्रथम रेखा वर्तन जिसे पीताभ या रक्ताभ (हल्के पीले या हल्के लाल रंग में) खींच कर स्थान का संयोजन निश्चित करता था। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में इसकी अच्छी व्याख्या की गई है।

'स्थानं प्रमाणं भूलम्बो मधुरत्वं विभक्तता'। विष्णु धरमोत्तर पुराण

जिससे सिद्ध होता है कि चित्र में सभी अवयवों आदि की प्रांज्जवलता के लिये ये सर्वप्रमाण लावण्य विभक्ता एवं विन्यास अनिवार्य माने गये थे। यही नहीं चित्र कैसे चित्रित किया जाय इस पर भी शास्त्रीय विवेचन से आदर्शवाद एवं यथार्थवाद दोनों मे से आदर्शवाद को अधिक महत्त्व दिया है। इन्हें षडांग के आधार पर हम शास्त्रीय परम्परागत रूपों में भी विश्लेषित कर सकते हैं जो यशोधर के निम्न सूत्र अनुसार चित्रण तत्वों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

रूपभेदाः प्रमाणानि भावलावण्ययोजनम्।
साद्दश्यं वर्णिकाभंग इति चित्र षडंगकम्॥ यशोधर, जयमगला

उपर्युक्त चित्रकला के छः अंगों को हम फलक संयोजन सिद्धान्तों में विधिवतपाते हैं। वात्सायन के चित्र सूत्र की टीका में यशोधर ने उपर्युक्त छः अंगों का स्पष्ट विवेचन किया है। नाप, तोल, अनुपात भावों का माधुर्य, दृश्यात्मक गतिविधान, वातावरण एवं मानवमन से एक रूपता, विभिन्न प्रकार के रंग एवं उनकी झांइयों की वर्णिका के प्रयोग से निश्चित ऐसे प्रतिमान बन गये हैं जो सदियों तक इस विस्तृत क्षेत्र में समान भाव समान अंकन पद्धति एवं समान कला अभिव्यक्ति का विस्तार करते रहे।

फलक के इसी विभाजन को आधुनिक कला आलोचकों ने भी निश्चित सिद्धान्तों के अनुसार समझाया है। जिसमें एक अमेरिकन कलाविद् म्यूरिस द सूसमारे ने उचित पुष्टि दी है।[2]

फलक का विभाजन ही दर्शक के आंखों पर पहला असर डाल देता है कि कलाकृति का संयोजन श्रेष्ठ है या नहीं। उपर्युक्त दोनों ही परम्परागत एवं नवीन सयोजनात्मक दृष्टियों अनुसार हम चित्रों को कलात्मक कसौटी पर रख कर विश्लेषण कर देखेंगे कि इसमें कौन-कौन से ऐसे तत्व है जो दर्शकों की दृष्टि पर सौन्दर्यात्मक प्रभाव डालते हैं।

रंग एवं संयोजन पर प्रायोगिक सौन्दर्य तत्वों का विश्लेषण हरबर्ट, स्पेन्सर, जेस्टाल आदि मनोवैज्ञानिकों ने किया और समाज के विभिन्न पूंजीपति, मजदूर आदि वर्गों हेतु भिन्न-भिन्न धाराणाएं बनाई जिनको देख दर्शक स्वयं दृश्यात्मक गतिविधियों में तन्मय हो जाय, यही एक चित्रकार के कुशल संयोजन का मापदण्ड है।

---

1. समरांगण सूत्रधार - राजनिवेश एवं राजसी कलाएं, पृ. 66।
2. "द वे आफ विच द पिक्चर एरिया इज डिवाइडेड इज एन इम्पोरटेन्ट इसू बिकोज इट सेज द फन्डामेन्टल प्रपोर्शन्स दैट मेक्स ए फर्स्ट इम्पेक्ट ओन आई।"
म्यूरिस द सूसमारे—बेसिक डिजाइन द डाइनोमिक्स ऑफ विजुअल फोर्म, पृ. 32।

विश्व के प्राचीन चित्र एवं चित्र शैलियों में चित्रण के विशेष सूत्रों का प्रचलन रहा है। जिनमें निम्न छः बिन्दु मुख्य हैं :

(1) भूमितल को बड़े छोटे विशिष्ट फलकों में ऊपर नीचे के तलों में विभाजित करना।
(2) आकारों में भिन्नता दर्शाना व छोटे बड़े आकार इच्छानुसार अंकित करना।
(3) चित्रण इकाइयों की सजावट को कलात्मक गति अनुसार अंकित करना।
(4) दृश्यात्मक लघुजन्यता के आधार पर चित्रों की आकृतियों को बनाना।
(5) दृश्यात्मक गति विधान के आधार पर वातावरण को अंकित करना।
(6) रंग भेद से अलग-अलग रंगों की परतों में सौन्दर्य वृद्धि एवं सन्तुलन प्रकट करना।

उपर्युक्त चित्र संयोजन सिद्धान्त के तथ्य प्राचीनकाल से अब तक के चित्रों में प्रवाहित होता रहे हैं जिनके आधार पर हम अपने चित्रों को देख उनकी श्रेष्ठता एवं कमियों का मूलांकन कर सकते हैं। चित्रकला शिक्षण में यह प्रक्रिया विभिन्न पाठ्य बिन्दुओं में अपनी महत्त्वपूर्ण उपादेयता का आधार है।

चित्रों की समीक्षा के मूल आधार

हम देख चुके हैं कि राजस्थानी चित्रकला की पृष्ठभूमि में विषयवस्तु और शैली की दृष्टि से मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा का अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान है जो राजस्थान की ही नहीं अपितु भारत की अन्य कलाशैलियों के विकास क्रम में अपने विशिष्ट चैत्रिक लक्षणों तथा सांस्कृतिक विशेषताओं का परिधान ओढ़े परिलक्षित होती है। ऐसा देखा गया है कि किसी क्षेत्र की कला के विकास शृंखला में वहाँ पर होने वाले भौगोलिक एवं राजनैतिक परिवर्तनों का प्रभाव अनिवार्यतः आता है इस दृष्टि से भी मेवाड़ क्षेत्र को प्राचीन काल से अपनी सांस्कृतिक, धार्मिक और कलात्मक परम्पराओं को का केवल आक्रमणों से सुरक्षित रखने अपितु उनका अक्षुण्ण रुप से निर्वाह करने का गौरव प्राप्त हुआ है। फलस्वरूप हम इसमें निम्नांकित निष्कर्ष पाते हैं:—

(i) विषयवस्तु एवं चित्रांकन पद्धति में ठेठ भारतीयता का होना।
(ii) भारत के पुराख्यानों, पौराणिक प्रसिद्ध महाकाव्यों सम्बन्धित चित्रण।
(iii) उज्जवल रंगों एवं सघन रेखाओं की आकृतियों का निर्माण करना।
(iv) भारतीय चित्रण परम्परा के अनुरूप विषय की महत्ता के आधार पर नायक नायिकाओं को बड़ा-छोटा संदर्भ के अनुरूप संयोजित करना।
(v) परम्परागत सांस्कृति एवं लोक अभिप्रायों का सांकेतिक रूप में प्रयोग करना।
(vi) पश्चिमी भारतीय चित्रकला के सभी चैत्रिक लक्षणों का उपयोग होना।
(vii) मध्यकालीन सुविकसित शौर्य के अनुरूप राज-प्रासादों एवं उदात आकृतियों का निर्माण।
(viii) गति एवं दृष्टि नियन्त्रण के चैत्रिक आधारों का सर्वाधिक प्रयोग।
(ix) प्राचीन भारतीय शास्त्रों में वर्णित चित्र लक्षणों एवं पद्धतियों का उपयोग।

उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर इन प्राचीन चित्रों के चैत्रिक लक्षणों का विश्लेषण एवं चित्रण विधियों का अध्ययन निश्चय ही चित्रकला के अध्येयताओं हेतु उपयोगी सिद्ध होगा। साथ ही कला शिक्षण और शोध की दृष्टि से पारम्पारिक एवं आधुनिक चित्रविश्लेषण का यह अध्ययन भारतीय चित्रकला के मूलभूत तत्वों को गहराई से समझने की क्षूक्ष्म दृष्टि एवं नवीन दिशा दे सकेगा। □

7. चित्रण सामग्री का तकनीकी स्वरूप

मेवाड़ में चित्रांकन की अपनी एक विशिष्ट परम्परा रही है जिसे यहां के चित्रकार पीढ़ियों से अपनाते रहे हैं। साथ ही अपने अनुभवों एवं सुविधाओं के अनुसार चित्रण के कई नये तरीके भी खोजते रहे हैं। मेवाड़ के चित्रकारों एवं चित्रण केन्द्रों में यह तकनीकी पक्ष आज भी प्रचलित है।

इस क्षेत्र में विभिन्न तकनीकों का प्रादुर्भाव पश्चिमी भारतीय चित्रण पद्धति के अनुरूप निर्मित ताड़ पत्रों के चित्रण कार्यों में ही उपलब्ध होता है। इसके प्रारम्भिक स्वरूपों का उल्लेख आठवीं सदी ई. में हरिभद्रसूरि रचित **समराइच्चिकहा** एवं **कुवलयमालाकहा** जैसे प्राकृत ग्रन्थों के प्राप्त कला संदर्भों में मिलता है। जिस पर द्वितीय अध्याय में विस्तृत विवेचन कर चुके हैं। इन ग्रन्थों में विभिन्न प्रकार के रंग तूलिका एवं चित्रफलकों का तत्कालीन साहित्यिक सन्दर्भों के अनुकूल उल्लेख है। मेवाड़ में प्रामाणिक रूप से चित्रण के तकनीकी पक्ष का क्रमिक विकास यहीं से मानते हैं तथा चित्रावशेष 1229 ई. के उत्कीर्ण भित्ति चित्रों एवं 1260 ई. के ताल पत्रों पर मिलते है। जिनके विधिवत परीक्षण से तत्कालीन कला सामग्री की तथ्यपूर्ण जानकारी हो सकती है।

यह सर्वविदित है कि इस शैली में चित्रण के विभिन्न साधन एवं सामग्री का निर्माण चित्रकार स्वयं करते रहे हैं। उनमें विभिन्न प्रकार के रंगों, तूलिकाओं, भित्ति चित्रों को दीवारों, ताल पत्रों एवं कागज की सतहों पर चित्र निर्माण सम्बन्धी विभिन्न स्थानीय पद्धतियों परम्परा प्राचीन काल से ही इस क्षेत्र को विरासत में मिली है।

रंग निर्माण के तकनीकी आधार

यहां के प्राचीन चित्रों में खनिज रंगों का सर्वाधिक प्रयोग मिलता है इस प्रदेश में पाई जाने वाली मिट्टी के कण-कण में रंग विद्यमान है, यही कारण है यहाँ विभिन्न प्रकार की मिट्टियों तथा प्राकृतिक खनिज रंगों का प्रयोग चित्रण कार्य में अधिक मिलता है जिनमें लाल, काली, पीली रामरज, सफेद, मिट्टियाँ तथा विभिन्न रंगों के पत्थर हरा भाटा, हिंगलु आदि को बारीकी से पीस कर उसे आवश्यकतानुसार गोन्द एवं पानी के साथ घोट कर काम में लेने की अपनी निजि पद्धति रही है। इनके अतिरिक्त प्राकृतिक खनिज रंगों में विभिन्न प्रकार की खनिज बहुमूल्य धातुएँ सोना, चांदी, रांगा, जस्ता तथा भूमि से प्राप्त अन्य रंगों का विधिवत निर्माण करते रहे हैं उक्त तत्व से बनने वाले रंग कीमती एवं टिकाऊ होते थे। हरा भाटा, पीला पत्थर, एवं हिंगलू पत्थर अधिक कार्य में आता था। स्वर्ण एवं चांदी के पत्रों तथा सफेद-हकीक को बारीक कणों में गोट-गोट कर रंग तैयार किया जाता था।

काले रंग के लिये काजल या कोयले का प्रयोग होता था । यहाँ पर तिल्ली के तेल के काजल से कालारंग बनाने की विधि अधिक प्रचलित रही है, काला रंग रसायनिक विधि से भी बनता था इसमें पीसी हुई हड़ में कसीस डालकर तेज काला रंग तैयार करने की पद्धति रही है ।

सफेद रंग : मेवाड़ के ताड़ पत्रित युग में प्रायः कम काम में आया । मानसोल्लास एवं अभि-लषित चिन्तामणी ग्रन्थ जो 1131 ई. में लिखे गये इनमें रंग हेतु क्रोंच शैल या सीप से बनाने का उल्लेख मिलता है इसमें सीप शंख को जलाकर इसकी भस्मी से सफेद रंग बनाने की विधियाँ हैं । मुनि पुण्यविजयजी के अनुसार सफेदे का प्रयोग 16वीं सदी के चित्रों से प्रारम्भ होता जो इरानी प्रभाव पश्चात् अधिक प्रयोग में आया था ।[1] मेवाड़ में प्रायः मगरोप (भीलवाड़ा) की खाड़ियों का सफेदा प्रयोग में आता रहा है किन्तु सीप व शंख से भी चमकीला सफेद रंग बनाया जाता था उन्हें एक छोटी भट्टी में जलाने की प्रक्रिया पश्चात् अधजले शंख एवं सीपों की चूरी करके उसे सिलबट्टे पर बारीक घोटा जाता था, जितना घोटते उतना ही वह फैलता, साथ ही उसकी सफेदी भी अधिक उभरती । बाद में आवश्यकतानुसार खेरी या धोली मूसली का गोन्द मिलाकर चित्रण कार्य के प्रयोग में लिया जाता था । प्राचीन काल में जावर आदि स्थानों से प्राप्त जस्ते या शीशे की खाक से भी सफेद रंग बनता था जो बाद में जिंक ऑक्साइड नाम से सम्बोधित किया जाने लगा ।

लाल रंग : प्रकृति से प्राप्त लाल पत्थर, गेरु व हिंगलू से लालरंग तैयार किया जाता था । हिंगलू पश्चिमी भारत शैली में खनिज पत्थर से हिंगलू रंग में चित्रित चित्रों की अपनी प्राचीन परम्परा थी । पश्चिमी भारत शैली में चित्रित चित्रों में प्रारम्भ से ही प्रचलित मुख्य रंग रहा है तथा इस भू-खण्ड में अब तक प्रयोग में आता रहा है इसी प्रकार रसायनिक क्रिया से वेर बरगद, एवं पीपल की लाख द्वारा लाल रंग तैयार करने की भी मेवाड़ में एक विशेष पद्धति रही है जो यहां का प्रमुख स्थाई रंग रहा है । इसकी विधि नीचे दी जा रही है । लाल रंग में हिंगलू रंग को सभी रंगों में श्रेष्ठ माना गया है ।[2] इसी में पीले रंग की मात्रा मिलाने से कसूमल रंग बन जाता है जो मेवाड़ एवं दक्षिणी पश्चिमी राजस्थान में वहुत प्रचलित रहा है । इन रंगों को सिलबट्टे पर गोठने की विशेष पद्धति रही है हिंगलू जंगाल तथा हरताल तो कई दिनों तक घोटे जाते थे ये परम्परागत लघु चित्रों के उत्कृष्ट एवं चमकीले रंग थे ।

रंग निर्माण की स्थानीय पद्यतियां

लाख के रंग बनाने की विधि : मेवाड़ में वैर बरगद तथा पीपल की लाख से लाल रंग बनाने की देशी परम्परागत विधि रही है जिससे भिन्न-भिन्न पात्रों के परिवर्तन से ही उनमें किरमी, महावर या अलता, मेहन्दीहरा व वेंगनी रंग चित्रकार स्वयं बनाते रहे हैं । लाल रंग हेतु सर्वप्रथम उक्त लाख के चूर्ण को मिट्टी के वर्तन में सादा पानी डालकर भिगो दिया जाता है, चौबीस घन्टे बीतने पर बिना हिलाये ही ऊपर से रंगीन पानी अलग ले लिया जाता, उसे किसी खुले मुँह वाले मिट्टी के वर्तन में रख आग पर उबालने की क्रिया की जाती है । उबलते समय उस पानी में पठानी लोद तथा सुहागा एक और आधे चम्मच की मात्रा में मिला देते है उसके बाद खुले मुँह के वर्तन में पानी लेकर उड़ने देते । गाढ़ा होने पर उसमें रूई के गुच्छे डालकर सूखने देते, सूखने पर गुच्छे को 'चूखा' नाम से सम्बोधित किया जाता तथा सुरक्षित स्थान में रख दिया जाता । यह आज भी प्राचीन परम्परागत चित्रकारों के पास पाया जाता है । इसमें अन्य कोई चीज नहीं मिलाई जाती है । स्थानीय शब्दावली अनुसार इसे ही शुद्ध महावर, किरमजी व आलता रंग की संज्ञा दी गई है । यह लाल रंग की विधि मिट्टी के वर्तन में बनाने पर ही सम्भव है । यदि इसी लाख से हरारंग बनाना हो तो यही उक्त क्रिया ताम्बे के वर्तन में की जाय जिससे सूखीमेंहदी जैसा हरा रंग बन जायेगा । यदि लाख से ही

1. मुनि पूर्णविजयजी–जैन कल्पद्रुम पृ 47–110
2. वहीं, 40–119

काला लाल व बैंगनी रंग बनाना हो तो लोहे के बर्तन में यह क्रिया की जाय। इस प्रकार केवल पात्र बदलने पर ही अलग अलग रंग बनाने की पद्धति प्राचीन काल से मेवाड़ में प्रचलित रही है[1] जिसका यहाँ के प्राचीन चित्र सम्पुटों में विधिवत प्रयोग, राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित **ढोला मारू** 1592 ई. चित्र संख्या 22 राग रागनियों, कवि प्रिया एवं रसिकप्रिया के चित्रों में अधिक हुआ जिन्हें प्रत्यक्ष रूप से देखने पर ही इन रंगों के महत्त्व को समझा जा सकता है, देखें चित्र सं. 22, 26, 28, 29, 31, 53, आदि में हम यह स्पष्ट रूप में मूल्यांकित कर सकते हैं।

नीला रंग : प्राचीन काल से ही यह रंग भारत में चित्रण कार्यों में प्रयुक्त होता रहा है, अजन्ता के भित्ति-चित्रों में यह विशेष रूप से गहरा नीला लाजवर्द तथा राजवर्द (लेपिस लेजूली) नाम से प्रसिद्ध रंग रहा है जिसका विस्तृत विवेचन **विष्णु धर्मोत्तर पुराण मानसोल्लास** आदि प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। 1200 ई. से 1400 ई. के ताड पत्रों में यह रंग प्राय: कम प्रयोग में लिया गया है।[2] यह रंग मयूर की गर्दन जैसा गहरा नीला खनिज रंग है जो पीस कर तैयार किया जाता रहा है वनस्पति से जो नीला रंग तैयार करते हैं उसमें **देशी नील,** पौधों से प्राप्त की जाती रही है। मेवाड़ में आकोला, सांगानेर (भीलवाड़ा) आदि स्थानों में नील की खेती भी होती थी जिससे डली दार नील (बतासी) **बताशीनील** बनाई जाती जो प्राचीन काल से ही कपड़ों की रंगाई तथा चित्रण हेतु महत्वपूर्ण रंगों में से एक था। मेवाड़ में इसे **कांटी** रंग नाम से भी सम्बोधित करते हैं।

पीला रंग : विष्णु धर्मोत्तर पुराण में इसे **हरताल, प्यावडी, गौगूली** आदि नामों से उल्लेखित किया है। मेवाड़ में केसूली के फूलों से तेज पीला वनस्पति रंग भी प्राप्त करने की प्रथा रही है तथा प्राचीन चित्रों में यही रंग अधिक प्रयोग में आया है। यह पलाश या केसूली छावरा, ढांक, खाकरा आदि स्थानीय पौधों से प्राप्त फूलों से बनाया जाने वाला एक विशेष आकर्षक रंग रहा जो मेवाड़ के चित्रों में अधिक प्रयुक्त हुआ है। हरताल रंग दो प्रकार का होता है ! प्रथम **तनकिया** हरताल दूसरा **गौदंती हरताल** इसी तरह में गाय को नीम की पत्ती खिलाकर पीली मिट्टी पर गोमुत्र करा कर गौगुली को तैयार किया जाता था। अन्य पीले रंगों मे भूरी पीली रामरज एवं अन्य पीली मिट्टी वाले रंगों का विशेष प्रयोग होता रहा है।

सिन्दूरी रंग : मरकरी पत्थर को जला कर पारा अलग करने व भष्मी से **सिन्दूरी रंग** प्राप्त करके उसमें खेरी बम्बूल घोली मूसली व सरेस का प्रयोग आवश्यकतानुमार करके तैयार करने की पद्धति रही है। ऐसी ही रूपहरी सुनहरी व कतीरी (रांगा) से सम्बन्धित **"हले"** बनाने की विधियों का विवेचन इस प्रकार है :

सुनहरी रूपहरी एवं रांगें की हल : सर्वप्रथम स्वच्छ पारदर्शी सरेस या आकेशिया गोन्द के पानी को चीनी मिट्टी या सफेद पत्थर के प्याले सरेस के पानी की कुछ बून्दे डाल दी जाती हैं तत्पश्चात् बर्क को दो या तीन उंगुली में चिपकाकर प्याले में घोटने की क्रिया की जाती है पूरा घोटने पर ऊंगली के दूसरा बर्क चिपका लिया जाता है। इस प्रकार जितना रंग बनाना हो बर्क लेकर घोटते रहें, हल बनाते समय आवश्यकतानुसार पानी या सरेस की बूंद डालते रहते हैं यह जितना मेहनत से घुटेगा उतनी ही बारीक चमकती हुई चांदी सोने या रांगें की हल बन सकेगी।

हल घुट जाने के बाद उसमें पानी मिलाया जाता है इस घोल को बारीक मलमल के कपड़े से छान लिया जाता है, छने हुए घोल को हल्की कोयले की आंच पर गर्म कर लीजिये। पानी

1. रंग निर्माण की उक्त परम्पराएं–भीलवाड़ा के प्रसिद्ध चित्रकार बद्रीलालजी, उदयपूर के घनश्याम शर्मा एवं जयपुर के चित्र चिकित्सक श्री वेदपाल शर्मा (बन्नू जी) के चित्र शाला में आज भी ज्यों की त्यों अपनाई जा रही है।
2. डा. मोतीचन्द्र जैन मिनियेचर पेंटिंग फ्रोम वेस्टर्न इण्डिया पृ. 82

गुनगुना होने पर उसमें चुटकी भर नमक डाल दिया जाय जिससे मेल व सरेस का कोई भी अंश सोने या रूपहले पर नहीं रहने पाये उसे ठण्डा करके जमने दिया जाता है। फिर ऊपर-ऊपर से पानी हटा कर उस हल को नीचे जमने देवें तथा ठण्डी आँच पर उसे सूखने भी दिया जाय फिर कटोरी या प्याले की किनार पर खेरी के गोंद की डली चिपका दी जाती है तथा चित्रण करते समय आवश्यकतानुसार गोंद का पानी मिला कर काम किया जाता है चित्र में हल लगाते समय पहले के लगे रंगों को ओपनी से घोट कर एक जीव कर लिया जाता है (कतीर) शीशे या चांदी की वरक को भी उक्त विधि से ही एक एक करके घोटते हुए रंगें या चांदी की परम्परागत हल बनाई जा सकती है। मुगलकालीन चित्रों मे हल के बजाय पूरीबरक ही आवश्यकतानुसार चित्रण के समय चिपकाने की पद्धति रही है।

रंगों के पात्र हलों को हकीक या कांच के प्याले में रखा जाता है तथा रंगों को मिट्टी के बर्तन या नारियल के खोपरे से प्राप्त सख्त प्याले में रखते थे जिसे स्थानीय शब्दावली में **काचली** सम्बोधित किया जाता है।

मिश्रित रंगों की प्रक्रिया—रंगों का प्रयोग व संयोजन कलाकार की दृष्टि व भावनाओं पर अधिक निर्भर रहता है. मेवाड़ के लघु चित्रों में भावों को कुछ परम्परागत प्रतीकों एवं सिद्धान्तों से से व्यक्त करने का प्रयास किया है। जैसा एक उदाहरण यहाँ उल्लेखित करते हैं : हल्दी व लाल रंग सुहाग का प्रतीत है जो दो तत्त्वों के समन्वय से बनता है। **कुकुम** इसका प्रतिफल है। इसे बनाने के लिए हल्दी को नींबू के रस में बार-बार डालकर हिलावें व कुछ दिन बाद सूखाकर पीसते हैं। नींबू की हल्दी में व्याप्ति के समान ही दाम्पत्य जीवन में प्रेम की प्रगाढ़ता प्रकट करने का प्रतीक कुंकुम है। उसे हींगलू रंग भी कहते हैं। रंगों के ऐसे मनोवैज्ञानिक सम्मिश्रण से मेवाड़ के चित्रकारों ने प्रतीकात्मक रंगों की तकनीकी प्रक्रिया में एक पवित्र भावना स्थापित की है जो इस चित्रशैली के विभिन्न चित्र फलकों में दृष्टव्य है। (चित्र सं 20, 28, 29, 37 एवं 53)

इसी तरह सफेद और लाल रंग की मिलावट से **गोर** रंग बन जाता है। यदि सफेद काला और पीला रंग बराबर मात्रा में मिला लिये जायं तो उनके संयोग से भूरा रंग तैयार हो जाता है। सफेद और काले रंग के समान मिश्रण से गजवर्ण, अर्थात् हाथी के शरीर जैसा काला रंग तैयार हो जाता है यदि समान रूप से लाल और पीला रंग मिला लिया जाय तो बकुल फल मोलश्री के समान। नारंगी रंग तैयार करने हेतु पीला रंग एक भाग और लाल रंग दो भाग मिलाने से यह रंग बन जाता है। उक्त तथ्य मेवाड़ के चित्रों में सर्वत्र दिखाई देते हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे रंगों के मिश्रण से अनेक रंग तैयार किये जा सकते हैं। तरह-तरह के रंग बनाने के लिये सुवर्ण, तांबा, रजत, अभ्रक. राजवंर्द, सिन्दूर, रंगों हरताल चूना, लाख, हिंगलू, और नील आदि अनेकों द्रव्य प्रयोग में लाये जाते रहे हैं।

तुलिका निर्माण
स्थानीय पद्यति

तूलिका का उल्लेख मेवाड़ के प्राचीन संदर्भों में मिलता है। परम्परागत चित्रकारों के लिए रंगाकन की यह एक महत्त्वपूर्ण सामग्री रही है। **समरांगण सूत्रधार** में लेखनी **कुर्चक** के **सूक्ष्म, मध्यम** एवं **स्थूल** किस्मों के प्रकार बताये गये हैं। जिसे वे बकरी, गिलहरी एवं ऊंट के बालों को काटकर पक्षी के पंखों, लोहे या ताम्बे के शंकु की नलियों में डालकर तैयार करते थे। डा० मोतीचन्द्र ने तूलिका हेतु परसियन बिल्ली एवं भैंस के बालों का भी उल्लेख किया है।[1] गिलहरी के बालों से मेवाड़ में तूलिका निर्माण का कार्य प्राचीन काल से होता रहा है। जो होली के बाद एवं वर्षा से पूर्व

1. लेखनी त्रिविधा ज्ञेया स्थूला सूक्ष्मा च मध्यमा तद्दण्ड मृतु मात्रं वा विष्कम्भं षडयवं स्मतम् ॥ शिव रत्न डा. विजेन्द्रनाथ शुक्ल समरांगण सूत्राधार राजनिवेश एवं राजसी कलायें 65

अप्रेल व मई माह में विशेष विधियों द्वारा गिलहरियां पकड़कर जीवित अवस्था में उनके बाल काट-कर धागे में बांध कर तूलिका तैयार करते रहे हैं। बारीक तूलिका हेतु मोर के पंखों की डंडी शंकु में डालकर उच्च श्रेणी की तूलिका बनाई जाती थी। उन्हीं तूलिकाओं को पूरे वर्ष चित्रण कार्य में मोटे पतले एवं बारीक अंकन हेतु प्रयोग में लिया जाता रहा है जिसकी निर्माण पद्धति आज भी नाथद्वारा के चित्रण केन्द्र एवं जयपुर के चित्रकार श्री बन्नू की चित्र शाला में विधिवत उपलब्ध हो सकती है।

मेवाड़ में कागज के प्रचलन से पूर्व ताड़पत्रों पर लेखन एवं चित्रण कार्य करने की प्रथा रही है। 1260 ई० एवं इससे पूर्व मेवाड़ में ताड़पत्रों पर सचित्र ग्रन्थ लिखे गये जिनमें आहड में चित्रित श्रावक **प्रतिक्रमण सूत्त चूर्णि** ताड़ पत्रों पर ही चित्रित हुआ। देखें चित्र सं. 8 अ एवं ब

ताड़पत्र को संस्कृत में ताल पत्र कहते हैं तथा हिन्दी व गुजराती में ताड़ पत्र नाम से सम्बोधित किया जाता है यहां **श्रीताड** एवं **खेरताड़** के रूप में पहचाना जाता है। **श्रीताड** का प्रचलन मद्रास, सिलोन व बंगाल की ओर अधिक रहा है तथा खेरताड़ प्रयाः गुजरात व राजस्थान क्षेत्र के राजपूत रियासतों में प्रचलित था।[1] मुगल आक्रमणकारियों द्वारा इसका प्रयोग करना वर्जित था। यह ताड की छाल 37" × 3" के आकार में चित्रण व लेखन हेतु कार्य में ली जाती थी। मेवाड़ में चित्रित **श्रावक प्रतिक्रमण सूत्त चूर्णि** तथा अन्य कई ग्रन्थों के लेखन में इन ताडों का ही प्रयोग किया है। इस तरह कागज के आविष्कार से सभी ताड़ पत्रों में ही अंकन कार्य मिलता हैं।[2]

कागज पर प्रारम्भिक चित्रण कार्य

भारत में कागज का प्रयोग 327 ई० से ही प्रचलित होने के प्रमाण मिलते हैं।[3] यहाँ चित्रण एवं लेखन कार्यो में इसका अधिक प्रचलन था किन्तु इस काल का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। लेखन एवं चित्रण में इसका प्रयोग 13 वीं सदी पश्चात् ही देखा जाता है। मेवाड़ में इसी काल से ताडपत्रों तथा उनके पश्चात् कागज पर चित्रण कार्य होने लगा। कागज का निर्माण स्थानीय विधियों से मेवाड़ के गोसुन्डा नामक गांव में बाँस एवं सण की लुग्दियों से किया जाता था। उसे धीसुण्डी कागज के नाम से बहीखातों के प्रयोग में लिया जाता था। चित्र निर्माण हेतु इन्हीं कागजों को एक तह पर दूसरी तह मेदे की लेही से चिपकाकर मोटा करने की पद्धति प्रचलित थी जिसे कागज साठना कहते हैं। भारत में प्राचीन काल से ही दोलताबाद के कागदीपुरा के बने कागज प्रचलित रहे हैं इसी तरह दोलताबादी एवं स्पैनी कागजों का भी प्रचलन कालान्तर में हुआ। इन कागजों पर सफेद रंग से जमीन बांधकर चित्र बनाये जाते थे। ये कागज बड़े बड़े आकार के चित्रों हेतु निर्मित किये जाते थे। लगभग 3 × 5 फीट के कागज मेवाड़ में चित्र निर्माण हेतु 1700 ई० से ही प्रयोग में लाये गये हैं। जिन्हें राजप्रासाद संग्रहालय उदयपुर के सुरक्षित चित्रों में देखा जा सकता है। मेवाड़ में सुपासनाह चरियम 1422 ई० का चित्र सम्पुट कागज में चित्रों का प्राचीनतम उदाहरण है देखें चित्र सं. 10 एवं 11।

उक्त साधन सामग्री से यहां के चित्रकारों ने भारतीय परम्परा के अनुरूप चित्रण कार्य किया प्रमाणित होता है चित्रों में **विष्णु धर्मोत्तर पुराण, समरांगण सूत्रधार, चित्र लक्षण, समराइच्च** कहा एवं **कुवलयमाला** कहा में वर्णित चित्र कर्म के सिद्धान्तों का पालन चित्रकारों ने किया है। शास्त्रीय विवेचन में आये आदर्श वाद एवं यथार्थवाद का मेवाड़ के फलक संयोजन में भारतीय परम्परागत कला सिद्धान्तों के अनुरूप निर्वाह हुआ है राजस्थान में यशोधर द्वारा उल्लेखित **षडांग**[4]

---

1. डा. मोतीचन्द्र–जैन मिनियेचर पेंटिग्स फोम वेस्टर्न इण्डिया अहमदाबाद पृ. 93।
2. वही पृ. 69
3. डा. मोतीचन्द्र जैन–मिनियेचर पेंटिग्स फ्रोम वेस्टर्न इण्डिया अहमदाबाद 1949 पृ. 70-71।
4. अवनिन्द्र नाथ ठाकुर–सम्मेलन पत्रिका हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग पृ. 400
   परसी बाउन–इण्डियन पेंटिग पृ. 2।

के सन्दर्भ एवं आठवीं सदी में लिखित **समराइच्च कहा** एवं **कुवलय माला कहा** जैसे प्राकृत ग्रन्थों में **दट्ठुम** शब्द का प्रयोग चित्र की समीक्षा हेतु हुआ है जिससे इस क्षेत्र की उत्कृष्ठ परम्परा के प्रमाण मिलते हैं। ये चित्र मूल्यांकन की कसौटी के रूप में प्रमुख मानक तथा समीक्षा के आधार थे।[1] पश्चिमी भारतीय चित्रकला से अवतरित होकर मेवाड़ में **राजस्थानी चित्रकला** का विकास इसका पीढ़ी दर-पीढ़ी परम्परागत संदर्भ है। जिनके आधार पर **रूप भेद, प्रमाण एवं भावों** के माधुर्य द्वारा दृश्यात्मक गतिविधान, वातावरण एवं मानव मन की स्थितियों को इस भू-खण्ड में विभिन्न प्रकार से चित्रित किया है।

स्थानीय शब्दयुक्त योजनायें

उपरोक्त सामग्री के कई तकनीकी आधार पीढ़ी दर पीढ़ी प्रचलित रहे जिन्हें यहां के चित्रकारों ने स्थानीय शब्दावलियों में अपने अनुभव द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाया जिससे चित्र की चित्रोपम विशेषताओं से लेकर चित्र की भावात्मक अभिव्यक्ति तक के सभी तथ्यपूर्ण विचारों एवं गुणों को इन स्थानीय शब्दावलियों में बांधा है। चित्रकारों ने उनकी कृतियों की आलोचना, एवं समालोचना के समय चित्र को परखने हेतु ये शब्दावलियां मूल कसौटी रही है। जिन्हें चित्रकार अपने अनुभवों एवं शास्त्रीय प्रमाणों अनुसार निश्चित सूत्रों में काव्यबद्ध करते रहे हैं। ये चित्र मेवाड़ के प्राचीन चित्रकारों की विद्वत्ता के सूचक हैं। परम्परागत चित्र शैलियों में चित्रण कार्य स्थानीय शब्दावलियों मुहावरों, उक्तियों, श्लोकों तथा दोहों के रूप में मिलते हैं। इनमें चित्रण अभिप्रायों और चित्रण पद्धतियों का विश्लेषण किया है। ऐसे कई आधार प्राचीन ग्रंथों एवं मेवाड के चित्रकार घरानों से उपलब्ध हुए हैं। इन स्थानीय शब्दयुक्त योजनाओं के दो आधार हैं।

1. **शास्त्रोक्त उक्तियां** एवं श्लोक जो प्राचीन ग्रंथों से प्राप्त हैं।
2. **मौलिक मुहावरे युक्त योजनाएें**, जो अनुभव से विकसित हुये थे।

ऐतिहासिक तथ्यों एवं स्थानीय अनुभवों में इस प्रकार की उक्तियाँ अब तक परंपरागत चित्रकारों के घरानों में देखी जाती हैं।

"हाथ, हाथी और घोड़ा, और थोड़ा थोड़ा।"

यह उक्ति मेवाड के सीखने वाले कला छात्रों हेतु प्रयुक्त रही है जिसमें मूल सिद्धांतों का अध्ययन छिपा हुआ है। यहां हाथ से केवल हाथ की आकृति के अभ्यास मात्र का संबंध नहीं अपितु हाथों में जो सरल रेखाओं के छोटे एवं बडे घुमाव हैं उसका सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण एवं अभ्यास होता है। हाथी के अंकन में अप्रत्यक्ष रूप से बडी घुमावदार सुदृड एवं सशक्त रेखाओं को अंकित किया जाने की क्षमता तथा हाथी के अंग प्रत्यागों से अनुपात एवं संतुलन का ध्यान रखते हुए चित्रण कार्य करने की पद्धति, जो चित्रकार में धैर्य एवं दक्षता को प्रकट करे वे हाथी की क्रियाओं के अनुरूप होती है। अन्तिम शब्द घोड़ा, जो प्रत्येक चित्रकार में अनुपातिक अंकन एवं अभ्यास की दक्षता परखने का मानदण्ड है। वास्तव में सीधे व घुमावदार रेखांकन घोडे के अंकन की प्रकृति तथा प्रवाह पूर्ण रेखाओं का अभ्यास एक सफल चित्रकार के लिये अति आवश्यक है जिससे उसे सभी आकारों के अंकन का विधिवत अभ्यास हो जाता है। इनके अतिरिक्त उसे थोडी-थोडी सभी चित्रण इकाइयों, उनके अभिप्रायों व प्रतीकों को अंकन करने वाली सामग्री की जानकारी हो जाती है। इसमें मानव, पशु, पक्षी, पेड व पौधों के संयोजन को विधिवत समझ लेवें तो एक सफल चित्रकार की योग्यता आ जाती है।

---

1. रेहा ठाणय भावेहं संजुयं वण्ण विरयणा-सारं
जाणामि चितं यम्म णरिन्दं दट्ठुं जाणामि।
डा. प्रेम सुमन जैन-कुवलय माला एक सांस्कृनिक अध्ययन पृ 295।

इस उक्ति से कला सिद्धांतों की एक कुशल परंपरा इस चित्रशैली में दिखाई देती है । इसी के समरूप दूसरी उक्ति का सूत्र भी ऐसी ही सैद्धान्तिक प्रक्रिया पर आधारित है :–

"हाथी, हाथ, ऊँट और घोडा"

हाथी से विशालता का बोध, हाथ से प्रमाण व नाप तोल का ज्ञान, ऊँट से छोटे व बड़े सभी घुमावों का अभ्यास एवं घोड़े से गतिपूर्ण अंकन प्रक्रिया आदि समझने पर ही एक व्यक्ति को चित्रण कार्य के उपयुक्त माना जा सकता है । विषय वस्तु की बनावट व अनुपात मात्र के आधार पर रूप-भेद एवं भावों में परिवर्तन के सिद्धान्त कहावतों में भी मिलते हैं जिसका प्रत्येक चित्रकार ध्यान रखता रहा है :–

"पग बड़ो कपूत रो, सर बड़ो सपूत रो ।"

इस कहावत में चित्रकार से मानव आकृति एव अंग प्रत्यंगों के सूक्ष्म ज्ञान तथा उसके अभ्यास की अपेक्षा की जाती है । इसके अनुसार अंकन न करने पर अर्थ का अनर्थ पाते हैं जैसे कपूत या अमानुषी राक्षसी गुणों का अंकन करते समय ही बडे पांव बनाये जायें इसी तरह अच्छे सभ्य एवं महान व्यक्ति का सिर बड़ा बनाया जाय इन उक्त कहावतों एवं उक्तियों में मेवाड़ में चित्रण के ज्ञान की स्वतः पुष्टि होती है जिनके उदाहरण प्रत्यक्ष रूपों में हम यहां के चित्रकारों द्वारा चित्रित कार्यों में मूल्यांकित कर सकते हैं यही नहीं मेवाड के ऐतिहासिक-व्यक्ति चित्रों की भी योजना वीरविनोद आदि ग्रंथों में मिलती है जिसका व्यक्ति चित्रों में उल्लेख किया जा चुका है मेवाड चित्र शैली के प्रारम्भिक केन्द्र आहड एवं चावण्ड के चित्रों का क्रम एवं **निसरदी** के चित्र सम्पुट में 1605 ई. व उनसे पूर्व की प्रक्रिया दर्शाते हैं उदयपुर में **साहीबदीन** एवं **मनोहर** (1628-51 ई.) के उत्कृष्ट चित्रों की परम्परा के अनुकूल लघु चित्रों की परम्परा दिखाई देती है जिसमें सुर्ख लाल, लाजवर्द व हिंगलू रंगों की सीधी सपाट पृष्ठ भूमि अंकित हुई देखते हैं । मानवाकृतियों, पेड पौधों, भवन तथा अन्य अभिप्रायों को चमकीले एवं आकर्षक रंगो में चित्रित करने हेतु प्राथमिक एवं विरोधी रंगों का प्रयोग किया गया है । इनमे पीले के साथ नीले तथा सिन्दुरी के साथ हरे रंग का सुविधानुसार प्रयोग मिलता है । जो इस शैली के तकनीकी पक्ष सम्बन्धित उत्कृष्ट उदाहरण हैं ।

भित्ति चित्रण का तकनीकी पक्ष

भित्ति-चित्रों हेतु जो पृष्ठभूमि तैयार की जाती थी उसमें दीवार की पपड़ियों **लेवड़ों** को पहले उखाड़ दिया जाता तथा चूना लगाकर फिर पलस्तर किया जाता था[1] जिसका अनुपात एक भाग **झींकीं** तथा ढाई भाग **आराईस** मिलाकर दो सूत मोटी तीन तहों में लगाया जाता था । पहली तह हेतु दही एवं गुड़ को मिलाकर लगाया जाता, दूसरी तह में केवल प्लास्तर तथा तीसरी तह में खाली दही प्लास्तर के साथ घोल कर लगा देते तथा उसको मस्तर (दीवार बनाने के औजार) से घुटाई कर देते थे । यह दीवार प्रायः बरसात में तैयार की जाती थी । चार पाँच माह के भीतर सर्दी के मौसम में चित्रण कार्य किया जाता था । चित्रण के पूर्व गीले कपड़ों से दीवार में नमी दी जाती थी । पानी छिडकने पर जब बूँद दीवार पर ठहरने लगे तब दीवार को चित्रण के अनुकूल माना जाता था । दीवार पर कागज के कसरे द्वारा जल्द से जल्द अक्सी करली जाती थी । भित्तिचित्रों के निर्माण में मुख्य रंग जो प्रयोग में लिये जाते हैं उनमें प्यावडी, पीली मिट्टी, हरा पत्थर, हींगलू, काला, कांटी, देशी नील आदि को घोट-घोट कर एक जीव करके चित्र का चित्रण किया जाता था । मेवाड़ में दो प्रकार के भित्ति चित्र मिले है 1–घुटाई के भित्ति चित्र तथा 2 -सूखी दीवार पर अंकित भित्ति चित्र । घुटाई के भित्ति चित्र प्रायः मोटी जींकी में प्लास्तर करके गीली परत पर स्फूर्त रेखांकन से बने इनका विस्तृत विवेचन अध्याय चार के भित्ति चित्रों में कर दिया गया है जिनमें उक्त सभी तकनीकों का विधिवत प्रचलन दिखाई देता है ।

---

1. इ. बी. हेवेल— द आर्ट हेरीटेज आफ इण्डिया पृ. 31 ।

लघु चित्र की चित्रण प्रक्रिया

परम्परागत मेवाड़ चित्र शैली के लघु चित्रों में फलक संयोजन को दो भागों में विभाजित किया गया है। पहले किनारे का ग्राकार तथा दूसरा मध्य का ग्राकार। किनारें प्रायः नारंगी व लाल हींगलू रंग से लगभग एक व डेढ इंच की चौडाई में चित्रित की जाती थी। यह दृष्टि केन्द्रित करके दर्शक की दृष्टि को चित्र में भली भाँति बांधने में समर्थ होती हैं। प्राचीन चित्रों में इस बाह्य लाल व नारंगी सीमा रेखा का ग्रंकन स्थान-स्थान पर सफेद पृष्ठभूमि में भी ग्रच्छा समन्वय स्थापित करता दिखाई देता है। ये चित्र बड़े ग्राकारों में इसी पद्धति में निर्मित हुये हैं। जिनमें देशी पत्थर एवं खनिज रंगों से देशी कागजों का चित्र निर्माण हेतु प्रयोग किया गया है। चित्रकार कागज को सर्व प्रथम वसली पर जमा कर चित्रण कार्य करता था। वसली बनाने हेतु एक पाटिये पर देशी कागज की एक परत पर दूसरी परत, ग्राटे की लेही से चिपकाकर बनाते थे। उसमें जितने कागज ग्रधिक जोडे जाते उतनी ही मोटी **वसली** बन जाती थी। जो पटलियां जैसी मोटी तक बनाई जाती थी। इस पर चित्रकार सर्वप्रथम कसरा करके ग्रपने विचारों विषय वस्तु को साकार रूप में ग्रंकन कार्य करता था जिसके पीछे उसकी साधना, चिंतन, विचार एवं कल्पनायें चित्र-संयोजन में प्रभाव पूर्ण होती थी। उनका ग्रंकन करके **ग्रक्षी-कागज** पर जो हिरन की पतली खाल से बनाया जाता था रेखांकन कर लेता था जिसमें पुनर्ग्रंकन से **साठें हुये कागज पर टिपाई** करके हल्के रंग का रेखांकन कर दिया जाता तथा तत्पश्चात् सफेद रंग से पूरे चित्र-फलक पर ग्रस्तर दिया जाता था तात्पर्य तीन बार हल्की हल्की परतों में सफेदा किया जाता तथा ग्रस्तर देने के बाद **सच्ची टिपाई** में मुख्य रेखाएें एवं रंगों के संयोजन का कार्य पूरा किया जाता था। तत्पश्चात् उसे **घोंटी** पेपर वेट जैसे पारदर्शी पत्थर से घुटाई करके पूरी सतह पर चमक लाई जाती थी। फिर ग्रंग-प्रत्यंग की बारीक रेखाग्रों के ग्रंकन से खुलाई की जाती। **मोती मुहावरा** के रूप ग्राकृतियों में **मेहन्दी, ग्राभूषण की चमक व ग्रांख की ललाई** ग्रादि का सूक्ष्म ग्रंकन होता था। तत्पश्चात् **जीगा-ग्रोढना** नाम से पारदर्शी कपड़ों पर वेल बूंटों बिन्दियों एवं कपड़ों के ग्रान्तरिक एवं ऊपरी प्रभाव को दर्शाया जाता था। ग्रन्त में पटिये पर जमाकर **वसली** की जाती एवं **नवकासी** तथ **खतकसी हांसिया** हिंगलू के लाल रंग से तथा उसमें एक सूत मोटी रेखा के पास दो बारीक रेखाएें खींच कर पूर्णता दी जाती थी, जो मेवाड़ चित्र शैली के सभी चित्रों में प्रयुक्त है। उसके ऊपरी भाग पर दोहा श्लोक ग्रादि की पंक्ति लिख देते थे। इस पर भी एक ग्रन्य कार्य सुनहरे व रूपहले रंगों में प्रयोग, चित्र की चमक लाने हेतु किया जाता था। तभी उसे पूर्ण चित्र की संज्ञा दी जाती थी।

परम्परागत कला के ये तकनीकी विधि विधान हमें मेवाड़ के कई चित्रण केन्द्रों में देखने को मिलते है इनमें उक्त रंगों के निर्माण की ग्रपनी-ग्रपनी चित्रण पद्धतियों को प्रयोग कर के ही समझा जा सकता है इनमें उदयपुर के श्री घनश्याम शर्मा नाथद्वारा में रेवा शंकरजी, भीलवाड़ा में श्री बद्रीलालजी तथा जयपुर में श्री कृपालसिंह शेखावत एवं श्री वेदपाल शर्मा की चित्रशालाग्रों में ये बहुमूल्य साधन-सामग्रियां प्राचीन चित्रों की चिकित्सा एव चित्रण कार्य हेतु ग्राज भी विशेष महत्त्व रखती हैं।

परम्परागत कला के तकनीकी प्रेरक तत्व

मेवाड़ में प्रारम्भिक गुर्जर प्रभाव काल से ही चित्रों में नाक, ग्राँख, ठुड्डी एवं पहनावे का सरल ग्रंकन जैन चित्रों एवं गुर्जर कला में विकसित पाते हैं। इनमें लयबद्ध रेखाग्रों में ग्रंकित पशु, पक्षी. पेड़, पत्तियां, फल-फूल ग्रादि का कलात्मक सरलीकरण, नारी चित्रों के पहनावे में सादगी एवं ग्रन्य सरलीकृत ग्राकृतियां तत्कालीन चित्रण-परम्परा में ग्राधुनिक रूपों एवं विरूपन को व्यक्त करती हैं। इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक युग में चित्रकला का स्वरूप चित्रकार की निजी बौद्धिक सूझ-बूझ पर निर्भर रहा है रंगों में भी भिन्न-भिन्न प्रकार की रंग-श्रेणियाँ एवं झांइयों का प्रयोग है। ग्राकारों एवं स्थान सम्बन्धित चित्रण में ग्रध्ययन—ग्रध्यापन के साथ ही रेखा, रंग, रूप एवं संयोजन का

विश्लेषणात्मक प्रयोग प्राचीन परम्परागत चित्रों में विशेषतः मेवाड़ चित्र-शैली में सन्तुलित ढंग से किया गया है। यही मेवाड़ के परम्परागत चित्रकारों की कुशल सूझ-बूझ का प्रतीक है।

उपर्युक्त महत्त्व यहाँ के चित्र निर्माण की प्रारम्भिक पृष्ठभूमि से ही शास्त्रीय चित्रण पद्धति के रूप में देखा जा सकता है जो ग्यारहवीं सदी में लिखित यशोधर के काम सूत्र टीका में वात्सायन के षडांग[1] पर आधारित रहा हैं।

मेवाड़ चित्र शैली के चित्र इस परम्परागत सिद्धान्तों की कसौटी पर खरे उतरते हैं। चित्रण के ऐसे कई परम्परागत नियम पूर्वी एवं पश्चिमी देशों मे कला के मापदण्ड स्वरूप निश्चित किये गये थे। ये परम्परागत चित्रोपम प्रतिमान एक पीढ़ी स दूसरी पीढ़ी में मापदण्ड के रूप में अवतरित होते रहे हैं। ऐसे कई नये तकनीकी प्रतिमान मेवाड़ के परम्परागत चित्रों में द्रष्टव्य हैं।

मेवाड़ चित्र-शैली में चित्र संयोजन के साथ आत्मिक सात्विकता के आधार पर शृंगारिक एवं रीतिकालीन राग-रागिनियों का चित्रण हुआ है उनमें भो वही सात्विक कौमार्य भाव है जिन्हें दर्शक ईश्वरीय गुणों के अनुरूप मान लेता है। यह इस चित्र-शैली के चित्रों की मनोवैज्ञानिक + संयोजन प्रणाली की विशेषता है। मेवाड़ चित्र-शैली की इन्हीं गतिपूर्ण क्रियाओं ने प्राचीन अवशेषों की ओर आधुनिक चित्रकारों का ध्यान आकृष्ट किया है जो प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में वातावरण का प्रभाव है। इसे चित्रण के वर्णविन्यास एवं तकनीकी आधार पर देश-विदेश के चित्रकारों ने तन्मयता से अर्जित किया है।

चित्रकार तकनीक एवं बौद्धिक सूजबूझ

नवीनताओं के साथ-साथ कई आकारों में विरूपन, रेखाओं में गति, रंगों में सौम्यता, रूपों में धार्मिक, सामाजिक और दार्शनिक पक्ष, संयोजन में कुशाग्र-बुद्धि तथा टेक्सचर के लिये बिन्दु, बेल-बूंटे आदि का प्रयोग किया है। जिसे आज हम तूलिका के संचालन में दिखाकर चित्र में मौलिकता की संज्ञा देते हैं किन्तु अब धीरे-धीरे यही परम्परागत सूक्ष्म अंकन, आधुनिक चित्रण में टेक्सचर के रूप में फिर अपनाया जा रहा है। अब वह बेल-बूंटों से नहीं तो किसी और इकाइयों में ही हमें इन चित्रों के परम्परागत रूपों में स्पष्ट दिखाई देता है। यही वातावरण चित्रकार को उपलब्ध कराने पर चित्रकला में जो चिन्तन और मनन का महत्त्व बढ़ता जा रहा है यह भी परम्परा से प्राप्त तत्वों पर ही आधारित है। हाल ही में यह नवीन रूप अमेरिका में कंसेप्चुएल-आर्ट के रूप में विकसित हो रहा है। यह भारतीयता की देन रही है। जिसमें आध्यात्मिक-भौतिक अभ्युदय चित्रित करना मात्र उद्देश्य है। चित्रकार, प्रथम योगी होता है क्योंकि योगी द्वारा ही प्रतिमा के ब्रह्म का चिन्तन कर आत्मा में निश्चित आकारों को दृष्टिगत कर सकता है। किन्तु दूसरा पक्ष विशाल समाज का है, जो योगी नहीं है उसके सम्मुख किसी परिकल्पना को निश्चित रूप देना आवश्यक समझ कर चित्रण की एक परिपाटी बनी है। अतः आधुनिक हम चिन्तन को जन सामान्य से अलग न कहकर परम्परा की देन ही कहें तो उचित नहीं होगा।

मानवीय अन्तःप्रेरणा एवं प्रज्ञा

परम्परागत कलाओं में मानव स्वभाव व उसकी अभिव्यक्ति चित्रण का मुख्य केन्द्र रही जिसमें चित्रकार की भावात्मकता, अन्तःप्रेरणा एवं कुशाग्र बुद्धि का उचित परिचय मिलता है। चित्रों में विषयवस्तु को अधिक महत्त्व दिया है जिसमें धार्मिक, ऐतिहासिक एवं दरबारी जन जीवन के साथ साथ राग रागनियों व नायक-नायिकाओं के रति सम्बन्ध एवं सामाजिक रीति-रिवाजों को अधिक स्पष्ट रूपों में दर्शाया है। परम्परागत पहनावा व रहन-सहन भी आधुनिक जन-जीवन में अपनाया गया, जिसे हम आधुनिक कहते हैं वे कपड़े, केश-विन्यास का पहनाव, जूड़ा बनाना आदि परम्परा को नये ढंग से

---

1. रूप भेदा प्रमाणानि भाव लावण्ययोजनम्।
साहृष्य वर्णिका भंग इति चित्र षडगकम्।। यशोधर रचित काम सूत्र टीका से।

अपनाना मात्र ही है ये अजन्ता के भित्ति चित्रों में डेढ़ हजार वर्ष पहले चित्रित हो चुके थे, तत्पश्चात ग्यारहवी से 17 वीं सदी तक के सभी परम्परागत गुर्जर, जैन, मेवाड़, माण्डू व मालवा शैली में ऐसे प्रतिमान निश्चित हुए जो विषय को छोड़ कर सभी चित्रण तत्त्व आधुनिक कला एवं जन-जीवन में अपनाये जारहे हैं।

भारतीय चित्रण परम्परा अपने कुछ विशिष्ट उद्देश्यों को लेकर अब तक एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक प्रवाहित होती रही है। जिनके उल्लेख हमें विष्णुधर्मोत्तर पुराण, अपराजितपृच्छा, अभिलषितार्थ चिन्तामणी, शिल्परत्न, समरांगण सूत्रधारा, चित्रलक्षणा आदि प्राचीन ग्रन्थों में मिलते है। जिनके कला पक्ष तथा भाव पक्ष दोनों ही आधुनिक चित्रकला में निर्वाहित हो चुके हैं। जिनसे इस चित्रशैली में प्रचलित शब्दयुक्त योजनाओं के आधार स्पष्ट होते है।

इन चित्रों के विश्लेषण एवं संश्लेषण में अब अध्ययन की नई सम्भावनाएं प्रारम्भ हो रही है ये चित्रण में नित नवीन प्रयोगों के साथ मिलते हैं। जिनमें मूलभूत तत्त्व एवं गतियों का अध्ययन, द्विविधा विस्तार में फलक एवं फलकीय गतियों का अध्ययन हैं, साथ ही दृश्यात्मक गति विधान रंगों में प्रमेय-सिद्धांत, रंगीयफलक, विषयात्मक प्रतीक रंगों का अध्ययन आदि सभी नई उपलब्धियां मेवाड़ प्रदेश की चित्रकला में स्पष्ट प्रतिपादित होती है। यदि इनका गहराई से उचित विश्लेषण एवं संश्लेषण के साथ अभ्यास किया जाय तो आधुनिक चित्रकला के अध्ययन एवं प्रयोगों का ध्येय परम्परा को नये भारतीयकरण के साथ जोड़ कर उनसे नवीन अपेक्षाएं करना सम्भव होगा।

चित्रों के इस कलावादी विश्लेषण से आधुनिक चित्रकला के सभी सिद्धान्तों एवं परम्परागत चित्रकारों की मौलिक सूझ-बूझ में समन्वय स्थापित होता है। परम्परागत शास्त्रीय एवं सैद्धान्तिक अध्ययन मेवाड़ चित्रशैली के कई चित्रों में हुआ है जो परम्परागत चित्रण विधान को देखने की एक दृष्टि देते हैं साथ ही उस काल की कला में चित्र निर्माण के शास्त्रीय आधार रहे हैं।

परम्परागत मेवाड़ चित्र-शैली के ये सभी प्रेरक-तत्त्व इस चित्र शैली के कलावादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हैं। कला शिक्षा की भूमिका में ये ही तत्त्व भारतीय चित्रकला के विकास में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। □

8. मेवाड़ के प्रमुख चित्रकार

भारतीय संस्कृति में प्राचीनकाल से चित्रकारों के नामोल्लेख की प्रथा नहीं थी, यही बात मेवाड़ के चित्रकारों में भी देखी जाती हैं। यहां भी आश्रयदाताओं के उल्लेख मात्र चित्रों में मिलते हैं, चित्रकारों के नामोल्लेख बहुत कम। **साहित्य, शिल्पावशेषों, शिलालेखों** तथा **सचित्र ग्रन्थों** से जिन प्रमुख शिल्पी एवं चित्रकारों के उल्लेख मेवाड़ में प्राप्त हो पाये हैं उनका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है:—

चित्रकार शृंगधर का उल्लेख सातवीं सदी के कला सन्दर्भों में मिलता है उनके शैलीगत आधार मेवाड़ एवं दक्षिणी पश्चिमी राजस्थान के कला केन्द्रों में **मरु गुर्जर** या **गुर्जर शैली** के कला अवशेषों में पाये जाते है। उनके द्वारा प्रतिपादित **यक्षशैली** अति प्रसिद्ध रही है लामा तारानाथ ने इन्हें मरु देश के **राजा शील** के शासनकाल में होना बताया है।[1] मेवाड़ में गुहिल शिलादित्य (646 ई.) कालीन कई सुन्दर प्रतिमाऐं मिली है जिससे भी कहा जा सकता है कि आचार्य शृंगधर इसी भू-भाग में हुए थे।[2] इस पर विस्तृत विवेचन लामा तारानाथ ने किया है। मेवाड़ में पश्चिमी विद्यापीठ शैली एवं पश्चिमी भारत शैली का विकास यहीं से देखा जाता है। **कल्याणपुर का शिवमन्दिर** एवं अन्य प्रतिमाओं से यह सिद्ध किया जा सकता है कि सातवीं सदी में इस क्षेत्र में जो कृतियां बनी उनकी एक उन्नत, कलात्मक पृष्ठभूमि रही है इनकी शैलीगत विशेषताओं में नारी व पुरुषों के अंग प्रत्यंगों पोशाक व केश सज्जा का सुन्दर अंकन था। इस शैली के चित्रावशेष प्रायः नष्ट हो चुके हैं अतः मूर्ति कला में ही इस काल की कला के प्रमाण स्पष्ट देखे जा सकते हैं। इनमें शिल्पी शिवनाग 686 ई. के उल्लेख एवं उनकी ब्रोंज प्रतिमाओं में मिले है[3] जो उस काल की उत्कृष्ट कला परम्परा के पुष्ट प्रमाण हैं

चित्रमति एवं भूषण:—ये आठवी सदी के कुशल व्यक्ति चित्रकार थे जिनका उल्लेख चित्तौड़गढ़ में लिखे हरिभद्रसूरि कृत **समराइच्चकहा** के कला सन्दर्भों में मिलता है[4] इनका प्रसंग शंख-पुर के राजा की कन्या रत्नावली के वर को चित्रित कर लाने के सम्बन्ध में है इन दोनों चितेरों ने राजकुमार गुणचन्द्र का चित्र बनाया साथ ही राजकुमारी का व्यक्ति चित्र बनाकर भी ले गये राज-

---

1. पर्सी ब्राउन— द हेरीटेज ऑफ इण्डिया— इण्डियद पेंटिंग, पृष्ठ 41।
   इण्डियन एन्टी क्वेरी वोल्यूम 4 पृ. 101, मुल्कराज आनन्द— एल बम ओफ इण्डियन पेंटिंग पृ. 56।
2. रा. व. सोमानी— हिस्ट्री ऑफ मेवाड़, पृष्ठ 38।
3. उमाकान्त पी. शाह–ललित कला, ललित कला अकादमी नई दिल्ली (अप्रेल 55 मार्च 1956 ई.) भाग 1,2 पृ. 55।
4. जंपियं चित्तमइणा। अरे भूसणय दिट्ठं तऐ अच्छ रियं। तेण भणियं सुट्ठु दिट्ठं कि तु विसणो अहं। (अष्ठमभव)
   हर्मन जेको[illegible]—हरिभद्रसुरि कृत समराइच्चकहा, कलकत्ता 1926 पृ. 606।

कुमार ने जब व्यक्ति चित्र देखे तो आश्चर्य चकित हो गये, वह स्वयं भी चित्रकार था उसने जब राजकुमारी का उन्मुक्त योवन झलकता सुन्दर चित्र देखा तो असम्भव को सम्भव करने वाले इन वास्तविकता वादी चित्रकार चित्र मति एवं भूषण को उसने सम्मानित कर उन्हें एक लाख दीनार **दीनार लक्खो** पुरष्कार में दिया जिसका विवेचन द्वितीय अध्याय में किया जा चुका हैं । इन साहित्यिक सन्दर्भों से यह स्पष्ट विदित होता है कि उस काल में इस क्षेत्र की कला अपनी चरमसीमा पर थी विकसित तत्कालीन भारतीय परिवेश में अजन्ता, एलोरा आदि गुहा की भांति यहीं प्रसार इस भूखण्ड के तत्कालीन कला अवशेषों में भी हम चित्तौड़गढ़ पर स्थित **कालिकामाता मन्दिर** के शिल्प में देख सकते है । साथ ही उक्त उल्लेखों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि उस काल में कई अच्छे चित्रकार चित्तौड़ में विद्यमान थे । चित्रकारों के सचित्र प्रमाणिक उल्लेख हमें मेवाड़ में 1229 ई. से ही प्राप्त होते है ।

श्रीधर पुत्र सुत्रधार जयतुक––मेवाड़ में चित्तौड़गढ़ के समिद्धेश्वर महादेव मन्दिर के खम्बों पर शिलालेख सहित है 1229 ई. (संवत् 1286)के उत्कीर्ण रेखांकन प्राप्त हुए जिससे यह स्पष्ट होता है कि चित्तौड़में प्रसिद्ध शिल्पी एवं चित्रकारों की प्राचीन परम्परा में जयतुक के पिता श्रीधर का भी साथ में उल्लेख उनके परिवार की समृद्धि का सूचक है सूत्रधार **जयतुक** का खम्वे पर वह शिलालेख की पंक्तियों[1] के नीचे '**हाथ जोड़े खड़ी मानवाकृति**'' के रूप में अंकित है । इनके रेखांकन में पश्चिमी भारत शैली का पूर्ण प्रभाव है जो इसके बाद में निर्मित "**श्रावक प्रतिक्रमण सुत्त चूर्णी**" 1260 ई. के सचित्र ग्रन्थ में पाये जाते हैं । यह मेवाड़ के प्रथम शिल्पी चित्रकार थे जिनका तिथियुक्त रेखांकत मिलता है चित्तौड़ उस काल में कला का केन्द्र था चित्र संख्या 6 से इसकी विधिवत् पुष्टि होती हैं ।

सूत्रधार आल पुत्र माऊकी—समिद्धेश्वर महादेव मन्दिर के दूसरे खम्वे पर उत्कीर्ण रेखांकन 1229 ई के आलेख में "सूत्र० आल पुत्र (?) माऊकी" यहां खम्वे में छेद होने से एक अक्षर मिटने का भी अनुमान किया जा सकता है अतः हम माऊकी नाम का ही सम्बोधन कर रहे हैं ।[2] सूत्रधार माऊकी उस काल के प्रमुख शिल्पी एवं चित्रकार थे जो इसमें **हाथजोड़े खड़े अंकित** हैं पीछे बाल बन्धे हुए दिखाये है तथा मुखमुद्रा के नीचे झूलते बालों में दाड़ी की रेखाएँ एवं तत्कालीन पहनाव यहां की प्राचीन समृद्ध परम्परा के सूचक हैं, साथ ही चित्र में अजन्ता एवं एलोरा की चित्रण पद्धति एवं पश्चिमी भारत शैली के मिश्रित रूपों का समन्वय मिलता है । यह चित्र चित्रकार माऊकी की ही तिथियुक्त कृति हैं (चित्र संख्या 7) इससे चित्तौड़ में कई शिल्पी एवं चित्रकारों के होने की पुष्टि होती हैं जिनके कला अवशेष चित्तौड़गढ़ पर निर्मित विभिन्न मन्दिरों एवं प्रासादों मे देखे जा सकते हैं ।

आलेख्यकार कमलचन्द्रः—गुहिल तेजसिंह के राज्य में पण्डित रामचन्द्र के शिष्य थे जो आहड़ में 1260 ई. में चित्रित ताड़पत्रीय ग्रन्थ **श्रावक प्रतिक्रमण सुत्त चूर्णी** के आलेख्यकार थे ।[3] इस ग्रन्थ के छः पृष्ठ बोस्टन संग्रहालय, अमेरिका में सुरक्षित हैं कमलचन्द्र की चित्रण पद्धतिमें तत्कालीन पश्चिमी भारत चित्र शैली का प्रभाव है मेवाड़ की यही प्रारम्भिक चित्रण पद्धति रही है । इसकी विशेषताएँ उक्त चित्रों अनुसार नुकीली नांक, सवाचश्मी चेहरा, आंख पृष्ठभूमि में बाहर निकलती हुई आदि उल्लेखनीय है । ग्रन्थ की पुष्पिका सहित द्वितीय अध्याय पृ. सं. 12 व 13 पर उल्लेखित है तथा चित्र सं. 8 अ एवं ब इसके स्पष्ट उदाहरण है ।

---

1. सम्वत् 1286 वर्षं श्रामण सु । रवो ।
   श्री समधे सूर देव साक्ष्य नसव (?) श्रीधर पुत्र सूत्र. जयतुक सदा, प्रणमति ।
2. सम्मत् 1286 वरीपे श्री समधे
   सूर देव प्रणामते सुत्र (,) आल पुत्र (?) माउकी, नएता। समिध्देश्वर महादेव मन्दिर, चित्तोड़गढ़
   शोध पत्रिका— वर्ष 25, अंक 1, पृष्ठ 53 एवम् लेखक द्वारा– शोध पत्रिका– वर्ष 26, अंक 1 पृष्ठ 66।
3. ईस्टर्न आर्ट, वोल्यूम 2, पृष्ठ 236 एवं शोध पत्रिका–भाग 5, अंक 3, पृष्ठ 46।

आलेख्यकार धनसारः— महाराणा लाखा के राज्यकाल में धनसार 1418 ई. में **कल्पसूत्र** के आलेख्यकार थे इस ग्रन्थ की प्रति मेवाड़ के सोमेश्वर ग्राम (गोडवाड़) में लिखी गयी। धनसार "चित्रावल वीरचन्द्र सुरी" के शिष्य थे। **कल्पसूत्र** की प्रति में चित्रित चित्र 1229 ई एवं 1260 ई. की कला परम्परा का क्रमिक में महत्व पूर्ण प्रमाण हैं जो पश्चिमी भारतीय प्रभाव के साथ हो स्थानीय शैलीगत चित्रण दर्शाते हैं।[1] ये चित्र अनूप संस्कृत पुस्तकालय लालगढ़ बीकानेर में सुरक्षित हैं। जिसका विस्तृत विवेचन इस ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय पृ. सं. 13 एवं 14 में दिया जा चुका है।

आलेख्यकार हीरानन्दः— महाराणा मोकल के राज्यकाल में निर्मित **सुपासनाह चरियम्** 1423 ई. की उल्लेखनीय कृति है।[2] यह ग्रन्थ देलवाड़ा में चित्रित हुआ इसके 36 चित्र प्राप्त हुए जो पाटन संग्रहालय में सुरक्षित है। **हीरानन्द** पंडित भावचंद के शिष्य थे जिनके चित्रों में पश्चिमी भारत शैली के प्रभाव से हटकर मेवाड़ की स्थानीय चित्रण पद्धति की प्रारम्भिक झलक है, जो चित्रित अभिप्रायों एवं रगांकन में दिखाई देती हैं। ग्रन्थ की पुष्पिका एवं चित्रों का उल्लेख अध्याय दो में किया जा चुका है।

आचार्य मण्डन--महाराणा कुम्भा कालीन (1433-1468) ई. प्रमुख शिल्पी एवं शिल्प सिद्धान्तों के निर्माता सूत्रधार मण्डन मेवाड़ के सांस्कृतिक इतिहास में विशेष उल्लेखनीय रहे हैं। भंगोरा गोत्री इनके पिता खेता के गुजरात से आने के उल्लेख मिलते है[3] किन्तु मण्डन का मेवाड़ के सूत्रधार शिल्पियों में ही महत्त्वपूर्ण स्थान था।[4] मण्डन द्वारा निर्मित चित्रावशेष उपलब्ध नहीं हो पाये हैं किन्तु रेखांकन एवं कसरे बिना इतने भव्य मन्दिरों एवं प्रासादों का निर्माण नहीं हो सकता, उन्होंने विभिन्न रेखाचित्रों की रचनाएँ अवश्य की होगी उनके द्वारा रचे रूप मण्डन के चतुर्थ अध्याय श्लोक 65 तथा षष्ठम अध्याय के श्लोक 4 में वर्णित रंगों एवं रेखाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति से उनकी चित्रण क्षमता का अनुमान हो जाता है अतः आचार्य मण्डन न केवल शिल्पी, अपितु एक कुशल चित्रकार भी रहे हैं कुम्भलगढ़ के जैन मन्दिर एवं अन्य प्रासादों में चलने वाली उनकी छेणी एवं शिल्प सिद्धान्तों के कसरे तूलिका से निर्मित आकृतियों से किसी कदर कम नहीं है। कुम्भलगढ़ का जैन मन्दिर इन्हीं की देख रेख में सूत्रधार गोपा एवं नरसी ने 1464 ई. में बनाया।[5] इसी कला प्रेम एवं सूत्रधार मण्डन जैसे शिल्पी कलाकार के कारण ही कुम्भा का काल कलाओं का स्वर्ण युग सम्बोधित किया जाता है। इनके द्वारा रचित राजवल्लभ मण्डन के श्लोक 14।43 से स्पष्ट होता है कि सूत्रधार मण्डन केवल शिल्पी ही नहीं अपितु वास्तुशास्त्रज्ञ एवं शास्त्र प्रणेता भी थे। इसका द्वितीय अध्याय के पृष्ठ सं. 11 एवं 14 मे विस्तृत विवेचन किया गया है।

पं. भीखम चन्द—महाराणा कुम्भा कालीन 1435 ई. के प्रमुख चित्रकार थे जिन्होंने रसिकाष्टक नामक सचित्र ग्रन्थ की रचना में विभिन्न ऋतुओं पर आधारित चित्रों एवं पशुओं का गतिपूर्ण अंकन किया इस ग्रन्थ के 6 पृष्ठ ही उपलब्ध हो पाये हैं चित्र सं. 12 जो तिथियुक्त पुष्पिका सहित

---

1. अगरचन्द नाहटा—आकृति जुलाई, 1976, वर्ष 11, अंक 1 पृष्ठ 11।
2. डॉ. मोतीचन्द्र एण्ड उमाकान्त पी. शाह— न्यू डाक्यूमेंट आन जैन पेंटिग (बम्बई),
   अगरचन्द भंवरलाल नाहटा— कला निधि- अंक 7, पृष्ठ 25।
3. डॉ. रत्न चन्द्र अग्रवाल, सम्मेलन पत्रिका कला अंक पृष्ठ 285-291।
   महाराजाधिराज महाराणा श्री मोकल आदेशात् सूत्रधार।
   मण्डन वेतराकस्य थने गुजरात थी बुलायो अठे ददबार में।
   सीलप शास्त्र भरयो थको सुथार हो नहीं जीसुं थने गुजरात
   थी बुलायो बहुत मेनत सू।   मस 1 प्रत रु 30
4. श्री मद्देशे मेदपाटा भियाने, क्षेत्रारव्योऽभूत् सूत्रधारो वरिष्ठः।
   पुत्रों ज्येष्ठो मण्डनस्तस्य, तेन पोक्तं शास्त्रं मण्डन रूप पूर्वम्॥ 40॥ षष्टम् अध्याय
5. डा. रत्नचन्द्र अग्रवाल— सम्मेलन पत्रिका, वर्ष 44, पृष्ठ 289।
   श्री मेदपाटे नृप कुम्भकर्णस्त दङ-धिराजी वपराग सेवी।
   स मण्डनाख्यो भुवि सूत्र धारस्ते नोद्धृतो भूपतिवल्लभो ऽयम्॥ राज वल्लभ. मण्डन 14/43

श्रीअगरचन्द नाहटा संग्रह बीकानेर में सुरक्षित है[1] महाराणा कुम्भा कालीन शिल्पावशेषों के मध्य यह एक मात्र सचित्र ग्रन्थ है जो इस चित्रकार का महत्त्वपूर्ण उदाहरण है इस शृंखला में पं. रमीश द्वारा गीतगोविन्द आख्याइका और अन्य उत्कृष्ट चित्रों के निर्माण में प. भीखमचन्द्र की कला परम्परा का प्रभाव विशेष उल्लेखनीय रहा है। इनका विस्तृत विवेचन द्वितीय अध्याय के पृष्ठ 14 पर किया गया है।

पं. रमीश—1455 ई. के लगभग कुम्भलगढ़ के निकट गोगुन्दा के विष्णु मन्दिर एवं वैष्णव भक्ति की परम्परा में सचित्र **"गीत गोविन्द आख्याइका"** नामक ग्रन्थ निर्मित हुआ, इसमें **लिपि पं. रमीश** के उल्लेख से सम्भवत चित्रण कार्य पं. रमीश ने ही किया। मेवाड़ में इन चित्रों की आकृतियां मोटे आकारों रेखाओं एवं तेज रंगों से चित्रित अभिप्रायों से प्राचीन तिथियुक्त चित्रों एवं चोरपंच-शिका समूही चित्रों के स्थान निर्धारित करने में इन चित्रों से एक महत्त्वपूर्ण भूमिका बनती है यह ग्रन्थ संस्कृत मिश्रित राजस्थानी में है इसके केवल तीन पृष्ठ ही देखने में आये हैं देखें चित्र संख्या 13 अ, ब, स एवं द जिनका विस्तृत विवेचन भी पृष्ठ संख्या 15 पर दिया गया है मेवाड़ के शैलीगत चित्रों में पं. रमीश के ये चित्र अपना महत्त्व पूर्ण स्थान रखते है।

कीरत दास—1545 ई. के लगभग जावर में निर्मित **गीत गोविन्द सार** नामक सचित्र ग्रन्थ में **कीरत दास चतराई चरची** उल्लेख से इन्हें कार्य कुशल चित्रकार भी सम्बोधित किया जा सकता है, जावर, महाराणा कुम्भा की पुत्री रमाबाई का ठिकाना था जहाँ के शिल्पावशेषों में सूत्र-धार मण्डन के छोटे पुत्र ईश्वर की समृद्ध शिल्प परम्परा के वातावरण में कीरत दास ने गीत गोविन्द सार के 30 पृष्ठों को रचा जिस में राधा व कृष्ण की प्रेम क्रीड़ाओं एवं बारह अवतारों को चित्र सं. 15 अ, ब, स में आकर्षक संयोजन किया, चित्र सम्पुट राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में सुरक्षित है इसका विस्तृत विवेचन इस ग्रन्थ के पृष्ठ 15 पर दिया जा चुका है।

सा. नाना एवं सा. मीठाराम—दक्षिणी पश्चिमी राजस्थान में महाराणा कुम्भा कालीन विकसित वैष्णव परम्परा का क्रमिक विकास एवं **गीत गोविन्द आख्याइका** की ही विकसित कला परम्परा इस क्षेत्र में **भागवत पुराण** के चित्र सम्पुटों में मिलती है उनमें दो सम्पुटों पर **सा. नाना** व **सा. मीठा राम** के उल्लेख मिलते हैं तीसरा अनामीय है जो माधुरी देसाई संग्रह बम्बई में संग्रहित हैं ये विभिन्न संग्रहालयों में बिखरे हुए हैं किन्तु सुरक्षित हैं ये सभी 1500 से 1580 ई. के लगभग चित्रित हुए है, चित्रों का परीक्षण किया जाय तो सा. मीठाराम के चित्रों में वन उपवन एवं पशु पक्षी का अपना अलग ही सौन्दर्य है जबकि सा. नाना के चित्रों में तड़क-भड़क रंगों में आकृतियों भवनों एवं प्रासादों के संयोजन सहित हैं। चित्रण कार्य में भिन्नता देखने पर सा. से शाह शाहजी या संग्रहकर्त्ता के[2] स्थान पर साधक, साध या साधु, चित्रकार भी माना जा सकता है। संग्रहकर्त्ता का शैलीगत भिन्नता से इतना अधिक सम्बन्ध नहीं हो सकता साथ ही पुष्पिका के ही साथ में से नाम भी उसी लिपि में मिलते है इन तथ्यों से इन्हें चित्रकार मानना उपयुक्त होगा। (चित्र संख्या 17, 18, 19, 20 अ) तथा सा. नाना एवं सा. मीठाराम के चित्र न केवल भारतीय लघु चित्रों में उत्कृष्ट हैं अपितु विश्व चित्रकला जगत में अपना उच्च स्थान बनाते हैं[3] ये कुलेहदार समूही चित्रों के अन्तर्गत लिये जाते है जिनका विस्तृत विवेचन इस ग्रन्थमें चित्रों के विश्लेषणात्मक अध्ययन पृ सं 69 से 74 एवं द्वितीय अध्याय में पृ. 12 से 15 के मध्य देखा जा सकता है।

1, सम्वत् 1492 वर्षं आषाढ़ सुद गुरो श्री मेदपाट देशे श्री पं. भीखमचन्द रचिन चित्र रसिकाष्टक समाप्तम् श्री कुम्मकर्ण आदेशात।
2. काले जे खण्डालावाला एवं जगदीश मित्तल - ललित कला, नई दिल्लीवोल्यूम 16 पृ. 1920
3. डगलेख बेरट एवं बेखिलग्रे—पेन्टिग ऑफ इन्डिया पृ. 64।

निशरदी—चावण्ड में चित्रित रागमाला चित्र सम्पुट 1605 ई. के प्रमुख चित्रकार हैं इस चित्रकार के लिये आज तक **निसारुद्दीन** का सम्बोधन विद्वानों ने किया किन्तु चित्रों की पुष्पिका को देखते हुए **निशरदी** शब्द अधिक उपयुक्त है। मेवाड़ की चित्रकला के अन्तर्गत इस चित्रकार ने **रागमाला** का जो चित्रण कार्य किया है उसमें कुलेहदार समूह के चित्रों की उचित परम्परा निर्वाहित हुई है। महाराणा अमरसिंह के राज्यकाल में यह चित्रकार चावण्ड में अपना सृजन कार्य करता रहा। चित्र मरु राग की पुष्पिका चित्र संख्या 26 में संवत् 1662 एवं चाउम्मध्ये उल्लेखित है।[1] इन चित्रों में मेवाड़ के तिथियुक्त चित्रों की शृंखला का अपना निजी शैलीगत रूप पाया है। चित्रों में तत्कालीन कुलेहदार पगड़ी, जामा, पूर्व वृत्त भवनों के रूप एवं अभिप्राय सर्वत्र मिलते हैं, साथ ही इसमें तत्कालीन राजप्रासादों तथा भवनों का अच्छा चित्रण हुआ है। निशरदी द्वारा चित्रित 1605 ई. कीं **रागमाला** में जो मानवाकृतियां अंकित हुई हैं, वे निःसन्देह ही मेवाड़ के पूर्व चित्रित भागवत पुराण के चित्र संख्या 19 **नन्द की विदाई** में चित्रित नारी की मुख मुद्रा तथा चित्र संख्वा 26 **दीपकराग** की मुखाकृति में शैलीगत ही नहीं अपितु चैत्रिक समानता भी ज्यों की त्यों मिलती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि निशरदी का रचना काल चित्र पुष्पिका में अंकित तिथि से पूर्व का रहा है इनमें संवत 1662 के अस्पष्ट अंकों को प्रसिद्ध कला समीक्षक श्री प्रमोदचन्द सही नहीं मान कर चित्रों को इससे पूर्व निर्मित मानते है[2] इससे भागवत् के चित्रों की समानता वाली मान्यता को बल मिलता है।

साहीबदीन—उदयपुर राजधानी स्थापित होने पश्चात् साहीबदीन की महत्त्वपूर्ण भूमिका मेवाड़ चित्रशैली में रही है। उन्होंने असंख्य चित्रों का निर्माण कर इस शैली के चित्रों की अभिवृद्धि में विशेष योग दिया तथा **रागमाला, गीत गोविन्द,** रसिक प्रिया, **भागवत** एवं **रामायण** के महत्त्वपूर्ण चित्र सम्पुटों की रचना की। **रागमाला** के चित्रों का चित्रण कार्य उनकी एक बड़ी देन रही है महाराणा जगतसिंह प्रथम के राज्य काल में साहीबदीन एक श्रेष्ठ एवं कुशल चित्रकार थे। इनके द्वारा चित्रित 1628 ई. की रागमाला के चित्र मारुराग चित्र संख्या 27 में इनका स्पष्ट उल्लेख है।[3] तथा उनके द्वारा चित्रित **भागवतपुराण** चित्र सम्पुट 1648 ई. ओरियन्ट इन्स्टीट्यूट पूना तथा **रामायण** के विभिन्न चित्र सम्पुट जो ब्रिटिश म्यूजियम लन्दन में सुरक्षित हैं विशेष महत्त्वपूर्ण चित्रों की सामग्री है इन चित्रों में दुबली-पतली कोमल आकृतियों का चित्रण किया गया हैं तथा यही परम्परा चित्रकार मनोहर के चित्रों में भी मिलती है जो इनके सहयोगी चित्रकार थे प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान उदयपुर में सुरक्षित **आर्ष रामायण** में दोनों ने सम्मिलित चित्रण कार्य किया हैं। **रामायण, शूकर क्षेत्र महात्म्य** के 1655 ई. भ्रमर गीत 1659ई. एवं **सूर-सागर** आदि में सरलीकृत रूपों अभिप्रायों एवं चटकीलें आकर्षक रंगों का प्रयोग उनकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ है उनकी आकृतियों में **रज्मनामा' 'नियामतनामा'** के मुगलकालीन चित्रण प्रारम्भिक पद्धति की शाखट दिखाई देती है। जीव जन्तुओं प्राकृतिक दृश्यों को बहुत ही सुहावने ढंग से चित्रित किया है। इनके द्वारा चित्रित चित्रों में विभिन्न दृश्यों को एक ही चित्र फलक पर प्रस्तुत करने की परम्परा प्रारम्भ हुई। मेवाड़ चित्र शैली में इस चित्रकार की अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है विस्तृत विवेचन तृतीय अध्याय पृष्ठ संख्या 23 एवं 24 पर किया गया है।

चित्रकार मनोहर—उदयपुर एवं चित्तौड़गढ़ में चित्रकार साहीबदीन के साथ-साथ मनोहर ने जो चित्रण परम्परा विकसित की वह मेवाड़ चित्र शैली में बहुत अधिक प्रसिद्ध हुई, इनके द्वारा उदयपुर में चित्रित 1649 ई. के चित्र **रामायण बालकाण्ड में दशरथ का अयोध्या में पुत्रेष्टि यज्ञ, राम**

---

1. संवत् 1662 (?) वर्षे वैसाष सुदि 2 लिषांत निशरदी चाउम्मध्ये — ॥ मारुरागिनी 42
2. प्रो. प्रमोदचद—तूती नामा अस्पष्ट बताते हुए चित्र प्राचीन बताये है।
3. मारु राग 42 संवत् 1685 वर्षे आसोवद 9 राणा श्री जगतसींघ राजेण उदैपुर मधे लीषतं चीतारा साहीबदीनः बाचणहारा ने राम रामेः।

परशुराम मिलन, शृंगीऋषि का विवाह आदि कई आकर्षक चित्र प्रिन्स ऑफ वेल्स संग्रहालय, बम्बई में संग्रहित हैं। मनोहर की रंग योजना में सौम्यता, मानव आकृतियों में दुबलापन, लम्बा कद, मुख मुद्रा छोटी, साहीबदीन की चित्रण परम्परा के पश्चात् एक नई शैली बनी। प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर में सुरक्षित **'आर्ण रामायण'** नामक चित्र सम्पुट चित्तौड़गढ़ में चित्रित किया गया उसमें चित्रकार का नामोल्लेख नहीं हैं पर चित्र 1651 ई. में चित्रकार मनोहर द्वारा बनाये माने जाते है, उसमें आकृतियों के सरलीकरण के साथ ही जीव-जन्तुओं, पानी, पहाड़ आदि को प्रतीकात्मक एवं सुहावने रूपों में प्रस्तुत किया है, देखें (चित्र संख्या 30, 33, 34) यह उसकी एक महत्त्वपूर्ण अंकन पद्धति थी। मनोहर[1] एवं साहीबदीन की शैलीगत चैत्रिक विशेषताएं समान रही हैं चित्रों का विस्तृत विवेचन पृ सं. 24 एवं 25 पर दिया गया है।

कविराज जगन्नाथ—उदयपुर के चित्रकारों में जगन्नाथ का महाराणा संग्रामसिंह के राज्य-काल में प्रमुख स्थान रहा है। उन्होंने **सतसई, गीत गोविन्द** तथा **सुन्दर शृंगार** जैसे महत्त्वपूर्ण चित्र सम्पुटों को तैयार कर मेवाड़ की चित्रण परम्परा में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। 1719 ई. में चित्रित **सतसई** चित्र सम्पुट के अन्त में इनका अच्छा उल्लेख मिला है।[2] इनके द्वारा 1726 ई. में चित्रित **सुन्दर शृंगार** के अन्तिम पृष्ठ संख्या 217 एवं 18 पर स्वयं के लिये भी उल्लेख मिलता है।[3] श्री जगन्नाथ अपने समय के चित्रकार एवं कवि दोनों ही थे, इनके चित्र सरस्वती पुस्तकालय उदयपुर में सुरक्षित हैं तथा कुछ चित्र कुँवर संग्रामसिर संग्रह जयपुर में भी उपलब्ध हुए हैं **बिहारी सतसई** चित्र संख्या 42 आलेखन से इनकी चित्रण पद्धति का उचित अनुमान हो जाता है। चित्रण विशेषताओं का विस्तृत विवेचन पृ० 26 पर किया गया है।

कवि एवं आलेखक रूपजी—महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) के राज्यकाल (1710-1734 ई०) में मेवाड़ चित्र शैली की मौलिक परम्परा के निर्माण कर्त्ता रूपजी भट्ट एवं जगन्नाथ थे। दोनों ही इस काल के प्राचीन कवि एवं चित्र सम्पुटों के निर्माता थे। 1714 ई० में निरन्तर चित्रण कार्य से **'गीत गोविन्द'** चित्र सम्पुटों के 224 में से अन्तिम 171 चित्रों का निर्माण किया, इसका विस्तृत विवेचन इस ग्रन्थ के पृष्ठ 28 पर कर चुके हैं जिनमें आकर्षक रंग योजना एवं उत्कृष्ट संयोजन कार्य उल्लेखनीय है, यह चित्र सम्पुट प्रताप संग्रहालय उदयपुर में सुरक्षित है चित्र संख्या 38, 40 एवं 41 आदि के चित्रों से इन की चित्रण पद्धति ज्ञात हो सकती है।

चित्रकार कृपाराम—प्रतापगढ़ के **पृथ्वीसिंह देवलिया** 1720 ई. के चित्र में कृपाराम का उल्लेख मिलता है जो इन की कलात्मक विशेषताओं को व्यक्त करता है, परदाज एवं बारीक अंकन पद्धति के साथ ही इस चित्रण पद्धति में ये उत्कृष्ठ चित्रकार थे, चित्र संख्या 43 इनकी श्रेष्ट कृति कुँवर संग्रामसिंह, जयपुर में सुरक्षित हैं।

गंगाराम वल्द अमरा—महाराणा जगतसिंह (द्वितीय) कालीन केलवा ठिकाने के प्रमुख चित्रकार रहे हैं। इनके द्वारा चित्रित 1745 ई के कई चित्र इस ठिकाने में मिले हैं, चित्र **दुश्चरित्र नारी का वध** चित्र संख्या 51 वीभत्स रस का एक उत्कृष्ट एवं मार्मिक उदाहरण है इस चित्र

---

1. हरमन ग्वेत्स बुलेटिन आफ द बड़ौदा म्यूजियम एवं पिक्चर गैलेरीवोल्यूम 7, भाग 1 पृ. 53-60। इत्यार्षि रामायणे महर्षिवाल्मिकि विरचिते दशरथ प्रमोदां नाम बाल काण्डेय समाप्त मिति सर्गा: ॥ 89 ॥ संवत् 1706 समये मार्गशीर्ष मासे कृष्ण पक्षे त्रयोदश्यांतिथी गुरुवासरे मेदपाट देशे श्री उदयपुर नगरे महाराजाधिराज श्री श्री 5 जगत सींघ जी विजई राजे चितारो मनोहर आचार्य श्री जसवन्त लिखायो महात्मा हीरानन्द पुस्तक लिखितं।'
2. सरस्वती भण्डार उदयपुर में सुरक्षित चित्र सम्पुट 'सतसइ' के अंतिम पृष्ट की पुष्पिका है—'सत्रहसे जु छहोतरे क्षेत्र मास ऋतुराज। कृष्ण पक्ष, गुड पंचमी लिख्यो जु चिसमाजा महाराज संग्राम के सरस कुतूहल काज। कीनो चित्रित सतसई जगन्नाथ कविराज'।
3. सरस्वती भण्डार उदयपुर में सुरक्षित सुन्दर शृंगार, के अन्तिम पृष्ठ सं, 218 की पुष्पिका

   जो रस चरचा चित्र को जानत सरस विचार।
   चिर जिओ संग्राम नृप जगन्नाथ आधार ॥

की रंग योजना एवं आकार संयोजन से चित्रकार गंगाराम की चित्रण पद्धति का सही अनुमान हो जाता है जो घनवादी एवं अजन्ता शैली के निकट है यह चित्र कुँवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर में सुरक्षित है। विस्तृत विवेचन पृष्ठ संख्या 29 पर किया जा चुका है।

चित्रकार नारायण —घाणेराव में दुर्जनसिंह के संरक्षण में 1750 ई. के लगभग प्रमुख चित्रकार थे जिनके चित्रों में मोटे आकार, बारीक रेखाएँ तथा रंगांकन की अपनी मौलिक विशेषताएँ रही है दुर्जनसिंह का यह व्यक्तिचित्र कुँवर संग्रामसिंह, जयपुर के संग्रह में सुरक्षित है।

चित्रकार नंगा--1750 ई. के लगभग जगतसिंह द्वितीय के राज्यकाल 1734–1751 ई. के यह एक प्रमुख चित्रकार थे, इनके द्वारा निर्मित लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित **शेर एवं सूअर का** शिकार चित्र की पुष्पिका में **नंगो भगवानरो** शब्द से स्पष्ट होता है कि वे चित्रकार भगवान के पुत्र थे इनके द्वारा कई हिंसक पशुओं के चित्रों का अच्छा संयोजन किया गया ऐसे ही हल्की नीली पृष्ठ भूमि में गहरे गेरूए, काले व नारंगी रंग में हाथियों की विभिन्न मुद्राओं का आकर्षक चित्रण किया **हाथियो की क्रीड़ायें** चित्र संख्या 50 (40" × 29" आकार में) राजमहल संग्रहालय उदयपुर में सुरक्षित चित्र देखने को मिलता है जिसका विवेचन पृष्ठ सं 29 पर किया जा चुका है। उसी में नंगा की एक कृति **वृहद दन्त हाथी** 1735 ई. का उल्लेख किया गया है जो दामोदर सोनी संग्रह उदयपुर में सुरक्षित है। चित्रकार नंगा ने बदनोर ठिकाने में भी बहुत चित्र अंकित किये इनके चित्रों में बारीक रेखांकन एवं वास्तवतावादी स्वरूप मिलता है।

चित्रकार सीवो– राज प्रासाद उदयपुर में सुरक्षित **गोगुन्दा शादी में पधारे** चित्र के पृष्ठ भाग में आलेख मिलता है जिसमें तीन चित्रकारों ने सम्मिलित चित्रण कार्य किया है[1] उनमें प्रथम **स्वो पीथारो** पीथा के पुत्र शिवा उस काल में मेवाड के प्रमुख चित्रकार रहे हैं, जिनके द्वारा महाराणा राज सिंह द्वितीय कालीन कई चित्रों का निर्माण किया गया उक्त चित्र 1753 ई० में चित्रित 45" × 48" के आकार में सुसज्जित महत्वपूर्ण कृति है। कागज पर अंकित प्राचीन लघु चित्रों का यह अनुपम उदाहरण चित्र सं. 54 है। महाराणा अरिसिंह के राज्यकाल में भी चित्रण कार्य करते रहे थे महाराणा, राजसिंह कालीन प्रमुख चित्रकार थे उस काल में गोगुन्दा शादी में पधारे चित्र का उल्लेख अलग किया गया है अन्य रचनाओं में **महाराणा चान्दणी रात में** 1763 ई. (चित्र संख्या 57) एवं **रानी को गोद में लिये हुए** 1466 ई. (चित्र संख्या 58) कला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण चित्र कृतियां है जो पुरुषोत्तम कन्हैया लाल सोनी संग्रह उदयपुर में सुरक्षित है इसी तरह **फतह खां द्वारा घोड़े को प्रशिक्षण** 1766 ई. (चित्र संख्या 65) एवं **स्वर्ण इण्डिका से सावकों का शिकार** 1766 ई. (चित्र संख्या 67) कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर में सुरक्षित है इनके चित्रों में मुखाकृतियों का भावात्मक स्वरूप तथा वास्तविक अंकन विशेष उल्लेखनीय है मेवाड़ शैली में इस चित्रकार की महत्त्व पूर्ण भूमिका रही है।

चित्रकार दयाल– उक्त चित्रकार के साथ ही **दयाल चतरा रो** का उल्लेख मिलता है राजसिंह (द्वितीय) के राज्य में इस चित्रकार के द्वारा भी सम्मिलित चित्रण पद्धति में अन्य चित्रकारो के साथ अपनी अलग कार्यकुशलता दिखाई इसमें श्री दयाल उल्लेखनीय रहे। चित्रकार दयाल रेखांकन एवं रंगांकन के कुशल चित्रकार थे। जो इनके द्वारा चित्रित राजसिंह **गोगुन्दा शादी में पधारे** चित्र सं. 54 में अलग से पहचाने जा सकते हैं।

अलाबगस वल्द प्यारा– उक्त चित्र **गोगन्दा शादी में पधारे** के तीसरे चित्रकार अलाबगस है मेवाड़ में साहीबदीन की परम्परा अपना विशेष स्थान रखती है। जिन्होंने राजसिंह द्वितीय के राज्य

---

1. चित्र के पृष्ट भाग में संवत 1810 चितारो स्वो पीथारों, चितारो दयाल चतरारो, अलाबगस प्यारा रो" उल्लेखित है।

काल में कई चित्रों का निर्माण किया उक्त चित्र की पुष्पिका में **अलाबगस प्यारा रो** से स्पष्ट है कि ये प्यारा के पुत्र थे। चित्रकार प्यारा के कई चित्र लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित है। इस प्रकार उक्त तीनों चित्रकारो की पुष्पिका में ही अपनी पूर्ण परम्परा स्पष्ट हो जाती है। विस्तृत विवेचन इस ग्रंथ के तृतीय अध्याय में पृष्ठ 31 पर किया गया है।

चित्रकार जीवा– जीवा महाराणा जगतसिंह के राज्यकाल 1738-1751 ई० में कुशल चित्रकार थे, जिनका एक चित्र **महाराणा श्री जगतसिंहजी सहेलिया सूं अठखड़ खेलता थका** विशेष उल्लेखनीय है जिसका पृष्ठ सं० 19 पर विवेचन किया जा चुका है इस चित्रकार के चित्रों में कला एवं भाव पक्ष का उचित समन्वय मिलता है। भारतीय परंपरा गत सिद्धान्तों पर आधारित यह एक महत्व पूर्ण कृति है।

चित्रकार शम्भू– ये महाराणा जगतसिंह कालीन 1734-1751 ई० के श्रेष्ठ चित्रकार थे। 1750 ई० का चित्र **'बादलों में काजली तीज'** देखते हुए महाराणा को राणी के साथ बहुत कलात्मक ढंग से चित्रित किया है। चित्र के ऊपरी भाग में सुनहरे रंगों में चित्र का वर्णन कवित्त रूप में उल्लेखित है। यह चित्र कुंवर संग्रामसिंह, जयपुर के संग्रह में सुरक्षित है।

चित्रकार रघुनाथ वल्द मलूकचन्द–महाराणा राजसिंह द्वितीय के राज्यकाल (1754-61 ई0) में रघुनाथ एक प्रमुख चित्रकार थे, जिनकी चित्र रचना बहुत ही बारीक तथा पृष्ठभूमि में गहरे रंगों की अधिकता है इनके द्वारा चित्रित **श्रीजी चौणीरी नवी छतरी में विराजे** भारतीय चित्रण पद्धति से प्रेरित है। चित्र के पीछे उसका विस्तृत वर्णन भी किया गया है। यह चित्र कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर में सुरक्षित है। चित्र सं0 55 जिसका विस्तृत विवेचन तृतीय अध्याय के पृ0 31 पर दिया गया है।

चित्रकार श्री बीका– महाराणा अरिसिंह के राज्यकाल 1761-73 ई0 में प्रमुख चित्रकार बीका थे। इनके चित्र शिकार तथा सामाजिक रीति-रिवाजों से सम्बन्धित रहे हैं। **'अरसी जी शिकार को जाते हुए'** चित्र सं. 60 1961 ई0 श्रेष्ठ चित्र है। यह चित्र कुंवर संग्रामसिंह संग्रह जयपुर, में सुरक्षित है।

चित्रकार शाहजी—महाराणा अरिसिंह के राज्यकाल में शिकार तथा सामाजिक दृश्य चित्रण में शाहजी का 1761 ई. में विशेष योगदान रहा है। शाहजी द्वारा चित्रित (चित्र सं. 62) **बाघ का शिकार** नामक 'चित्र इनकी कुशल चित्रण पद्धति को दर्शाता है। अन्य चित्र 'दशहरा समारोह 1755 चितारा शाहजी मीया' उल्लेखित है। बाघ का शिकार चित्र इनका उत्कृष्ट उदाहरण है जिसमें चित्रकार ने बहु आयामी चित्र संयोजन का विधिवत अंकन किया है। विस्तृत विवेचन पृष्ठ 32 पर दिया गया है।

चित्रकार भोपा––महाराणा अरिसिंह के राज्यकाल 1765 ई. तीसरे प्रमुख चित्रकार भोपा थे। राज्याश्रय के अनुरूप ही इनके द्वारा सभी चित्र शिकार पर बनाये गये हैं। इनका **'महाराणा अरिसिंह शिकार करते हुए'** चित्र चित्रकला का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता हे, जिनमें जानवरों की लयवद्ध आकृतियों का कलात्मक चित्रण उल्लेखनीय है।

चित्रकार जुगरसी—महाराणा अरिसिंह के राज्यकाल में प्रमुख चित्रकार थे। उनके राज्याश्रय में रहकर इनने शिकार के कई चित्र बनाये अरिसिंह द्वारा **हिरणे का शिकार** (1766 ई.) चित्र सं. 61 इनका उत्कृष्ट उदाहरण है। हिरणों को यौन आकर्षण से एकत्रित कर शिकार करने का एक अनोखा मार्मिक दृश्य तथा बारीकी का अंकन इनके चित्रण की विशेषताओं को प्रकट करता है।

चित्रकार भीमा—महाराणा अरिसिंह के राज्यकाल के एक कुशल व्यक्ति चित्रकार थे, जिनका एक चित्र **'अरसीजी री सूरत रो पानो'** 1767 ई. संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर में सुरक्षित है।

चित्रकार अन्शाराम—महाराणा अरिसिंह के राज्यकाल में एक प्रमुख चित्रकार थे। कलाकार की प्रसिद्धि एवं कार्य कुशलता का अच्छा परिचय एक उक्ति में मिलता है। मेवाड़ की चित्रण परम्परा में लिखे शब्द से ही इनकी पुष्टि होती हैं **'मास एक नौ कीनो काम, लिखी पूतली अन्साराम**। 'इसी तरह इस काल के चित्रकारों में **केशोराम, सांजो विष्णो, सुखों** आदि के उल्लेख मिलते हैं, जो मेवाड़ की चित्र परम्परा में विशेष महत्त्व रखते हैं।

चित्रकार प्रेमजी—1784 ई. में सावर के कुशल चित्रकार थे, इनके द्वारा चित्रित सावर के **ठाकुर श्री व्रदसिंहजी की सवारी** 1784 ई. [1] बहुत ही कलात्मक विशेषताएँ लिये हुए है। चित्र में एक गाड़ी में चित्रकार को भी कार्य करते हुए चित्रित करना चित्रकार की महत्त्वपूर्ण विशेषता है, जिसमें स्वयं प्रेमजी घटनास्थल का मनोरम चित्रण करते हुए चित्रित हैं। चित्र रंग संयोजन का अच्छा उदाहरण है। इनके कई अन्य सावर व जहाजपुर युद्ध आदि उल्लेखनीय चित्र कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर में सुरक्षित हैं।

चित्रकार कंवला (प्रथम)

देवगढ़ के चित्रकारों में रावत राघवदास के आश्रम में कंवला 1775–1810 ई. के लगभग प्रमुख चित्रकार रहे थे। देवगढ़ रावले में कई भित्ति चित्र मिले हैं, जिनमें कंवला एवं चित्रकार वग्ता ने चित्रण कार्य साथ-साथ किया है दोनों के कार्य अलग से पहचाने जा सकते हैं आपके अंकन में सशक्त रेखांकन एवं स्पष्ट आकृति अंकन विशेष उल्लेखनीय हैं चित्र सं. 70 **रावत राघव दास** नामक चित्र 1778 ई. का अच्छा उदाहरण है जो कुंवर संग्रामसिंह संग्रह जयपुर में सुरक्षित है। इसमें रावत राघव दास को घोड़े पर राजसी ठाट बाट के साथ जाते अंकित किये है ऐसा ही अन्य चित्र **रावत राधवदास** बैठे हुए तथा **युद्ध दृश्य** का लयबद्ध रेखांकन आदि विशेष महत्त्वपूर्ण कृतियां हैं जो देवगढ़ चित्रण पद्धति में इनका अलग स्थान बनाती है विस्तृत विवेचन देखें पृष्ठ 38, 39 एवं 40 में प्रस्तुत है।

चित्रकार वग्ता :–

देवगढ़ के रावत गोकुलदास के आश्रय में वग्ता 1769 से के 1820 ई. लगभग से ही प्रमुख चित्रकार रहे, जिन्होंने अपने प्रथम चित्र **सूअर का शिकार** 1769 ई. में विशेष सफलता पाई। यह चित्र कुसुम राजेय स्वाली संग्रह बम्बई में सुरक्षित है। देवगढ़ की चित्रण पद्धति के विकास में इस चित्रकार की ही महत्त्व पूर्ण भूमिका रही जिससे यह चित्र शैली इतनी प्रकाश में आई[2] इनके द्वारा 1807 ई. में निर्मित रेखांकन **राजकुमार अनोपसिह द्वारा सूअर का शिकार** उनके कार्य कुशलता का एक सफल उदाहरण है देखें चित्र सं. 73 ऐसी ही अन्य कृति **राजकुमार अनोपसिंह शिकार के बाद** चित्र सं. 75 है जो बहुत ही भावात्मक अभिव्यक्ति देते है इसका विस्तृत विवरण पृष्ठ 38 पर प्रस्तुत कर दिया गया है। इसी प्रकार कुँवर संग्रामसिंह संग्रह जयपुर में सुरक्षित चित्र **गणगौर की सवारी** 1815 ई. में तत्कालीन समाज की स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलती है इसमें एक ही झलक में राज प्रासादों, से तालाब तक का दृष्य जिनमें ऊँट, हाथी, घोड़े, रथ, बैलगाड़ी, राज दरबारियों एवं नर-नारियों की नृत्य मुद्राएँ सहज भावनाओं को व्यक्त करती है चित्र सं. 77 चित्रकार वग्ता अपनी मौलिक चित्रण पद्धति का विकास करने में अधिक सफल हुए उनके पुत्र चोखा एवं कंवला द्वितीय ने इसी परम्परा का निर्वाह देवगढ़ एवं बदनौर ठिकाने में किया चित्रकार वग्ता की यही पद्धति देवगढ़ में अन्य चित्रों में प्रचलित रही **शिकारी कुत्ता, सूर्य पूजा, श्रीनाथ पूजा** आदि उनकी चित्रकृतियाँ हैं जिनका विस्तृत विवेचन देवगढ़ चित्र शैली के अन्तर्गत किया जा चुका है।

---

1. कलाविद श्रीराम गोपाल विजय वर्गीय—गीतिका जयपुर पृ. 8
आसोज बुद 10 दसम सूक्रवार संमत 1814 श्री ठाकुर श्री श्री घराज श्री मनज।
"व्रद सिंघ जी की असवारो का पानो नलर हुआ" चितारा प्रेम जी की कलम।
2. श्रीधर अधोर—देवगढ़ पेन्टिंग पोर्ट पोलियो ललित कला नई दिल्ली पृ. 5

चित्रकार चोखा—

चित्रकार वग्ता के बड़े पुत्र चोखा 1770 से 1830 ई. ने देवगढ़ चित्रशैली में महत्त्वपूर्ण योग दिया चित्रकार चोखा देवगढ़ के रावत गोकुल दास के आश्रय में रहकर कलात्मक कई चित्रों के निर्माण में बहुत अधिक सफल हुए आपने ही सर्व प्रथम **महाराणा भीमसिंह देवगढ़ पधारे** नामक चित्र को 1786 ई. में कई कृतियों में चित्रित किया इसका वृहद लघु चित्रों (2′ × 5′) में सभी मानवाकृतियों के मौलिक भाव विशेष आकर्षक हैं। दूसरा मुख्य चित्र **सांभर की शिकार** 1800 ई. नाहर सिंह संग्रह, देवगढ़ में सुरक्षित है। अन्य कृतियां **सूअर का शिकार** 1811 ई. प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय में सुरक्षित है ऐसे ही अन्य चित्रों में श्री **चोखा द्वारा गोकुलदास अपने दरबारियों के साथ होली खेलते हुए** 1811 ई. में चित्रित चित्र एन. बोमन बेहरमन संग्रह, बम्बई में सुरक्षित है। चित्र **रति** कुंवर संग्राम सिंह संग्रह जयपुर में सुरक्षित एक महत्त्वपूर्ण कृति जिसमें हल्के छाया प्रकाश के प्रभाव को मेवाड़ चित्रशैली में दर्शाया है चित्र बहुत ही जोशपूर्ण, भावुकता प्रधान रति भाव से ओत प्रोत हैं। चित्रकार चोखा का अन्तिम महत्त्वपूर्ण चित्र **हल्दी घाटी लड़ाई** 1822 ई. में चित्रित किया गया, यह चित्र देवगढ़ ठिकाने में ही सुरक्षित है। चोखा की यही परम्परा उनके पुत्र बेजनाथ के चित्रों में प्रचलित रही देवगढ़ ठिकाने में कंवला व वग्ता के बाद चोखा एक श्रेष्ठ एवं योग्य चित्रकार रहे है। चित्रों का विस्तृत विवेचन पृष्ठ संख्या 38 पर किया जा चुका है।

कंवला द्वितीय :

चित्रकार वग्ता के पुत्र एवं चोखा के छोटे भाई थे, जिनका कार्यक्षेत्र कुछ समय अपने भ्राता के साथ देवगढ़ में ही रहा किन्तु बाद में समीप ही बदनोर ठिकाने में 1800 से 1850 ई. के मध्य चित्रण कार्य करने लगे, यहीं पर चित्रकार नंगा एवं हर चन्द ने भी कुछ समय कार्य किया था उसी शृंखला में कई **भित्ति चित्रों** एवं लघु **चित्रों** का निर्माण करते हुए बदनोर के प्रमुख चित्रकार के रूप में कवला द्वितीय उल्लेखनीय रहे है।

चित्रकार बैजनाथ—

मेवाड़ में चित्रकार चोखा के पुत्र **बैजनाथ** का कार्य क्षेत्र 1804–1845 ई. के लगभग देवगढ़ के चित्रकारों में ही विशेष रहा हैं। बैजनाथ एक कुशल रेखा प्रधान चित्रकार थे देवगढ़ ठिकाने के **मोती महलों** एवं **अजारा की ओवरी** के चित्रों में इनकी महत्त्वपूर्ण कृतियां है। जो देवगढ़ की समृद्ध चित्रण परम्परा बनाने में विशेष महत्त्व रखती है।

चित्रकार घासी :—

महाराणा भीमसिंह के राज्यकाल में 1820 ई. के प्रमुख शिल्पी चित्रकार थे। जिन्हें कर्नल टोड ने अपनी ऐतिहासिक यात्राओं को चित्रित करने हेतु नियुक्त किया था, इनके द्वारा कई ऐतिहासिक चित्र चित्रित किये गये जो ब्रिटिश म्यूजियम लन्दन के कर्नल टोड संग्रह में सुरक्षित हैं[1]

चित्रकार हरीराम

1800 ई. में उदयपुर के कुशल चित्रकार थे। इनके सभी चित्र धार्मिक भावनाओं से प्रेरित हैं। **राम व सीता** चित्र इनका श्रेष्ठ उदाहरण है। इनके चित्र भागवत्-पुराण के चित्रों से अधिक निकटता रखते हैं। चित्र कुंवर संग्रामसिंह संग्रह जयपुर में सुरक्षित हैं।

चित्रकार ताजू :—

जिन्हें बेग के रावत कालजी-मेघजी औरंगजेब के दरबार से लाये तथा चित्रण का मुख्य

1. रोबर्ट स्केलेटन – रूप लेखा, जुलाई 1996 वोल्यूम 30 नं. 1 व 2

केन्द्र बेगू ही रहा किन्तु बाद में शाहपुरा में रह कर भी कार्य किया जहां 1794 ई. में **हाथी एवं घोड़े का संघर्ष** चित्र सं. 67 का निर्माण कार्य किया इस कृति में छाया प्रकाश एवं सफेद पृष्ठभूमि में, परदाज की अंकन पद्धति विशेष महत्त्व रखती है। यह चित्र कुंवर संग्राम सिंह संग्रह जयपुर में सुरक्षित है।

चित्रकार हम्मेरजी—

महाराणा स्वरूपसिंह के राज्यकाल (1842-61 ई.) के प्रमुख शिल्पी 'गजधर' एवं हम्मेरजी चित्रकार रहे हैं, जिन्होंने घुटाई की गीली दीवार पर फुर्ती से रेखांकन एवं रंगांकन कार्य **'वेट फ्रेस्को'** का उत्कृष्ट अंकन कार्य किया। इनके द्वारा निर्मित रेखांकन में **बारहट की हवेली** उदयपुर में **सूअर का शिकार, पागल हाथी** (चित्र सं. 108 अ एवं ब) **हाथियों की लड़ाई, राजा-रानी एवं बगीचे में झूलती नायिकाएँ** आदि उल्लेखनीय हैं। चित्रों का विस्तृत विवेचन भित्ति चित्रों में कर दिया गया है।

चित्रकार ओंकारजी—

मेवाड़ के 1800 ई. के लगभग ये **रियासत** गोत्री शिल्पी गंगरार एवं बस्सी क्षेत्र में ये शैलीगत **रेखाचित्रों** के निर्माता थे। इनकी एक **'स्केच बुक'** नाथद्वारा के श्री **गुलाबजी चित्रकार के संग्रह** में पाई गयी है, जिसमें विभिन्न प्रकार की गतिपूर्ण आकृतियों में **हाथी, घोड़े, मानव शरीर** तथा **हाथियों के सैद्धान्तिक अंकन** के साथ ही मन्दिरों की मूर्तियों सम्बन्धित कलात्मक योजनाएँ अंकित हैं।

चित्रकार वेणीराम नन्दराम—

महाराणा फतेहसिंहजी के राज्यकाल (1885 ई) में एक उल्लेखनीय चित्रकार हुए। नाथद्वारा में कई धार्मिक चित्रों का निर्माण किया आप द्वारा चित्रित महाराणा फतेहसिंहजी द्वारा **एकलिंग पूजा** चित्र श्री सुरेन्द्र चेलावत संग्रह उदयपुर में सुरक्षित आकर्षक कृति है।

चित्रकार टेकजी मुकन्दजी:—

शाहपुरा 1850 ई. लगभग से ही कला परम्परा का विकास यहां के जोशी परिवार में प्रचलित रहा है जिसमें ये दोनों ही भ्राता टेकजी एवं मुकन्दजी अपनी उल्लेखनीय चित्रण परम्परा के लिये प्रसिद्ध रहे है। **देवीनाथ मन्दिर, धोबियों का देवरा, रामद्वारा** आदि स्थानों में चित्रावशेष आज भी देख सकते हैं। इनके बाद चित्रकार घूलजी, जड़ावजी एवं धीसूलालजी इसी परम्परा में मौलिक सृजन करते रहे उनमें ही रामदयालजी आदि विशेष उल्लेखनीय रहे इसी वंश परम्परा में श्रीलालजी भीलवाड़ा में तथा दुर्गेश जोशी शाहपुरा में कार्य कर रहे हैं। इनके द्वारा स्थानीय **लोक शैली** में आज भी कई प्राचीन **'पड़ों'** का निर्माण कार्य चल रहा है। जो परम्परागत पद्धति का शुद्ध रूप दर्शाते है तथा दर्शक भी धोखा खा जाते हैं कि ये चित्र आज के हैं या सदियों पूर्व के ? यही कारण है कि ये **पड़ चित्र** देश विदेशों में विशेष लोकप्रिय होते जा रहे हैं।

चित्रकार एकलिंगजी:—

श्री नाथजी के आगमन पर उदयपुर से 1850 ई. के लगभग नाथद्वारा आने वाले प्रथम पेडवाल गौत्री शिल्पी चित्रकार थे। **महुए वाले अखाड़े** का भित्ति चित्र संख्या 103 **टोडी रागिनी** इनकी गतिपूर्ण चित्रण पद्धति के प्रमाण प्रस्तुत करती है। इसी पद्धति से आपने इस अखाड़े के सभी चित्रों का निर्माण कार्य किया जो नाथद्वारा की कला के सशक्त भित्तिचित्र हैं मानवाकृतियों के अंकन की परिपक्वता का विस्तृत विवेचन भित्ति चित्रों में किया जा चुका है।

चित्रकार हरदेवजी:—

मेवाड़ में श्रीनाथजी के साथ जयपुर क्षेत्र के **नांगल गांव से** 1838 ई, के लगभग सीलक

गौत्री शिल्पी चित्रकार रामचन्द्रजी '**बाबा**' आये । उन्हीं के भ्राता, पुत्र एवं शिष्यता में चित्रकार हरदेवजी का प्रमुख स्थान है जो अपने गुरु के पश्चात् मन्दिर में धार्मिक चित्रण कार्योंके मुखिया भी थे । आप चित्रों में केवल अलंकरण ही नहीं अपितु मानवीय स्वरूपों को संयोजित करने में भी प्रवीण थे । यही प्रभाव उनके पुत्र घासीरामजी की चित्रण पद्धति एवं नाथद्वारा की चित्रकला में स्पष्ट दिखाई देता है ।

चित्रकार परसरामजी :—

महाराणा स्वरूपसिंह के राज्यकाल1842 से 1861 ई० में उदयपुर के महलों में '**चितारों की ओवरी** के प्रधान प्रमुख चित्रकार **तस्वीरां रे कारखनों रा दरोगा** नाम से नियुक्त थे । यह चित्रकार महाराणा के निकटतम सहयोगी होने से इन्हें सभी ओहदे प्राप्त थे जिन्हें आगे स्पष्ट किया जायेगा । इनका एक तिथियुक्त व्यक्ति चित्र सं. 79 उनके पुत्र पन्नालाल द्वारा चित्रित है जो इनके पौत्र छगनलालजी के संग्रह में सुरक्षित है । अन्य कई चित्र राजप्रासाद संग्रहालय उदयपुर में सुरक्षित है । इनमें महाराणा स्वरूपसिंहजी घोड़ों **पर फाग खेलते** हुए इनकी कलात्मक चित्र कृति है चित्र सं, 80 में हिंगलू रंग के रंगों को धब्बो को अंकित करने की विशेष पद्धति दिखाई देती है । जो एकलिंग ट्रस्ट संग्रहालय उदयपुर में सुरक्षित है ।

चित्रकार चार्तुभुजजी—

नाथद्वारा के **उपमन्यु गोत्री** चित्रकारों की शृंखला में 1879 ई० के लगभग कुशल चित्रकार रहे हैं । इनके द्वारा '**बांकीयांजी का देवरा** सनवाड़ (फतेहनगर) के भित्ति चित्रों का निर्माण किया गया[1] जो इनके कुलदेवता रहे हैं । जैसा कि आगे वंशावली में भी स्पष्ट किया जावेगा कि यह वंश **लदानी** (मावली) के पास रहा और चित्रों की परम्परागत पृष्ठभूमि रखने वाला है इसकी उक्त चित्रों से पुष्टि होती है । इन के चित्र सं. 106 में **हाथियों की लड़ाई, आरती लिये महिला** एवं स्वयं चित्रकार ने **भोपा देवाजी का व्यक्ति** चित्र तत्कालीन चित्रकला के अनुकूल है ।

चित्रकार नारायणजी :—

19 वीं सदी में नाथद्वारा के चित्रकारों में परम्परागत धार्मिक चित्रों के निर्माता एवं नई हवेली के अंगीरा ब्राह्मण परिवार के उल्लेखनीय चित्रकार थे । इनके द्वारा **गोवर्द्धन कुण्ड** (मालाजी मन्दिर) में निर्मित नाथद्वारा भित्ति चित्र 1868 ई० के उत्कृष्ट नमूने है । चित्रों में गतिपूर्ण रेखांकन एवं जोशपूर्ण भावों का गोटाई फ्रेस्को में अच्छा समन्वय है लघु चित्र '**राजारानी की प्रेम क्रीड़ा**' उनकी चित्रण पद्धति का अच्छा नमूना है जो नाथद्वारा में चित्रकार श्री नरोत्तम शर्मा के संग्रह में सुरक्षित है । इनके पुत्र श्री नरोत्तम एवं श्री भूरालालजी की चित्रण पद्धति इसी दिशा में अग्रसर हुई है ।

चित्रकला भूषण मास्टर कुन्दन लाल :—

शिक्षित चित्रकारों की शृंखला में उदयपुर के मिस्त्री अमृतलाल के सुपुत्र कुन्दनलाल मिस्त्री 1850–1930 ई के लगभग मेवाड़ के एक प्रथम शिल्पी चित्रकार थे जिन्हें महाराणा फतहसिंहजी ने जे० जे. स्कूल ऑफ आर्ट्स से 1889 ई में कला शिक्षा, के समय **वेलिंगटन पुरस्कार** एवं मुक्त हस्त चित्रण में **स्वर्ण पदक** प्राप्त करने वाले मेधावी छात्र को तीन वर्ष (1893 से 1896 ई.) के लिये **यूनिवर्सिटी कालेज लन्दन** स्लेड फाइन आर्ट स्कूल में कला शिक्षा हेतु भेजा जहाँ व्यक्ति चित्रण में विशेष योग्यता प्राप्त की । महाराणा के गोल महलों में आपकी चित्रण कार्य कुशलता को **अलंकरण**

---

1. श्री गणेसा यन्म समत 1902 साल में भोपा पेमाजी के छता आगला चतराम मडे।। देवा देवजी .. .. समत 1936 का मोती फागन सुदी 9 के दीन काम सम्पूरण हुवो मन्दर में चेताराम चतारा चतरभुज क हाथ का नादवारा वाला ·· भित्ति चित्र आलेख बाकियाजी का देवरा सनवाड़ से

कार्यों में भी देखा जा सकता है जहां ये **तस्वीरां रे कारखाना दरोगा रां** पद पर नियमित वेतन भोगी चित्रकार थे[1] मेवाड़ में **महाराणा प्रताप** का चित्र आपकी ही देन है जिसका राजा रवि वर्मा ने भी अनुकरण किया । इन्होंने राजा रविवर्मा के साथ प्रतियोगी बन कर कार्य किया व सफलताएँ प्राप्त की राज प्रासादों के अतिरिक्त आपने **जैनश्रावको, रामायण एवं क्षमायाचाना** संबंधित कई तेल चित्रों की रचना की, (चित्र सं. 82) ये चित्र शिक्षाविद डा. शिवकुमार शर्मा उदयपुर के संग्रह में सुरक्षित हैं । इसी प्रकार नाथद्वारा में कानजी-भगवानजी की चित्र शाला में **कुम्हारिन बाजार को ओर** तथा **ग्रामीण युवती** कलात्मक कृतियाँ हैं । (देखें चित्र सं. 82 व) कलाकार की इस प्रगति एवं विदेश भ्रमण से उनका समाज क्षुब्ध हो गया था उन पर खान-पान के आरोप भी लगाये गये अन्त में ब्राह्मण समाज के अनुकूल लन्दन से प्रमाण-पत्र आने पर परिवर्तन आया । राजनैतिक कारणों से महाराणा फतेहसिंहजी ने भी अन्तिम दिनों में आपको उदयपुर से हटा दिया नाथद्वारा में **रथ खाना कला विद्यालय** के रूप में आपका प्रमुख कार्य स्थल रहा यहीं पर चित्रण के कई प्रयोग किये गये व **कुन्दन डिजाइन** नामक अलंकरण पद्धति का विकास किया । बचपन से महाराणा भूपालसिंहजी के कला शिक्षक होने के कारण आपको राज्य में **मास्टर** की उपाधि दी गई तथा काशी सनातन धर्म महामण्डल ने 1915 ई. में आपको **चित्रकलाभूषण** की उपाधि से सम्मानित किया तथा भारत धर्म महा-मण्डल से हो **चित्रनैपुण्य शिल्पज्ञानादि** नामक उपाधि से भी सम्मानित किये गये ।

मेवाड़ एवं तत्कालीन भारतीय चित्र कला के क्षेत्र में मास्टर कुन्दनलालजी की कला प्रतिभा विशेष महत्त्व रखती है । प्राचीन परम्परा को तोड़ विशुद्ध छाया प्रकाश एवं अनुपात से मानवाकृतियों का वास्तवतावादी अंकन उस काल में स्थापित करने का श्रेय आपको ही है आपकी शिष्यता में मेवाड़ के कई सिद्ध हस्त शिल्पी प्रशिक्षित हुये जिनमें उदयपर के श्री लहरदासजी महाराज श्री नारायणजी मिस्त्री श्री रामनारायणजी एवं श्री अम्बालालजी शर्मा आदि विशेष उल्लेखनीय हैं इसी प्रकार नाथद्वारा में कानजी भगवानजी घासीरामजी एवं अन्य कई चित्रकार आपके ही पद चिन्हों पर चल कर कला विकास में अग्रणी रहे हैं ।

चित्रकार घासीरामजी :—

श्री हरदेव के पुत्र घासीरामजी का नाम मेवाड़ के चित्रकारों में उल्लेखनीय रहा है जो नाथद्वारा के प्रतिभाशाली चित्रकार थे[2] तथा चित्रकार श्री कुन्दनलाल के समकालीन थे । रेखांकन की आश्चर्यजनक कार्यकुशलता आपकी रचनाओं में देखने को मिलती है । आंखों पर पट्टी बांध सीधे तथा उल्टे दर्शक की तरफ सीधी व चित्रकार की तरफ उल्टी आकृति अंकित करने की प्रतिभा मेवाड़ में अब तक चर्चा का विषय हैं । जानवरों की विभिन्न मुद्राओं **हाथी, हिरण, घोड़े, शेर, ऊँट, बकरी, बारहसिंगा** आदि अनेक जानवरों के 500 से अधिक रेखा-चित्र सन् 1901 से 1910 ई. के मध्य चित्रित हुए हैं । यही नहीं आपके **कृष्णलीला** एवं अन्य कई चित्र एस **ब्रजवासी** द्वारा जर्मनी में प्रकाशित करवाये गये जिनसे इनकी ख्याति जन समाज में स्थाई रूप से फैल गई जो एक नवीन मार्ग था इसी तरह नाथद्वारा मन्दिर के मुखिया चित्रकारों में इन्हें अब तक स्मरण किया जाता है । यहां आपने विशुद्ध रंगों में छाया प्रकाश देने की अपनी निजी चित्रण पद्धति का विकास किया । विशुद्ध रंगों में चित्रित **महाराणा प्रताप** का चित्र उदयपुर में हिम्मतसिंहजी स्वरूपरिया संग्रह में सुरक्षित हैं देखें चित्र सं. 93 सुपुत्र प्रेम नरेन्द्र शर्मा के सानिध्य में ही 1930 में बना इन्होंने सशक्त रेखांकन की प्रतिभा से इस शैली में महत्वपूर्ण योग दिया है ।

---

1. मिस्त्री कुन्दन लाल मास प्रत 30 रु. बनाफस 360) तस्वीरा रां कारखाना खाते चतारो नामा 2 में मुणलाल, नीलाघर 30 प्रत माह 360) वर्ष के मेवाड़ पडाख सवत 1955 पृ. 640 राजस्थान अभिलेगार शाखा उदयपुर । मजदूरों—पेन्टर्स ऑफ नाथद्वारा–स्पान जुलाई 1970 पृ. 3-7 ।

चित्रकार पन्नालाल मेवाड़ाः—

मेवाड़ की स्थानीय चित्र शैली का यथावत चित्रण कार्य में और उसका शैलीगत स्वरूप श्री पन्नालालजी के चित्रों में उपलब्ध होता है उदयपुर के उपाणा वशिष्ट गोत्री चित्रकारों में आपका उल्लेखनीय स्थान हैं। आपके जीवनकाल में 1865-1945 ई में आप कला के लिए संघर्ष करते रहे। 15 वर्ष की आयु से ही शिल्पकला में प्रवीण हो गये तत्पश्चात् चित्रण कार्य की गहरी रुचि के कारण तत्कालीन उदयपुर के प्रसिद्ध चित्रकार कुन्दनलाल शर्मा से लन्दन वापसी पश्चात् मन्दिर के गुंबज का विधिवत् चित्रण कराने हेतु पहुँचे। इस पर श्री कुन्दनलालजी से विदेशी प्रभाव के फलस्वरूप उन्हें कुछ अपशब्द ही सुनने को मिले तब से आपने चित्रकार बनने का निश्चय कर लिया और बहुत गहन अभ्यास करते रहे। महाराणा फतेहसिंहजी ने इनके चित्रों को देखा एवं सराहना की तत्पश्चात् उन्हें चित्रकला के कार्य में ही नियुक्ति दे दी। आपने जोधपुर राजमहलों, कानोड के ठिकाने, अजमेर के पुष्कर मन्दिर तथा कई अन्य ठिकानों में चित्रण कार्य किया, आपने अपने पुत्र श्री चतुर्भुज, देवीलाल तथा चन्द्रलालजी को अपनी परम्पराएं बनाये रखने की प्रेरणा दी। मीठाराम मन्दिर उदयपुर में सुरक्षित 1899 ई में चित्रित **रघुवरदासजी महन्त** चित्र संख्या 8। आपकी उल्लेखनीय-कृति है जिसमें मेवाड़ की स्थानीय परम्परा का सरल स्वरूप स्पष्ट दिखाई देता हैं।[1]

चित्रकार श्री चतुर्भुज द्वितीय :

1895 से 1975 ई के मध्य उदयपुर के प्रतिष्ठित चित्रकार रहे। आपके चित्रों पर अपने पिता श्री पन्नलालजी की चित्रशैली का बहुत अधिक प्रभाव दिखाई पड़ता है। महाराणा फतेहसिंहजी एवं भूपालसिंहजी के राज्यकाल में आपने कइ व्यक्ति चित्र एवं मानव आकृतियों के ऐतिहासिक चित्रों का सफल संयोजन किया है। आपने कई वृहद तैल चित्रों का निर्माण किया है जिनमें प्रताप संग्रहालय उदयपुर में सुरक्षित **महाराणा प्रताप एवं फतहसिंहजी** के वृहद् तैल चित्र तथा श्री जिनदत्त सूरि के कई तैल चित्रों की रचना विशेष उल्लेखनीय है। राजप्रासाद संग्रहालय, उदयपुर में सुरक्षित **हल्दीघाटी,** महाराणा भूपालसिहजी के **व्यक्ति** चित्र तथा वायसराय हाऊस, नई दिल्ली में **अंग्रेजों द्वारा शिकार** 1942 ई. के तेल चित्र एवं भित्ति चित्र बहुत अधिक वास्तवतावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं आपके द्वारा पारसनाथ मन्दिर भद्रावती महाराष्ट्र में कई भित्ति चित्रों का तेल रंगों में परम्परागत चित्रण कार्य किया गया यही प्रभाव उनके पुत्रों की कला पद्धति में रहा पुत्र श्री हरिशंकरजी शर्मा एवं अन्य भ्राता उनकी ही मौलिक कला परम्परा का सफलता से विकास कर रहे हैं।

चित्रकार पन्नालालजी गौड़ :

महाराणा फतेहसिहजी एवं भूपालसिहजी के राज्यकाल में **'चितारों की ओवरी'** के प्रमुख **दरोगा** (मुखिया) थे इन्होंने कई प्राचीन चित्रों की अनुकृतियां की हैं जो चित्रकार श्री छगनलालजी के संग्रह में सुरक्षित है इनके चित्रों में मुगल प्रभाव अधिक है। यह प्रभाव मेवाड़ चित्रशैली के अन्त में सर्वत्र था। इनके द्वारा चित्रित राजप्रासाद संग्रहालय उदयपुर में सुरक्षित **बाप्पा रावल को हरित ऋषि का आशीर्वाद** तथा प्रताप संग्रहालय उदयपुर में सुरक्षित **परिक्रमा**[2] में महाराणाओं के व्यक्ति चित्र विशेष उल्लेखनीय है। चित्र सं. 79 एवं चित्र सं. 83 उनकी चित्रण पद्धति के श्रेष्ठ उदाहरण हैं जो उनके पुत्र श्री छगनलालजी गौड़ एवं राजप्रासाद संग्रहालय उदयपुर में सुरक्षित है।

चित्रकार छगनलालजी गौड़ :—

महाराणा फतहसिंह के राज्यकाल में एक छोटे होनहार बाल चित्रकार का नाम प्रसिद्ध रहा

1. उदयपुर मेवाड़ नरसिंह द्वारा के महन्त श्री 108 श्री रघुवरदास जी उम्र 49 सम्मत 1957 मिगसर 11 चित्रकार मेवाड़ा पन्नालाल मार्फत गुजरगोड चुन्नीलालजी (मीठाराम मन्दिर उदयपुर के चित्र से)
2. महाराणाओं के वृहद व्यक्ति चित्रों के पुस्तक रूपी संग्रह को परिक्रमा नाम से सम्बोधित किया है।

है जिन्होंने कर्नलटॉड के स्वागत की छटा सम्बन्धित कई प्रतिकृतियां चित्रित की जिस से प्रसन्न होकर महाराणा ने डेढ़ सौ स्वरूपसाई रुपये उसकी कलात्मक तत्परता को देखकर दिये वहीं बाल-चित्रकार आगे चलकर चितेरों की ओवरी के प्रमुख दरोगा मेवाड़ का राज्य चित्रकार नियुक्त हुआ। 1930 ई. पश्चात् अपने पिता चित्रकार पन्नालालजी की ही भांति महाराणा भूपालसिंह के राज्यकाल में इन्हें राजकीय चित्रकार के सभी ओहदे प्राप्त हुए मेवाड़ चित्रशैली के अन्तिम सर्व सम्पन्न चित्रकार के रूप में आपकी प्रतिभा बहुत अधिक फैली। परदाज अंकन पद्धति चित्र सं. 92 की बारीकी प्राय: इनके पश्चात् शैलीगत चित्रों में दिखाई नहीं देती है। आपके प्रमुख चित्रों में हीरे की आंगी, राधा व कृष्ण की लीलाएं ऐतिहासिक घटनाओं एवं राजारानी के बारीक कलात्मक चित्र राजप्रासाद संग्रहालय उदयपुर मे सुरक्षित हैं।

चित्रकार नन्दलाल शर्मा :

सूत्रधार मण्डन के वंशजों में ही मेवाड़ के इस प्रतिभा सम्पन्न चित्रकार ने अपने पिता श्रीनारायण जी की भांति तत्कालीन प्रसिद्ध चित्रकार मास्टर कुन्दनलाल की विदेशी चित्रण पद्धति से प्रभावित न होकर भारतीय राष्ट्रीय पुनर्जागरण कालीन कला पद्धति को अपनाया। आप मध्य प्रदेश के देवलालीकर की चित्रण पद्धति से विशेष प्रभावित हुए तथा इन्दौर में कला शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् मेवाड़ में भारतीय पुनर्जागरण कालीन कला पद्धति का सूत्रपात करने वाले प्रथम चित्रकार थे जिन्होने झीलों की नगरी उदयपुर के सौन्दर्य को विभिन्न कलात्मक आयामों से देखा। आपने जल रंगीय तीव्र तूलिका संचालन एवं रंग सामंजस्य की मौलिक चित्रण पद्धति से पहाड़ों नदियों प्रासादों झीलों एवं हरे-भरे वातावरण को हमेशा के लिये चित्रकृतियों में साकार रूप देकर अमर कर दिया। आप के चित्रों में परम्परा एवं आधुनिक भारतीय चित्र कला का समन्वय है। आपने अपने लघु जीवन काल (1914 से 1947 ई०) में कई दृश्य एवं वाश चित्रों का निर्माण कर कला के क्षेत्र में विशेष ख्याति प्राप्त की, राज्याश्रय भी मिला, विद्याभवन को भी कार्य स्थल बनाया किन्तु स्वतंत्र व्यक्तित्व किसी बंधन में नहीं रह पाया, मेवाड़ के इस प्रथम फ्रीलांस आर्टिस्ट से तत्कालीन राष्ट्रीय स्तर के चित्रकार एन, एस, बेन्द्रे, एस. एच. रजा एवं के. एच. आरा आदि विशेष प्रभावित हुए। आपके विभिन्न जल रंगीय वाश चित्र 'अर्चना पूजा' प्रतीक्षा, आक्रोश आदि विषय वस्तु के चित्र सं. 93 अ एवं ब जैसी रचनाओं ने उदयपुर में कला को एक नई दिशा दी। यही पद्धति उनके सहयोगी चित्रकार श्री भंवर शर्मा की कृतियों में विकसित हुई और उन्होंने विशेष सफलता प्राप्त की। श्री नन्दलाल शर्मा को कई कलाकृतियां राज प्रासाद संग्रहालय तथा उनके सुपुत्र श्री सुभाष भारद्वाज संग्रह उदयपुर में सुरक्षित है जो इस युग के कला संदर्भो में विशेष महत्व रखती है।

कलाविद गोवर्धन जोशी —

नाथद्वारा के धार्मिक वातावरण में 1914 ई० में जन्मे श्री जोशी ने मेवाड़ की चित्रकला को आधुनिक आयामों में विकसित करने की दीक्षा शान्ति निकेतन से ली। 1936 ई० में कला गुरु श्री नन्दलाल बोस के निर्देशन में प्राप्त की। आपने अपने चित्रों में राजस्थानी लघु चित्र शैली एवं प्रचलित लोक कला में समन्वय स्थापित किया, यही कारण है कि ग्राम्य जीवन से सम्बन्धित सौन्दर्य को चित्रकला भूषण श्री कुन्दनलाल के पश्चात् आपने ही साकार रूप देने का संकल्प लिया। उसके साथ-साथ मेवाड़ के जन जीवन, विभिन्न पर्वों एवं ऐतिहासिक घटनाओं को अपनी पद्धति से नई कृतियों में अंकित किया श्री जोशी ने भित्ति चित्रण में कला के इन स्वरूपों को नये ढंग से उभारा, आपकी कृतियां लम्बे समय में ललित कला अकादमी जयपुर में पुरस्कृत होती रहीं जहां वे 1974 ई० में कलाविद की उपाधि से सम्मानित किये गये, चित्रकार के साथ ही कला शिक्षक के रूप में आपका कार्य क्षेत्र विद्याभवन, उदयपुर रहा तथा 1962 ई० में राष्ट्रपति ने श्रेष्ठ शिक्षक पुरस्कार से

सम्मानित किया, कुल मिला कर मेवाड़ शैली से दूर किन्तु उसके ग्राकारों एवं ग्रभिप्रायों को नया रूप देने में ग्रापका महत्वपूर्ण योगदान रहा फलस्वरूप राजस्थानी चित्र कला को यह गौरव प्राप्त हो पाया। ग्रापकी कृतियां देश विदेश की कई ग्राधुनिक कला वीथियों एवं प्रताप संग्रहालय उदयपुर में सुरक्षित है ग्रापका चित्र सं० 94 व **बरात** मेवाड़ की ग्राम्य ग्रात्मा की सौन्दर्यात्मक ग्रभिव्यक्ति को स्पष्ट करता है विस्तृत विवेचन हेतु राजस्थान ललित कला ग्रकादमी वृतचित्र देखें।

चित्रकारों की व्यवसाइक दृष्टि

मेवाड़ की चित्रकला के ग्रन्तिम चरण में नाथद्वारा की धार्मिक कृतियों के निर्माण से यहां के चित्रकारों ने विशेष ख्याति प्राप्ति की तथा उनके चित्र जन साधारण के लिये ग्राकर्षण का केन्द्र वन गये। इस दिशा में मथुरा के **बृजवासी बन्धु** का महत्त्वपूर्ण योग दान रहा, उनका कार्य क्षेत्र मथुरा दिल्ली एवं कराची में था उनके द्वारा यहां के धार्मिक चित्रों का प्रकाशनकार्य पहले जर्मनी में कराया जाता था जिसकी ग्रब निजी प्रकाशन व्यवस्था प्रारम्भ हो चुकी है। बृजवासी बड़े भ्राता **श्री नाथदासजी** ने यहां के चित्रकारों में धार्मिक विषय वस्तु के सात्विक भावों पर ग्राधारित चित्र निर्माण की प्रेरणा दी वे वर्ष में तीन-चार वार सभी चित्रकारों के मध्य नाथद्वारा में चित्रण प्रतियोगिताएँ ग्रायोजित करते उन्हें धर्मशाला में ग्रामन्त्रित कर ईश्वरी रूपों की चर्चा करते व समूह में चित्रण कार्य करवाते। जिसमें धार्मिक ग्रभिप्रायों के ग्रनुरूप ईश्वरीय हाव-भाव एवं मुद्राग्रों को चित्रकार स्पष्ट ग्रंकित करते उनके निर्देशन के ग्रनुकूल चित्रण कार्य पूर्ण होने पर ही उनके कनिष्ट भ्राता **श्री श्यामसुन्दरदास बृजवासी** उन श्रेष्ठ चित्रों की प्रकाशन व्यवस्था करते। प्रारम्भ में नाथद्वारा के जिन चित्रकारों की चित्र कृतियां चुनी गयी उनमें चित्रकार **घासीरामजी** की कृष्ण लीला **हीरालालजी** की वसन्त पंचमी **भगवानजी जयराम** जी की गोवर्धन लीला **नरोत्तमजी** की मुरली मनोहर **लक्ष्मीलाल नंदलाल** की दिवाली पूजन एवं ग्रन्य कई कृतियां जर्मनी में 20–" × 30" ग्राकार में प्रकाशित करवाई गई। इन कलाकारों ने ब्रजवासी के धार्मिक भावों के ग्रनुरूप विशेष सफलता पाई व भारतीय चित्र प्रकाशन व्यवस्था में हलचल उत्पन्न कर दी,

श्री नरोत्तम शर्मा—उपमन्यु गोत्री श्री नारायणजी के ज्येष्ठ पुत्र थे। जिन्होने धार्मिक भावनाग्रों के ग्रनुरूप कई तेल चित्रों का निर्माण किया। मुरली मनोहर, राम की पंचायत, मथुरा गमन लक्ष्मी पूजा, गणेश, शंकर महावीर, राम राज्य, बाल कृष्ण एवं सत्यनारायण को कृतियां तत्कालीन भारतीय जन जीवन में वहुत प्रसिद्ध हुई तथा राजा **रविवर्मा** के चित्रों से भी ग्रधिक उन्हें महत्त्व दिया जाने लगा। इनके चित्र **मथुरागमन** में विशेष भावों को ग्रभिव्यक्ति है तथा **मुरली मनोहर** में कला व भाव पक्ष के सौन्दर्य को ग्रति दर्शाई है उनकी मुखमुस्कान को देख मेवाड़ को कृतियों में भी **ल्योवार्डो डा बिसो** की **मोनोलीसा** का स्मरण हो जाता है देखे चित्र सं. 92।

श्री लक्ष्मीलाल नंदलाल को कृतियों में भी ईश्वरीय सहज भावों की ग्रभिव्यक्ति मिलती है। उनके चित्र दिवाली पूजन शिव पंचायत, राम राज्य, तिलक श्री गणेश ग्रादि महत्त्व पूर्ण तेल चित्रों का बृजवासी भ्राता ने व्यवसायक दृष्टि से वहुत प्रसार किया।

नाथद्वारा में पाश्चात्य कला प्रभाव एवं मेवाड़ के परम्परागत धार्मिक विषय वस्तु का, समन्वय कर बृजवासी वन्धु ने व्यवसायिक कला के क्षेत्र में एक नई दिशा दी, फलस्वरूप वहां के चित्रकार श्री बी. जी. शर्मा, नयन सुवजी एल. एल. शर्मा एम. के. शर्मा, टी. के. शर्मा, इन्द्र शर्मा नवीन रेवाशंकर एवं राधाकृष्ण मणिकलाल ने चित्रों की प्रकाशन प्रक्रिया में विशेष रुचि ली तथा सभी इस व्यवसाय में सफल हुये।

बृजवासी वन्धु के ग्रतिरिक्त **गीता प्रेस गोरखपुर हरनारायण** एण्ड संस बम्बई एवं पंजाबी प्रेस चित्र प्रकाशकों ने यहां की धार्मिक कृतियों को विशेष महत्त्व दिया तथा उन्होंने **कन्हैयालाल भीमराज नरोत्या** द्वारा चित्रित ग्रहिल्याउद्धार **भूरालाल मोतीलाल** का मुर्छित लक्ष्मण **पन्नालालडालू** का सीता

भूमिप्रवेश **हीरालाल भगवानजी** का अशोकवाटिका **कन्हैयालाल विट्ठलजी** का चीरहरण आदि चित्र प्रकाशित किये। युवा पीढ़ी में **श्री बी. जी. शर्मा** के अब तक कई चित्र प्रकाशित हो चुके है तथा उन्होंने निजी चित्र प्रकाशन व्यवसाय क्षेत्र में भी विशेष स्थान बना लिया हैं। इस प्रकार नाथद्वारा की चित्रकला पर धार्मिक व्यवसायिक कला का तीव्र प्रभावदूर से दिखाई देता है जो शैलीगत स्वरूप होकर भी मेवांड़ की कला अभिवृद्धि में एक नवीन प्रेरणा सिद्ध हुई है। यही प्रेरणा यहां के कला विद्यालय में **श्री माणकलाल नैनसुख** ने बनाये रखी जहां वे कई युवा कलाकारों को प्रशिक्षित करने वाले शिक्षित चितेरे थे, उनके द्वारा व्यक्ति निर्मित चित्रों में परम्परा एवं वास्वतावाद का उचित समन्वय है, चित्र सं. 92 ब यह चित्र उनके भ्राता नाथद्वारा के चित्रकार भगवानदासजी नरोल्या के संग्रह में सुरक्षित हैं। यही नही यहां श्री नाथजी के मुखिया चित्रकार द्वारा विभिन्न पर्वों पर सम्मिलित चित्रण कार्य से कई आकर्षक चित्र बनवाये है अनार चोक में रासवर्गों पूजन की छबि में सुरक्षित तिथियुक्त चित्र[1] इस संगठन की पुष्टि में सहायक है।

इस तरह मेवाड़ में चित्रकला का अन्तिम चरण राज्याश्रय से हटकर व्यवसायिक कला के क्षेत्र में विकसित होता है नाथद्वारा इस का एक मात्र जीवित कला केन्द्र है जहा चित्रकार जीवन पर्यन्त अपनी कला साधना के बल पर परम्परा को नवीन विधाओं के साथ विकसित करने में सफल हो रहे है।

प्राचीनकाल में मेवाड़ नरेशों ने चित्रकारों, शिल्पियों एवं आलेख्यकारों को सम्मान एवं निकट का आश्रय प्रदान किया। चित्रकारों ने भी अपने प्राश्रयदाताओं को सौन्दर्यात्मक सृजन द्वारा पूर्ण रूप से तृप्त किया है।[2] इन चित्रकारों के द्वारा कई चित्र-सम्पुटों भित्ति चित्रो एवं फुटकर चित्रों की रचना हुई जिसका श्रेय प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मेवाड़ के आश्रयदाताओं को ही है। यहां चित्रकारों को उच्च स्थान दिया जिस से निरन्तर कला का विकास हुआ। सत्रहवीं सदी में राजमहलों में **'चितारों की ओवरी'** नाम से कला विद्यालय महाराणा जगतसिंह ने (1628-52 ई०) अपने राज्य में प्रतिष्ठित किया। यही बाडी महल में एक ऐसा स्थान था जहां कई चित्रकार सामूहिक रूप से बैठकर कला सृजन करते थे तथा उनके मार्गदर्शन में नवोदित बाल चित्रकार **रंगों की पिसाई, पाटी मांडना** तथा **चित्रण के अभ्यास कार्य** किया करते थे। यह स्थान स्थानीय लोगों द्वारा **तस्वीरारो** कारखानों नाम से ही सम्बोधित होता रहा है। इसके प्रधान चित्रकार को **'तस्वीरा रे कारखाना रा दरोगा'** की उपाधि से विभूषित किया जाता था।

राजकीय सम्मान के रूप में इस पद पर जो भी चित्रकार नियुक्त होते थे वे ही राजदरबार के तत्कालीन प्रमुख चित्रकार माने जाते थे। उन्हें मेवाड़ नरेशों की निकटता के फलस्वरूप कई **ओहदों एवं अधिकारों** से सम्मानित करते थे।

सवारी में हाथी पर बैठ कर जाना–यह एक विशिष्ट सम्मान था जिसमें गनगोर की सवारी, शिकार एवं विभिन्न पर्वों पर महाराणा के निकटतम् सम्मानित व्यक्ति ही बैठते थे।

गोठ में जीमणा :—महाराणा के निकट एवं उनके साथ बैठ कर जीम सकते थे।

अमरशाही पगड़ी पहनना :–यह पगड़ी मेवाड़ में सम्मानित गिने चुने दरबारी ही पहन सकते थे। अन्य कोई यदि राज्य भर में पहन लेता तो उसे दण्ड दिया जाता था। इस पगड़ी को पहनने वाला तत्कालीन राज्य सभा में एक सम्मानित व्यक्ति होता था।

---

1. चितारा उदेराम भगवान सं. 1974 कार्तिक कृष्ण 13 चन्द्रे तथा भीमराज तथा भगवान तथा परसोतं रादाकीसंन —कीर्तनियों की गली श्रीनाथ मन्दिर नाथद्वारा।
2. लेखक द्वारा–मेवाड़ के चित्रकारों का सम्मान एव चित्र सुरक्षा की व्यवस्था, आकृति जनवरी 1976 पृ 16-18

दुपट्टा एवं छोगा-तुर्रो लगानाः—यह भी राज्य में मुख्य सम्मानित व्यक्तियों की पोशाक का सूचक था जो निकट दरबारी ही पहन सकते थे, अन्य नहीं ।

बारह कसों की अंगरखी एवं बगल बन्डी पहननाः—यह अंगरखी मेवाड़ का सम्मानित व्यक्ति ही पहन सकता था । राज्य का मुख्य चित्रकार इसे पहनता था ।

ड्योढ़ी तक बिना रोक-टोक जानाः—राजा के सिंहासन, बैठक, राजा का व्यक्तिगत निवास, निजी व्यक्ति, राजा के घनिष्ठ साथी, जहां भी रहते वहीं मुख्य चित्रकार भी अपनी वार्ता अभिव्यक्ति आदि बिना रुकावट जाकर कर सकता था ।

ये सभी सम्मानित दरबारियों के ओहदे थे जो **'तस्वीरा रे कारखाना रा दरोगा'** को प्राप्त थे । महाराणा स्वरूपसिंहजी के राज्यकाल में परसरामजी गौड़ इस कारखाने के प्रमुख (दरोगा) थे । जिनमें व्यक्ति चित्रण की कार्य कुशलता उच्च कोटि की थी, तत्पश्चात् इस कारखाने के दरोगा शिव-लालजी रहे जिनके बाद फिर परसरामजी गौड़ के सुपुत्र पन्नालालजी गौड़ कारखाने के प्रधान रहे तथा भूपालसिंहजी के राज्यकाल में श्री छगनलालजी गौड़ एवं श्री गोवर्धनजी को उक्त समान प्राप्त होते रहे हैं । इस तरह मेवाड़ नरेशों के वंश परम्परा के साथ ही पीढी दर पीढ़ी राज चित्रकारों के स्थान भी निश्चित होते रहे हैं जो गहन शोध की अपेक्षा रखते हैं ।

इन चित्रकारों द्वारा निर्मित चित्रों के संग्रहों एवं चित्र सम्पुटों को राज्य लेखा व्यवस्था-नुसार **'बस्ता'** कहते थे जिन्हें जिस सुरक्षित स्थान पर रखा जाता था उस स्थान को **'ज्योत-दान** कहते थे । **ज्योतदान** की सुरक्षा के लिए महाराणा के छः प्रमुख नजदीक के लोग नियुक्त होते थे । इन सभी के मिलने पर ही सम्मिलित रूप से **ज्योतदान** खोला जा सकता था । ये निम्न पदों के सम्बो-धित व्यक्ति होते थे:—

1. **चौकी के जमादार ।**
2. **अर्दली के जमादार ।**
3 **हिसाब दफ्तर के अहलकार ।**
4. **दरबारी पासवानजी के प्रमुख ।**
5 **पाण्डेजी :**
6. **पाण्डेजी का सलाहकार आदि ।**

उपर्युक्त लोग मिलकर ही उक्त **ज्योतदान** खोलते, चित्र निकालने व रखने वाले अधिकारी के रूप में सामूहिक कर्त्तव्य निभाते थे । यही कारण था कि इतने वर्षों की **ज्योतदान** व्यवस्था में कभी कोई चित्र संग्रह से नहीं निकल सका व चित्र ज्यों के त्यों सुरक्षित रहे । चित्रकारों के सम्मान एवं चित्रों की इस सुरक्षात्मक व्यवस्था से मेवाड़ के शासकों का कला-प्रेम भी स्पष्ट हो जाता है ।

कुछ वंशावलिया एवं परम्परागत आधार

मेवाड़ की चित्रण परम्परा में चित्रकारों की कई वंशावलियां भी प्राप्त हुई हैं जिनमें से **शाहपुरा** के **जोशी परिवार** की वंशावली तथा **नाथद्वारा** एवं **उदयपुर** की वंशावलियों के **जांगिड़ एवं गौड़ ब्राम्हण** जाति के **वंशवृक्ष** उल्लेखनीय है उनमें पालेचा, सीलक, पेडवाल, गगोरिया, मईवाल, जटोईया, जमराईया, चीतिया, टांक, नरोल्या, सिरोईया एवं अन्य कई गोत्र श्रीनाथ जी की सेवा में चित्रण कार्यों हेतु साथ आये देखें **परिशिष्ट** सं. 2 उनमें से **पालेचा** गोत्र की परम्परा इस प्रकार है । अंगीरा जांगिड़ ब्राह्मण (**गौत्र उपमुन्य शासन पालेचा. उपाधि-पाठक**) चित्रकारों की परम्परा जो नाथद्वारा में चली आ रही है । इसके अनुसार उनके पूर्वज **पाली** से **अजमेर, सोनगर,** व **मालपुरा,** स्थानों में रहते हुए लादानी गांव (मावली) में आये । इस बात पर यदि गहराई से विचार किया जाय तो

मेरा एक अनुमान सही उतरता है कि **पश्चिमी विद्यापीठ** मेवाड़ की प्राचीन विस्तृत सीमाओं में स्थित भिन्नमाल केन्द्र के छिन्न-भिन्न होने के पश्चात् वहां के कई शिल्पी एवं चित्रकार अपने आश्रय ढूंढते हुए मेवाड़ की राजधानियों के आस-पास आ पहुँचे। लादानी (मावली) ऐसा ही प्राचीन स्थान है जहां से ये चित्रकार चित्तौड़, उदयपुर और नाथद्वारा की ओर अपने कला सृजन कार्य में अग्रणी रहे।

उपमन्यु गोत्री वंशवृक्ष

उपमन्यु गोत्र का यह वंशवृक्ष मुझे नाथद्वारा के ही चित्रकारों के निजी संग्रह में देखने को मिला।[1] जिसको उन्होंने उनके वंश के बड़वा श्री अम्बालालजी, नवलरामजी सरवाड़ (अजमेर) निवासी की पोथी के सजरे अनुसार नकल किया इसमें उनके पूर्वज जो पाली से लदानी (मावली) की ओर आये उनमें श्री कचरूजी हैं जिनके बाद मन्नाजी तथा मन्नाजी के बाद श्री पीथाजी। पीथाजी के तीन लड़के थे श्री डूंगाजी, जगन्नाथजी तथा हीराजी। श्री डूंगाजी के पुत्र चतुर्भुजजी और श्री जगन्नाथजी के पुत्र छोटूजी थे, हीराजी के कोई पुत्र नहीं था। चतुर्भुजजी के छः पुत्र में सुखदेवजी, जवेरजी, शोभारामजी जमनादासजी नारायणजी तथा भगवानजी थे। श्री जवेरजी तथा जमनादासजी को छोड़कर बाकी चार पुत्रों के वंश आगे चलते रहे। सुखदेवजी के पुत्र जोधरावजी, कालूजी, रामलालजी, और जड़ावचान्दजी थे, जिनमें रामलालजी के पुत्र प्रेमचन्दजी, पुरुषोत्तमजी तथा द्वारकालालजी हैं। इसी तरह शोभारामजी के पुत्र श्री किशनजी, नानालालजी तथा हीरालालजी थे, हीरालालजी के पुत्रों में परसरामजी वेणीरामजी, ठाकरीजी पन्नालालजी और परमानन्दजी रहे हैं। परसरामजी के मांगीलाल, देवकीनन्दन एवं राधारमण, ठाकरीजी के तुलसीराम एव पन्नालालजी के फतहलाल हुये। नारायणजी के पुत्र मोतीलालजी, नरोत्तमजी, भूरालालजी और दामोदरजी हुए जिनमें मोतीलालजी के पुत्र प्यारेलालजी, नरोत्तमजी के रघुनाथजी, भगवतीलालजी एवं आनन्दीलालजी और भूरालालजी के घनश्यामजी अपनी कला परम्परा को बनाये हुए हैं।

इसी प्रकार श्रीछोटूजी के बालकिशन, जयकिशन, देवचन्द, शिवलाल, शालगराम तथा रघुनाथ थे, और किशनाजी के खेमाजी, फतहलाल व किशोरजी हुए, बालकिशनजी के दौलतराम एवं नन्दराम, जयकिशनजी के नन्दलाल व कालूजी शालगरामजी के देवकिशन, रघुनाथजी के हरनारायण, दौलतरामजी के वेदलाल व हरकिशन तथा नन्दरामजी के सन्तान नहीं थी। नन्दलालजी के तीन पुत्र लक्ष्मीलाल, प्रेमराम तथा मांगीलाल हुए। लक्ष्मीलालजी के पुत्र विटठलजी प्रेमरामजी के घनश्याम एवं नैनसुख, कालूजी के नवीनचन्द, हरनारायणजी के गणेशलालजी खेमाजी के जयरामजी एवं अम्बालालजी हुए। फतहलालजी के कोई सन्तान नहीं हुई किन्तु उनकी पत्नी भूरीबाई महात्मा बाई के नाम से बहुत प्रसिद्ध हुई। इस वंशावली में मन्नाजी, रूपाजी डूँगाजी, जगन्नाथ और हीराजी तक की वश वृक्ष ठीक प्रतीत होता है किन्तु इनमें डेढ़ सौ वर्षों की वंशावली के छः-सात नाम हर शाखा में छोड़ दिये प्रतीत होते हैं। पीथाजी यदि वि. सं. 1732 (1675 ई.) नाथद्वारा जाकर बसे तो उनके लडके डूंगाजी का काल लगभग वि. सं. 1750–55 (1693–98 ई.) होगा और चतुर्भुजजी का यदि उनके ही लडके हैं तो उनका काल वि.सं. 1770-75 (1713–18 ई.) होना चाहिये पर चतुर्भुजजी का काल जो हमें बाकियाजी के देवरे में उल्लेखित वि. सं. 1936 (1879 ई.) मिला। ऐसी स्थिति में यही कहा जा सकता है कि इस वंशावली के कई नाम छोड़ दिये हैं जिन्हें ज्ञात करने पर ही उक्त वंशावली प्रामाणिक हो सकती है अन्यथा अपूर्ण हैं।

उक्त वंशावली के अनुसार 'पाली सूँ अजमेर, अजमेर सूँ सोनगर, सोनगर सूँ मालपुरा, मालपुरा सूँ लदानी, स. 1545 में तथा लदानी सूँ उदयपुर, उदयपुर सूँ नाथद्वारा पहुँचिया स. 1762 में।

1. वंशावली सम्बन्धित प्राप्त विस्तृत विवेचन एवं सहयोग पर लेखक नाथद्वारा के चित्रकार श्री नरोत्तम शर्मा, घनश्याम शर्मा एव नवीन पालेचा का विशेष आभारी है।

इसी तरह ये पाली से अजमेर सम्वत् 762 में आये, अजमेर से सोनगर सम्वत् 932 में आये, सोनगर से मालपुरा सम्वत् 1132 में आये तथा मालपुरा से लादानी 1545 ई. में आये इसकी पुष्टि होती है। इसी तरह पश्चिमी भारत शैली का प्राचीन केन्द्र भीनमाल कालान्तर में जब छिन्न-भिन्न हुआ तो चित्रकारों के कई वर्ग विभिन्न क्षेत्रों में आश्रय की खोज में निकल पड़े यह वंशावली उसी बात की पुष्टि करती है कि आठवीं सदी में जो परिवार पाली तथा वहां से क्रमशः उक्त स्थानों में होते हुए इस भूखण्ड में पहुँचे वे आज तक अपनी कला परम्परा का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

डा. गोपीनाथ शर्मा ने भी सातवीं सदी में इस क्षेत्र की कला परम्परा को स्वीकारा है। तथा स्पष्ट किया है कि सातवीं से पन्द्रवीं सदी तक अविरल रूप से अजन्ता की कला परम्परा[1] के सामन्जस्य से उत्पन्न सिद्धान्तों के अनुकूल मूर्ति एवं चित्रकला पर प्रभाव रहा तथा स्थानीय विशेषताओं के जुड़ने से **मेवाड़ चित्र शैली** का प्रारम्भिक स्वरूप बना तथा विस्तार हुआ। कालान्तर में अन्य ठिकानों की शैलियों पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव से **राजस्थानी चित्रकला** का सम्बोधन किया गया। इसमें चाहे अजन्ता का सीधा प्रभाव हम नहीं स्वीकारें पर पश्चिमी राजस्थान के मरुगुर्जर प्रभाव के आने की अवश्य ऐसे वंशवृक्ष सम्भावना बनती है व पुष्टि भी होती है। मेवाड़ का अन्तिम चित्रण केन्द्र नाथद्वारा बन गया, जहां श्रीनाथजी के विभिन्न पर्वों पर विभिन्न स्थानों से आये चित्रकारों का प्रतिनिधित्व आदान-प्रदान के रूप में होता रहा है। यही कारण है कि किशनगढ़, कोटा, बूंदी, मारवाड़ एवं जयपुर की चित्र शैलियों में नाथद्वारा के वल्लभ सम्प्रदायी चित्रोपम तत्त्व अधिक स्पष्ट होते है। इसी संदर्भ में नाथद्वारा के इन चित्रकारों की उपमन्यु गोत्री वंशावली का संक्षिप्त क्रम आगे चित्र **परिशिष्ट** में दिया गया है।

कला के ये उपासक अब तक अपने आपको कलाकृतियों में ही समाहित करते रहे हैं। उक्त विवरण उनका स्मरण मात्र हैं ऐसे कई शिल्पी एवं चित्रकार इस भूखण्ड में व्याप्त होते रहे हैं। जिन पर विस्तृत शोध की अपेक्षा की जा सकती है प्राप्त कला अवशेष एवं तिथि युक्त सामग्री से यह स्पष्ट हो जाता है कि दक्षिणी पश्चिमी राजस्थान में इन शिल्पियों व चितेरों का निश्चय ही पिछले डेड हजार वर्षों से अपना **सांस्कृतिक साम्राज्य** रहा है। उनकी रचनाएं ही आज प्राचीन सांस्कृतिक इतिहास के शोध अध्ययन की मूल आधार हैं मेवाड़ चित्र शैली में ऐसी अनेकों प्रतिभाएं रही जिनसे इस शैली का प्रकाश निरन्तर प्रज्वलित होता रहा है। फलस्वरूप संस्कृति की रक्षा में उक्त चित्रकारों की ये उपलब्धियां युगों-युगों तक समाज को नवीन दिशाएं देने में समर्थ रहेगी। □

---

1. डा. गोपीनाथ शर्मा–शोध पत्रिका वर्ष 11 अंक 3–4 पृ. 15

परिशिष्ट

मेवाड़ की सांस्कृतिक परम्परा का इतिहास निम्नांकित नरेशोनुसार पिछले डेढ़ हजार वर्षों से क्रमबद्ध देखा जा सकता है :—

मेवाड़ नरेशों[1] का वंशवृक्ष तथा कालक्रम

1. गुहिल (566 ई)[2]
2. भोज (586 ई.)
3. महेन्द्र (606 ई.)
4. नागादित्य (626 ई.)
5. शिलादित्य 646 ई.
6. अपराजित 661 ई.
7. महेन्द्र द्वितीय (689 ई.)
8. काल भोज (बाप्पा) (734, ई.)
9. खुमाण (753 ई.)
10. भर्तृभट्ट (773 ई.)
11. भर्तृभट्ट (793 ई.)
12. सिंह (813 ई.)
13. खुमाण द्वितीय (828 ई.)
14. महायक (853 ई.)
15. खुमाण तृतीय (878 ई.)
16. भर्तृभट्ट द्वितीय (942, 943 ई)
17. अल्लट 949, 951 ई.
18. नरवाहन 971 ई.
19. शालिवाहन (973 ई.)
20. शक्ति कुमार 977 ई.
21. अम्बा प्रसाद (993 ई.)
22. शुचि वर्मा (1007 ई.)
23. नर वर्मा (1021 ई.)
24. कीर्ति वर्मा (1035 ई.)
25. योगराज (1051 ई.)
26. वैरट (1068 ई)
27. हंसपाल (1088 ई.)
28. वैरिसिंह (1103 ई.)
29. विजयसिंह (1116 ई.)
30. अरिसिंह (1127 ई)
31. चोड़सिंह (1138 ई.)
32. विक्रमसिंह (1148 ई.)
33. रणसिंह (1158 ई.)
34. क्षेमसिंह (1168 ई.)
35. सामन्तसिंह (1172 ई.)
36. कुमारसिंह (1179 ई.)
37. मंथनसिंह (1181 ई)
38. पद्मसिंह (1186 ई.)
39. जैत्रसिंह 1213, 1222 ई.
40. तेजसिंह 1260–1267 ई.
41. समरसिंह 1273–1302 ई.
42. रत्नसिंह 1303 ई. (इनके भ्राता ने नेपाल राज्य स्थापित किया)
43. हमीरसिंह 1341 ई.
44. क्षेत्रसिंह 1366–1382 ई.
45. लक्षसिंह (लाखा) 1382–1421 ई.
46. मोकल 1421–1433 ई.
47. कुम्भा 1433–1468 ई. (इनके भ्राता खेमकरण ने देवलिया प्रतापगढ़ स्थापित किया)
48. उदयकरण 1468–1473 ई.
49. रायमल 1473–1509 ई.

1. गो. ही. ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास पृष्ठ 128।
2. ( ) कोष्ठक के मध्य अंकित तिथि क्रम अनुमानित है।

50. संग्रामसिंह (सांगा) 1509–1527 ई.
51. रत्नसिंह (द्वितीय) 1528–1531 ई.
52. विक्रमादित्य 1531–1536 ई.
53. बनवीर 1536–1537 ई.
54. उदयसिंह 1537–1572 ई.
55. प्रतापसिंह 1572–1597 ई.
56. ग्रमरसिंह 1597–1620 ई.
57. करणसिंह 1620–1628 ई.
58. जगतसिंह (प्रथम) 1628–1652 ई.
59. राजसिंह 1652–1680 ई.
60. जयसिंह 1680–1698 ई.
61. ग्रमरसिंह (द्वितीय) 1698–1710 ई.
62. संग्रामसिंह (द्वितीय) 1710 1734 ई.
63. जगतसिंह (द्वितीय) 1734–1751 ई.
64. प्रतापसिंह (द्वितीय) 1751–1754 ई.
65. राजसिंह (द्वितीय) 1754–1761 ई.
66. ग्ररिसिंह 1761–1773 ई.
67. हम्मीरसिंह (द्वितीय) 1773–1778 ई.
68 भीमसिंह 1778–1828 ई.
69. जवानसिंह 1828–1838 ई.
70 सरदारसिंह 1838–1842 ई.
71. स्वरूपसिंह 1842–1861 ई.
72. शम्भुसिंह 1861–1874 ई.
73. सज्जनसिंह 1874–1884 ई.
74. फतहसिंह 1884–1930 ई.
75. भोपालसिंह 1930–1956 ई.
76. भगवतसिंह 1956 ई. से ग्रब तक

मेवाड़ के ग्रप्रकाशित चित्र सम्पुट

राजकीय संग्रहालय, उदयपुर (प्रताप संग्रहालय) के लघुचित्र :

रागमाला	36
सारंग तत्व	54
सारंग धर	66
मालती माधव	67
पंचाख्यान पंचतंत्र	152
कृष्ण ग्रवतार चरित्र (भागवत्)	145
कृष्ण वेली	95
एकादशी महात्म्य	134
मालती माधव	109
सारंग तत्व द्वितीय सम्पुट	136
योग वशिष्ठ (चित्तौड़ स्थानान्तरित)	34
हरिवंश	677
रघुवंश	130
नेषध (चित्तौड़ स्थानान्तरित)	27
गोकुलचन्द के पत्र	4
कालिये दमन	102
एकलिंग महात्म्य	93
गजेन्द्रमोक्ष	17
रसिक प्रिया	88
कादम्बरी	6
प्रबोध चन्द्रोदय	160
काशी खण्ड	327
पृथ्वीराज रासो	628
काजी दो प्याजो (मुल्ला दो प्याजा)	263
वृहद कथा	62
गीत गोविन्द	224
सारंग धर	240
भागवत् गीता	717
महाभारत	3137
दर्शनो की किताब (गुटका)	32
दर्शनो की किताब	107
कृष्ण चरित्र	328
कविप्रिया (फुटकर चित्र)	7
सूर सागर	4
कृष्ण चरित्र	8
ग्रन्य	56 ग्रपूर्ण
फुटकर	130 ग्रपूर्ण

कुल लगभग 9500 चित्र[1]

सरस्वती पुस्तकालय उदयपुर :

सुन्दर श्रृंगार वि. सं. 1782 चित्र 218 बिहारी सतसई वि. सं. 1776 चित्र 236

एकलिंग ट्रस्ट संग्रहालय उदयपुर :

वृहद लघुचित्र लगभग 150 से ग्रधिक (1710 ई. से 1942 ई.) चित्र।

1. प्राचीन वस्तु पंजिका प्रताप संग्रहालय उदयपुर पृ. 213 से 237 के आधार पर।

सचित्र ग्रन्थ प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान शाखा उदयपुर :

आर्षरामायण वि. सं. 1708	36	नारायण कवच मंत्र (19वीं सदी)	2
भागवत् (18 वीं सदी)	10	उपदेश पद्य समूह	3
भागवत् (19 वी सदी)	105	शालिहोत्र वि. सं. 1941	21
रस राज वि. सं. 1895	6	गर्भ चिन्तामणी वि. सं. 1959	43
गीत गोविन्द (18 वीं सदी)	34	नासिकेतो पाख्यान वि. सं. 1919	84
रस मन्जरी (19 वीं सदी)	2	प्रहलाद चरित्र वि. सं. 1919	27
निशानी सरदारसिंहजी वि. सं 1881	2	सत वाणी संग्रह वि. सं. 1919	1
अकबरनामा उर्दू वि. सं. 1708 (टोंक में)	1	शालि होत्र वि. सं 1902	183
मनोरथ वल्लरी वि. सं 1789 एवं		सज्जन यश वर्णन (20 वीं सदी)	2
भक्त माल वि. सं. 1789	13	पूर्णमासी कथा वि. सं. 1933	13
रसिक प्रिया वि. सं. 1926	3	ब्रज विलास	125
ढोला मारू वि. सं. 1959	79	भागवत (रॉल)	14
शिववर्म स्रोत (19 वीं सदी)	2	फूलों के छोटे चित्रों में देवी देवताओं की पट्टी	
रसिक प्रिया (19 वीं सदी)	3	(2" चौडी 10 मीटर के लगभग लम्बी रॉल)	14
महिम्न स्तोत्र (19 वीं सदी)	2	सीता एवं दुर्गा वि. सं. 1861	
सप्त श्लोकी गीता की अलंकृत		(ऊपर जैसी पट्टी में चित्र)	32
पट्टालिकाएं	2	महिम स्रोत	1
महिम्न स्तोत्र (18 वीं सदी)	13	दुर्गासप्तशती वि. सं. 1797	17
देवी महात्म्य (18 वीं सदी	6	श्रीमद्भागवत गीता वि. सं. 1905 5 बड़े चित्र	
काका बत्तीसी (19 वीं सदी)	5	गज स्वरूप प्रकाश	2
हनुमन्त पलाका 63 × 59 सेमी. (रोल)	1	त्रिया विनोद (18वीं सदी)	164
गज चिकित्सा (18 वीं सदी)	139	अवतार चरित्र	677
म. अरिसिंह की जन्म पत्र वि. सं. 1819	1		
दुर्गासप्तशती (19 वीं सदी)	36		लगभग 1920 चित्र[1]

संदर्भ ग्रन्थ एवं पत्र पत्रिकाएं

हिन्दी संदर्भ ग्रन्थ सूची

अग्रवाल डा. वासुदेव शरण — हर्ष चरित्र-एक सांस्कृतिक अध्ययन, राजकमल प्रकाशन, 1953

अग्रवाल डा. रामावतार — रूपप्रद कला के मूलाआधार, लायल बुक डिपो मेरठ, 1972

ओझा डा. गौरीशंकर हीराचन्द —
1. राजपुताना का इतिहास, वैदिक मंत्रालय, अजमेर
2. उदयपुर राज्य का इतिहास, वैदिक मंत्रालय, अजमेर
3. प्रतापगढ़ का इतिहास, वैदिक मंत्रालय अजमेर
4. सिरोही राज्य का इतिहास, वैदिक मंत्रालय, अजमेर
5. डूँगरपुर बाँसवाड़ा का इतिहास, वैदिक मंत्रालय, अजमेर

डा. आदिनाथ नेमीनाथ — उद्योतन सूरि कृत कुवलयमालाकहा बम्बई 1958

वसु, नन्दलाल — शिल्प चर्चा (बंगला) विश्व भारतीय ग्रंथालय, कलकत्ता

गैरोला, वाचस्पती — भारतीय चित्रकला–मित्र प्रकाशन, इलाहबाद, 1963

गुप्त, जगदीश — भारतीय कला के पद चिन्ह, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली

जैन, प. भगवान दास — मण्डन सूत्रधार विरचित-प्रसाद मण्डन, जयपुर, 1963

1. संग्रहालय रजिस्टर प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर एव उदयपुर शाखा के अनुसार है किन्तु सही संख्या सम्बन्धित कार्यालय की ही मान्य होगी।

जैन, डा. प्रेम सुमन — कुवलय माला कहा–एक सांस्कृतिक अध्ययन, बिहार, 1975
जैन, डा. निर्मला — रससिद्धान्त और सौन्दर्य शास्त्र नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली
ठाकुर, अवनिन्द्र नाथ — भारत शिल्प के षडांग-नया साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद
डा शैलेन्द्र नाथ — भारतीय चित्रकला पद्धति, इण्डियन प्रेस इलाहाबाद, 1940
दीक्षित, डा. प्रदीप कुमार — नायक नायिका भेद एवं राग रागीनियों का वर्गीकरण
नगेन्द्र — रस सिद्धान्त-नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1964
परिमल, प्रकाश — लोक संस्कृति रूप और दर्शन भाग 1–2 सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर
फाबरी, चार्ल्स — भारतीय मूर्ति शिल्प एक परिचय, 1966
मुकर्जी, राधकमल — भारतीय चित्रकला का विकास
मुनि कान्ती सागर — खोज की पगडण्डिया, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1960
खण्डहरों का वैभव, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1960
मोतीचन्द्र — प्राचीन भारत के प्रसाधन–,'निर्जालंकार' 1958
मेहता, नानालाल चिमललाल — भारतीय चित्रकला, इलाहाबाद, हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी, 1933
रत्नाकर, जगन्नाथ दास — बिहारी रत्नाकर, गंगा पुस्तक माला, लखनऊ 1926
राय कृष्णदास — भारत की चित्रकला, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, 1939
रावल रविशंकर — पश्चिमी भारत की चित्रकला
श्यामल दास, कविराजा — वीर विनोद, मेवाड़ राज्य का इतिहास 1884 ई.
श्रीवास्तव, डा. बलराम — रूप मण्डन-मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, 1965
शर्मा, डा. गोपीनाथ — राजस्थान का इतिहास, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा
साखलकर, र. वि. — आधुनिक चित्रकला का इतिहास–रा. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर
शर्मा, डा. मन मोहन — महाकवि माघ व उनकी जीवन कृतियां–नवयुग प्रकाशन, दिल्ली
शास्त्री, शालग्राम — साहित्य दर्पण भाग–1
सोमानी, रामवल्लभ — महाराणा कुम्भा–हिन्दी साहित्य मंदिर, जोधपुर, 1968
वीर भूमि चित्तोड़–चम्पालाल रांका एण्ड क. जयपुर, 1969
शुक्ल डा. द्विजेन्द्र नाथ — राज निवेश एवं राजसी कलाएं–वास्तु वांगमय प्रकाशन, लखनऊ
व्यास, गिरिधरलाल — अभिनव काव्य प्रकाश, व्यासबंधु उदयपुर 1966
विजयवर्गीय, रामगोपाल — राजस्थान की चित्रकला, कला मन्दिर, जयपुर, 1953

प्रमुख हिन्दी पत्र पत्रिकाएं एवं ग्रन्थ—

अन्वेषणा, उदयपुर
अगरचन्द नाहटा अभिनन्दन ग्रन्थ, 1977
सेठ आनन्दीलाल पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ
आकृति, जयपुर
सेठ कन्हैया लाल पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ
नागरी प्रचारिणी पत्रिका
नारद निनाद श्री–संगीत कला मन्दिर ट्रस्ट, कलकत्ता
धर्मयुग
मधुमती, उदयपुर
मुनि हजारीमल समृति ग्रंथ
राजस्थान भारती बीकानेर
राजस्थान चित्राधार जोधपुर, 1967
श्री विजय वल्लभ स्मारक स्मृति ग्रन्थ बम्बई
वरदा बीकानेर
सम्मेलन पत्रिका कला अंक
शोध पत्रिका उदयदुर

BIBLIOGRAPHY

Ab'ul Fazl Allami
1. Ain-i-Akbari. Trans by H. Blochmann & Col H. Jarett Calcutta.
2. Akbarnama Trans by Beveridge, Calcutta 1907.

Agrawal, V. S. — Indian Art. Vol. No. 1, Varanasi, 1955.

Anand, Mulk Raj — Album of Indian Painting, 1975

Anand Krishna — Malwa Painting,Banaras Hindu University.

Agrawal, R. A.
1. Marwar Murals-Agam Parkashan. Delhi, 1977.
2. Art & Architecture of Jaisalmer Delhi, 1978.

Archer, W. G.
1. Indian Miniatures, Newyork, 1967.
2. Centeral Indian Painting, London, 1958.
3. The loves of Krishna in Indian Painting and Poetry London, 1957

Brown, Percy
1. The Heritage of India—Indian Painting. The Association Press, Calcutta, 1930.

Barrett Douglas & Basil Gray — Treasures of Asia-Painting of India. Shira—The world Publishing Company, Ohio.

Coomaraswamy, A. K.
1. Rajput Painting being an account of Hindu Painting of Rajasthan, 1916.
2. Catalogue of the Indian collections in the Boston museum of Fine Arts, Part V Cambridge Mass,1926

Dasgupta, S. N. — Fundamental of Indian Art 1960

Erskine, K. D.
1. Gazetteer of Mewar Agency. Vol. I & II
2. Gazetteer of Western Rajputana.

Elliat & Donson — History of India, Vol. Ist to VIII.

Ebeling Klaus — Ragmala Painting, New Delhi, 1973.

Feldman, E B. — Varieties of visual Experience, Englewood Clipps. N. J. Perentice Hall, 1972.

Ganguli, O. C.
1. Master Pieces of Rajput Painting.
2. Group of Vallabhchary & Nathdwaras Painting.

Gray Basil — Rajput Painting Faber & Faber, London, 1938.

Graves Maitland — The Art of Colour and Design, Newyork, 1951.

Goetz Hermann. — Indian Art and letters, 1967.

Hevell, E. B.
1. The Art Heritage of India.
2. The handbook of Indian Art, John Murray,London.

Hale Gardner — The Technique of Fresco Painting, Dover publication Newyork, 1966.

Henry N.Rasmusen. — Art Structure-The text book of creative design,N.Y.1950

Jacobi Hermann — Haribhabra-Samaraicca kaha, A. S. B. Calcutta, 1926.

Jacobs Michel. — The Art of composition. Primatic Art Co., Rumson, N. J , 1956.

Jain K. C.
1. Ancient cities and towns af Rajasthan. Motilal Banarsidass Delhi, 1972.

Kepes Gyorgy — Language of Vision Chicago, 1961

Kramrisch, Stella — Indian Sculpture, Oxford, 1933.

Khandalawala, Karl J.
1. Notes of the Chronology of Early Rajput Painting.
2. The Development of style in Indian Painting.

Khandalawala & Dr. Moti Chandra — New Documents of Indian Painting-A Reappraisal Bombay, 1969.

Knobler, N. — Visual Dialogue, New York, 1971.

Khandalawala Motichandra & Pramod Chandra — Miniature Painting in collection of Motichandra Khazanchi, 1960.

Sherman Lee	1. Rajput Painting, Asia House, Newyork.
Mehta, N. C.	2. Studies in Indian Painting (17th century) Taraporevala, Bombay, 1962.
Majmudar, M. R.	Gujarat–Its Art Heritage, University of Bombay, 1968.
Moti Chandra	1. The technique of Mughal Painting, Lucknow, 1949. 2. Jain Minature painting from western India. 3. Sarabhai Manilal Nawab, Ahmedabad, 1949. 4. Mewar Painting Lalit Kala Academy, New Delhi.
Maurice de Sausmarez	Basic design–The Dynamics of Visual Form N.Y., 1971.
Pramod Chandra	Bundi Painting National Museum, New Delhi.
Rawson, Philip	Erotic Art of the East, Weidenbeld & Nicolson, London, 1968.
Randhawan, M. S.	Basoli Painting National Museum, New Delhi.
Skelton Robert	Rajasthani temple hangings of Krishna Cult, Newyork.
Shiveshwarkar Leela	The pictures of the Chaurpancha Sika, National Museum New Delhi, 1967.
Stuart cary welch	A flower from every meadow, the Asia Society, Newyork.
Sivaramamurti, C	Sanskrit Literature and Art "Mirrors of Indian Culture".
Shah, U. P.	1. Sculptures from Samalaji and Roda, Baroda, 1960. 2. More documents of Jain Painting L. D. inst, Ahmedabad, 1976.
Shah U P. & Motichandra	New Documents of Jain Painting. Ahmedabad, 1975.
Sankalia, H. D.	1. Excavation at Aher (Tambavati), 1969.
Sharma, G. N.	2. Mewar & Mughal Emperores Agra, 1951. 3. Social life in Mediaeval Rajasthan, 1968. 4. A Bibliography of Mediwal Rajasthan, Agra, 1965.
Somani, R. V.	History of Mewar, Kitab Mahal Jaipur. 1976
Shukla, D. N.	Vastusastra Vol, II, Chandigarh, 1958
Tod, Col.James	Annals and Antiquities of Rajasthan, London.
Zimmer, H.	The Arts of Indian Asia, 2nd Vol., Newyork, 1955.

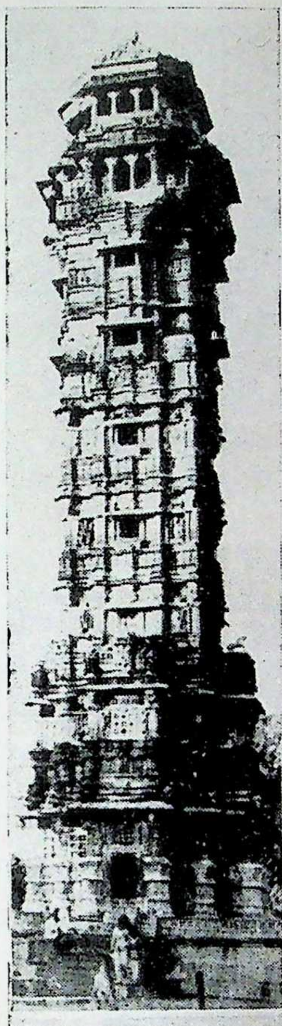
The Journals of Periodicals :

Marg
Span
Lalit Kala
Researcher
Kala Vritt
Roop lekha
Eastern art
Epigraphia Indica
Indian Antiquary
Jain Journal July 1972
Indian historical quarterly
Journal of Indian Society of Oriental art
Imperial Gazetteer of India (Rajputana)
Bulletin, Prince of wales Museum, Bombay
Bulletin, Museum and Picture Gallery, Baroda.

—:□:—

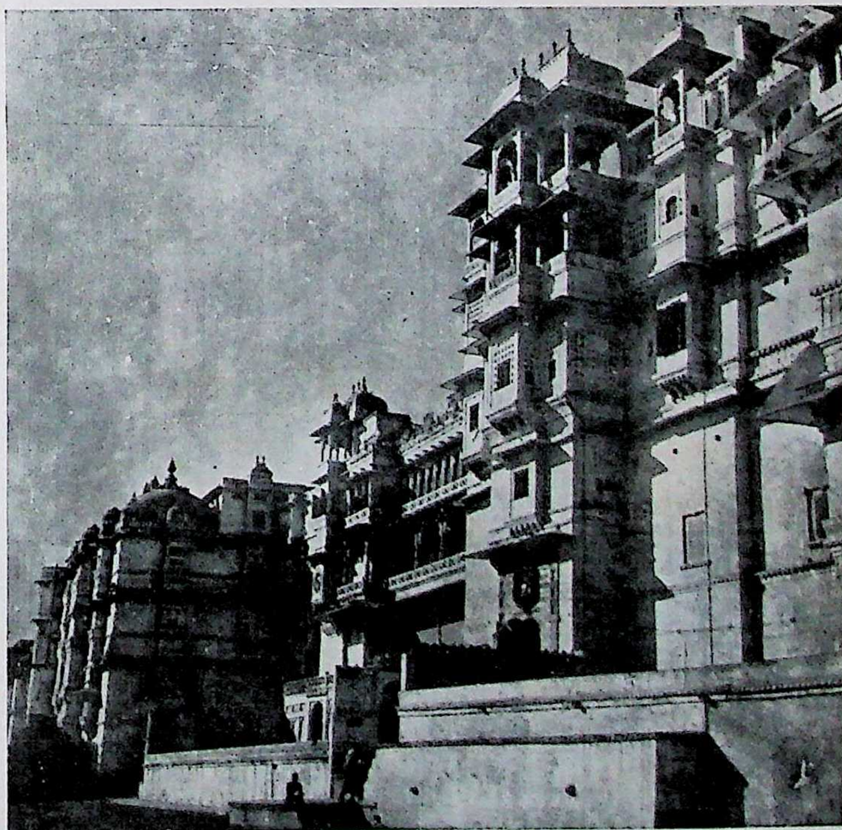
चित्रानुक्रमणिका

—:o:—



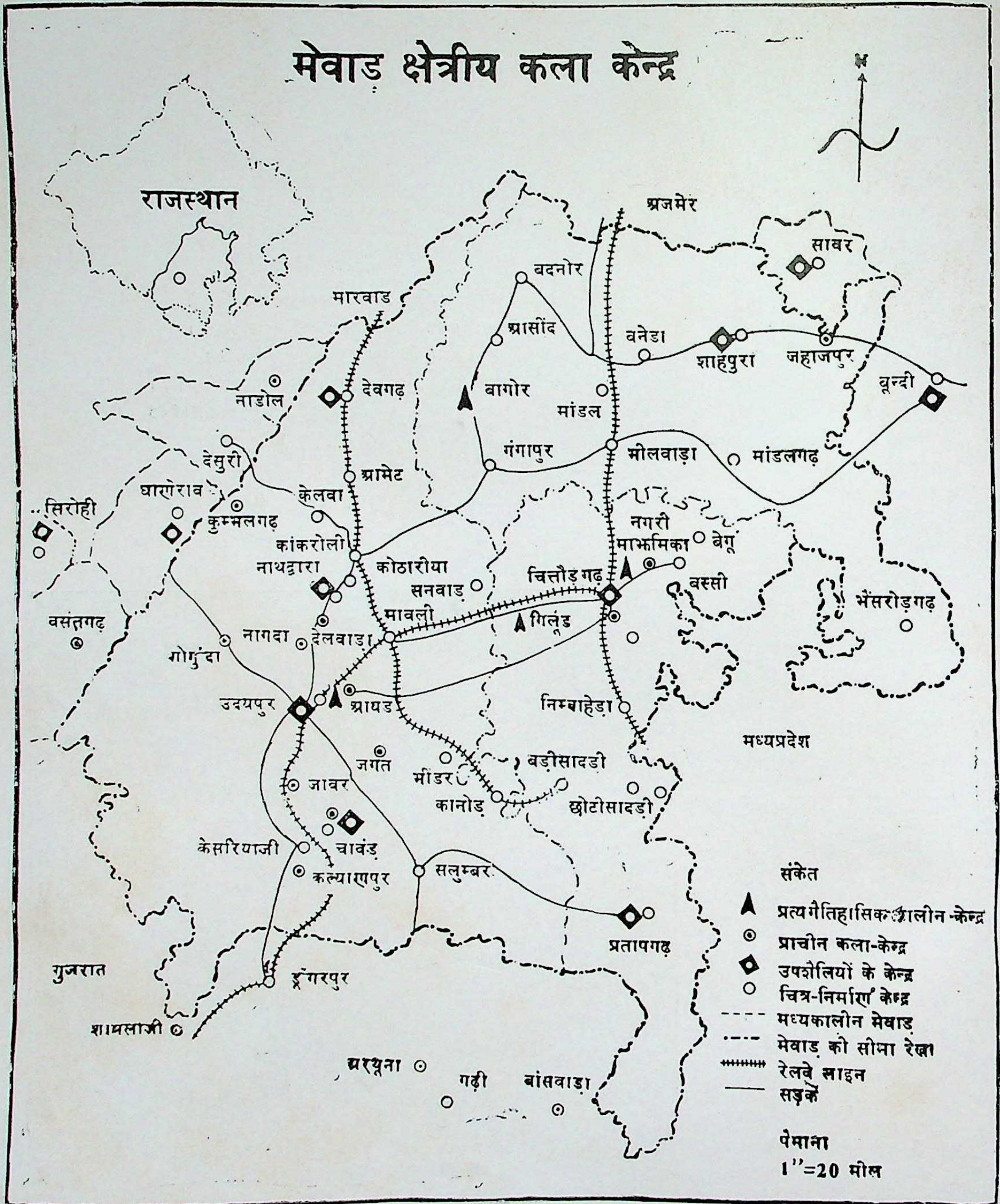
अस्ति स्वस्तिपदं समस्तकमलाविश्रामभूर्विश्रुतो
देशः पेशलसन्निवेशकलितः श्रीमेदपाटाभिधः ।
स्थान स्थान विराजमान विशदप्रासाददम्भोदहो
यो देशानितरान्विजित्य विजयस्तम्भान्समुत्तम्भयेत् ॥7॥

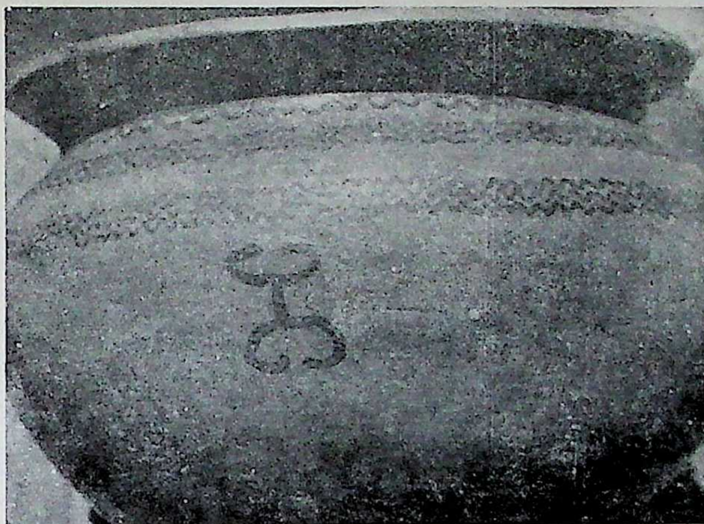
—चित्तौड़गढ़ प्रशस्ति, वि.सं. [illegible] 1495



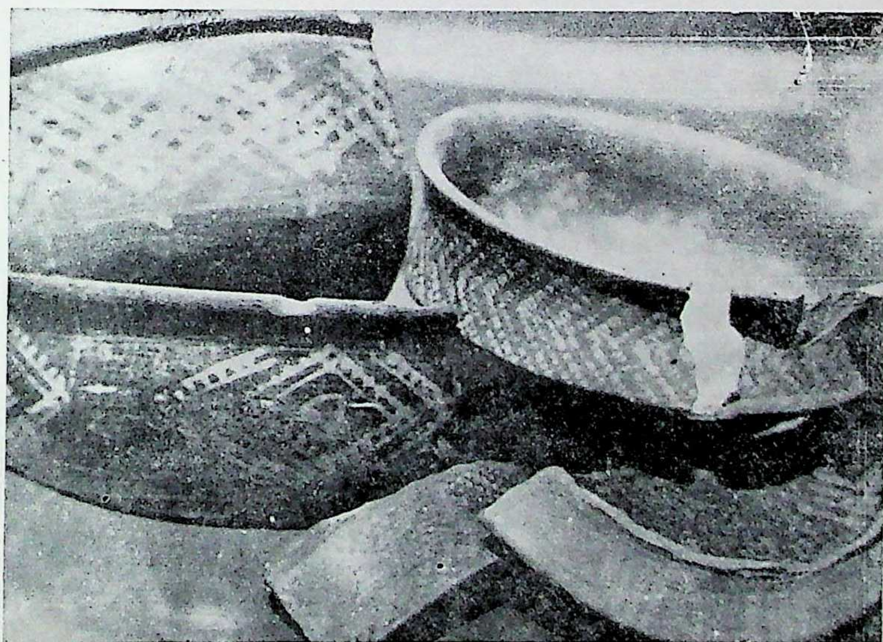
शौर्य एवं पराक्रम की भूमि

चित्तौड़गढ़ का विजय-स्तम्भ
एवं
उदयपुर का राजप्रासाद

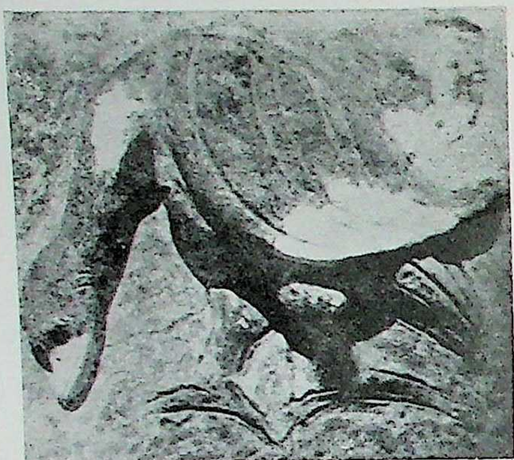

मेवाड़ क्षेत्रीय कला केन्द्र
राजस्थान
अजमेर
सावर
बदनोर
मारवाड
आसींद
वनेड़ा
शाहपुरा
जहाजपुर
बून्दी
नाडोल
देवगढ़
बागोर
मांडल
देसुरी
गंगापुर
भीलवाड़ा
मांडलगढ़
आमेट
घाणेराव
केलवा
सिरोही
कुम्भलगढ़
नगरी
माध्यमिका
बेगू
कांकरोली
नाथद्वारा
कोठारीया
सनवाड़
चित्तौड़गढ़
बस्सी
भैंसरोड़गढ़
वसंतगढ़
मावली
गिलूंड
गोगुंदा
नागदा
देलवाड़ा
उदयपुर
आयड
निम्बाहेड़ा
मध्यप्रदेश
जगत
मींडर
बड़ीसादड़ी
जावर
कानोड़
छोटीसादड़ी
केसरियाजी
चावंड
कल्याणपुर
सलुम्बर
प्रतापगढ़
गुजरात
डूंगरपुर
शामलाजी
अरथूना
गढ़ी
बांसवाड़ा
संकेत
प्रागैतिहासिक कालीन केन्द्र
प्राचीन कला-केन्द्र
उपशैलियों के केन्द्र
चित्र-निर्माण केन्द्र
मध्यकालीन मेवाड़
मेवाड़ की सीमा रेखा
रेलवे लाइन
सड़कें
पेमाना
1"=20 मील



1. रेखाङ्कित मृदभाण्ड
लगभग 1800 ई. पू., आघाटपुर
आहड़ संग्रहालय, उदयपुर



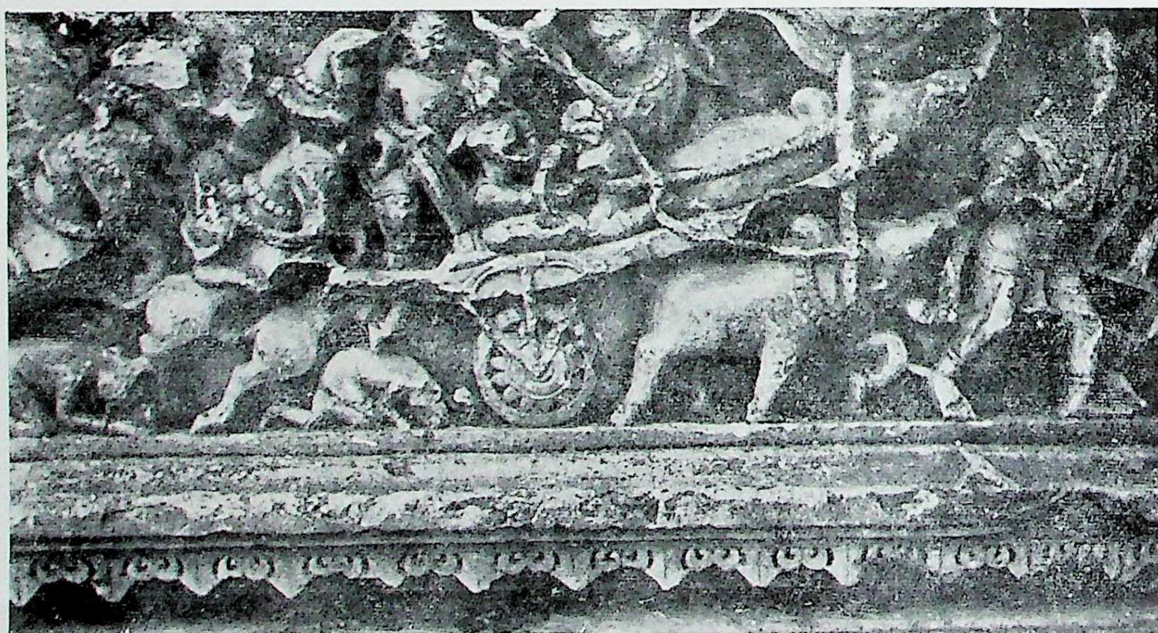
2. ज्योमितीय अलंकरण
लगभग 1500 ई. पू., आघाटपुर
आहड़ संग्रहालय, उदयपुर



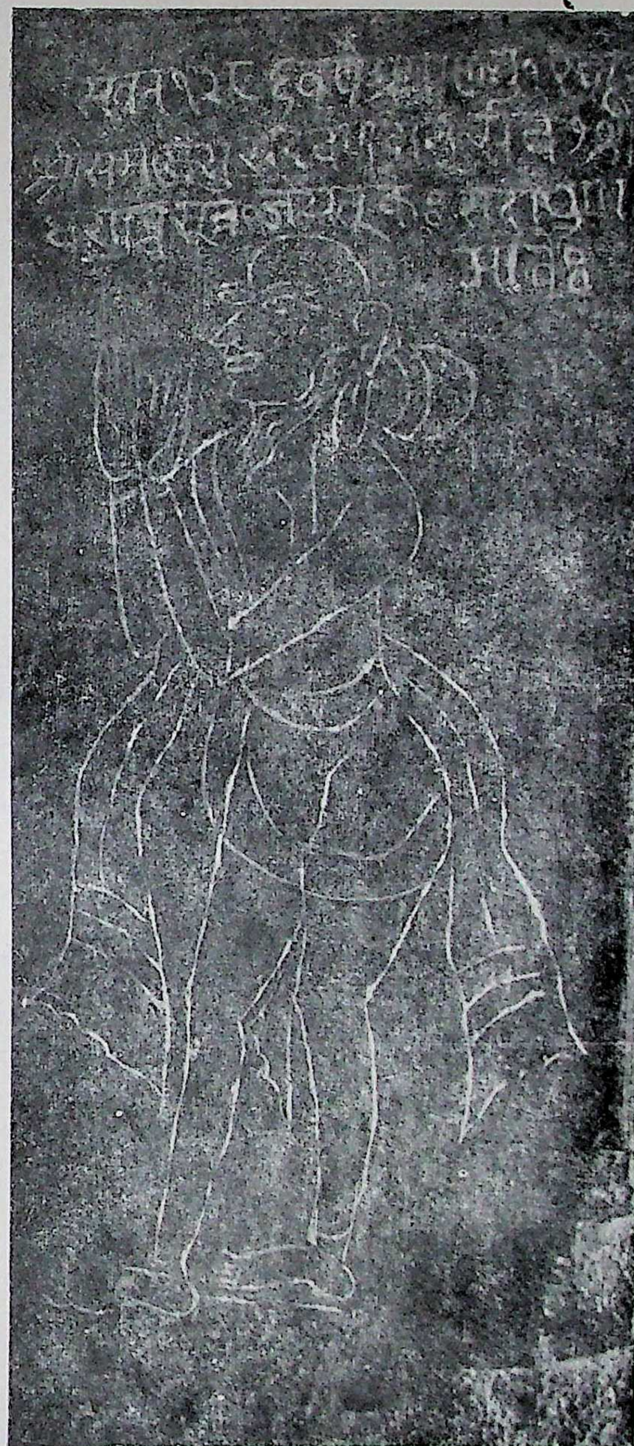
3. राजहंस (मृण्य पट्टिका)
400 ई. लगभग नगरी, चित्तौड़गढ
दकन कॉलेज संग्रह, पुना सौजन्य से

4. बतखें (उचित्र)
900 ई. लगभग प्रस्थर भग्नावशेष
चित्तौड़गढ़ दुर्ग से प्राप्त

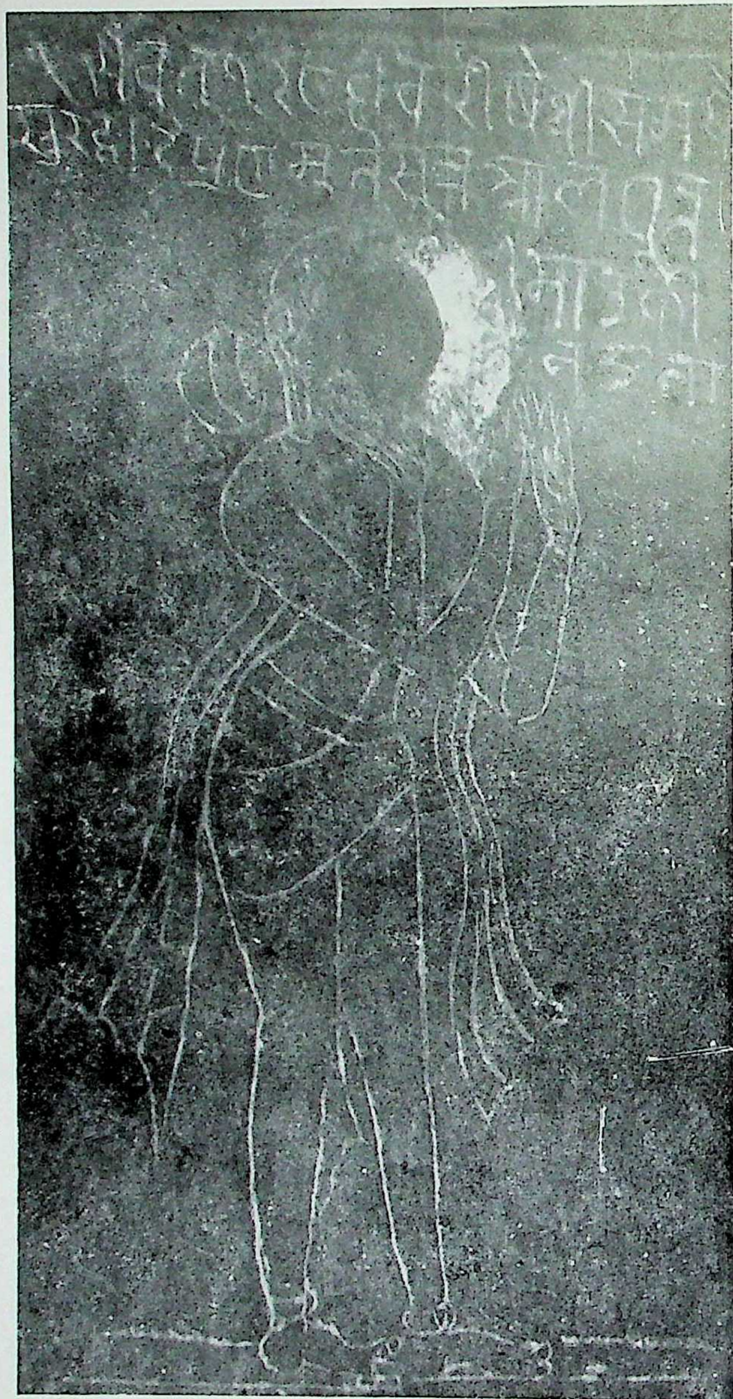




5. निर्माण के क्षण 1100 ई. लगभग नरथर का उचित्र समिद्धेश्वर महादेव मन्दिर, चित्तौड़गढ़



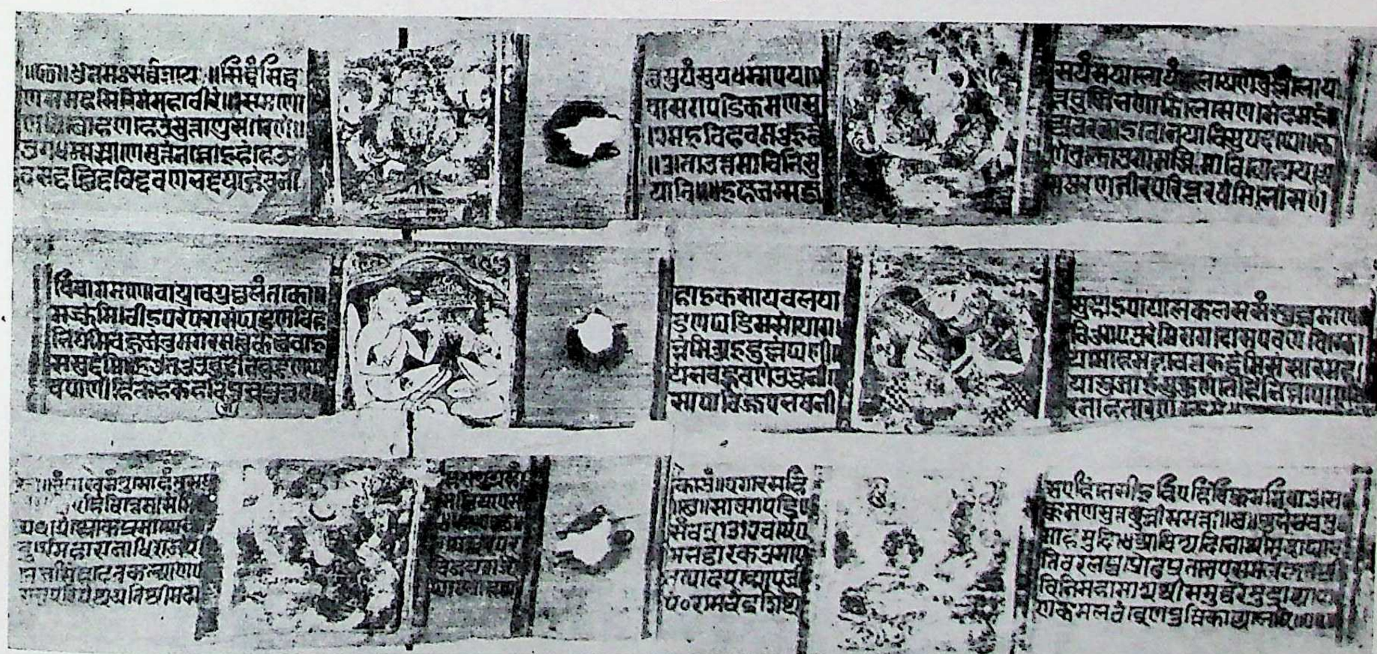
6. श्रीधर के पुत्र जैयतूकः
1229 ई. शिलोत्कीर्ण रेखांकन
समिद्धेश्वर महादेव मन्दिर, चित्तौड़गढ़



7. अराधना 'आलपुत्र माउकी'
1229 ई. शिलोत्कीर्ण रेखांकन
समिद्धेश्वर महादेव मन्दिर, चित्तौड़गढ़

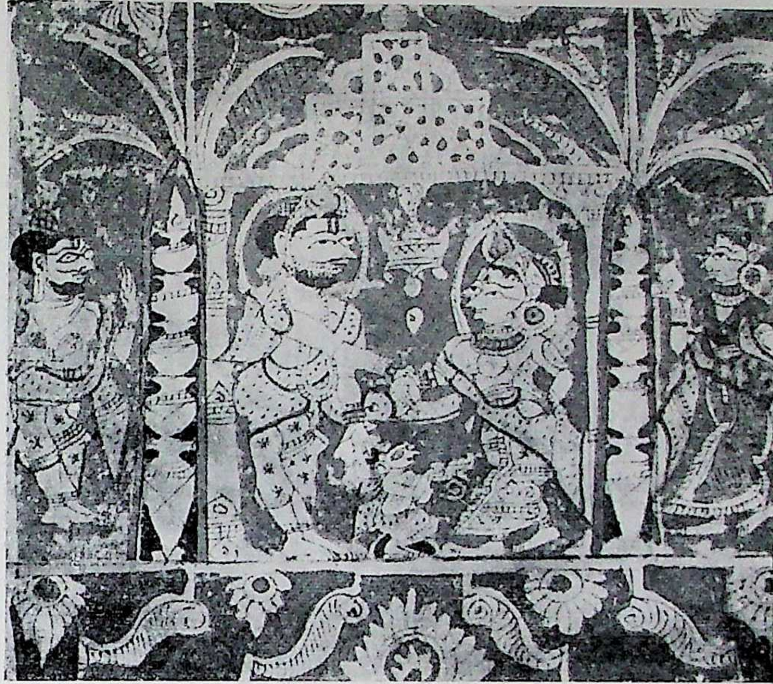


8अ. सरस्वती (विस्तारीय भाग)
1260 ई. सचित्र ताडपत्रित ग्रंथ, आहड़
बोस्टन संग्रहालय, अमेरिका

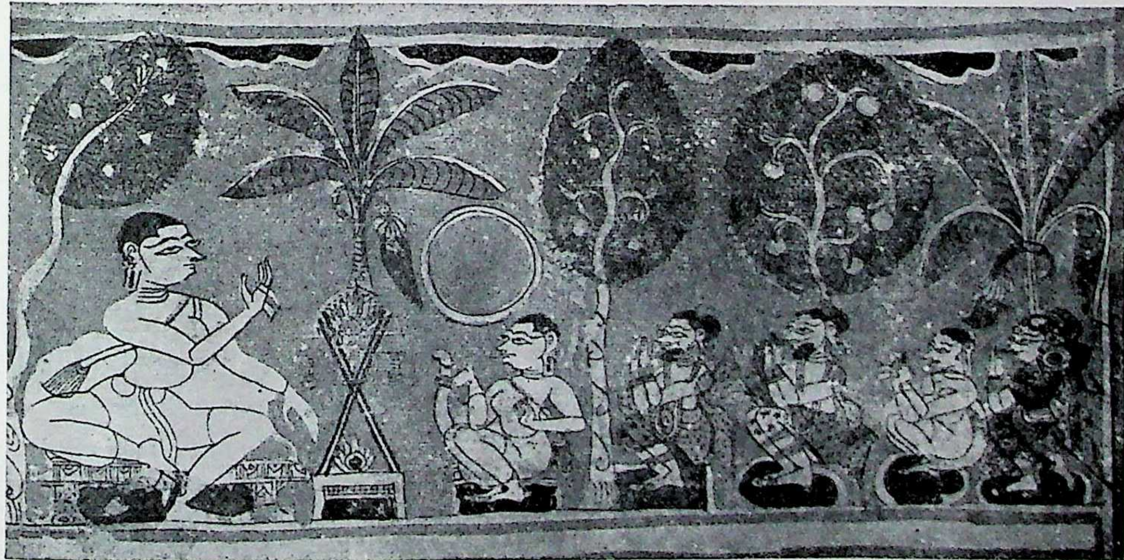


8ब. श्रावक प्रतिक्रमण सुत्त चूर्णी 1260 ई. सचित्र ताडपत्रित ग्रंथ आहड़ बोस्टन संग्रहालय, अमेरिका

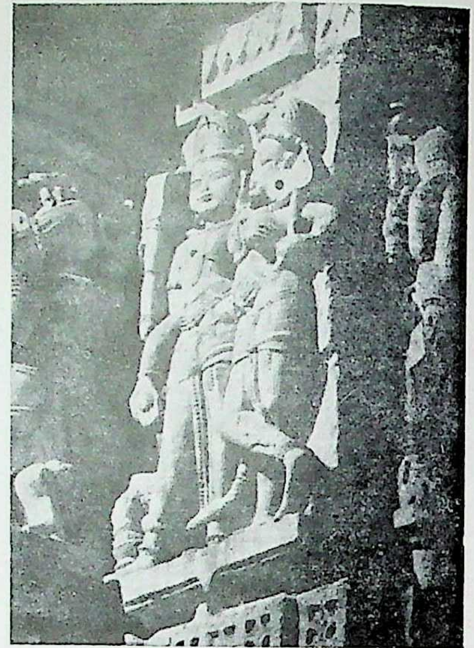
9. ज्ञानार्णव का सचित्र पृष्ठ
1428 ई. देलवाड़ा
लाल भा. द. भाई सं. वि. म., ग्रहमदाबाद



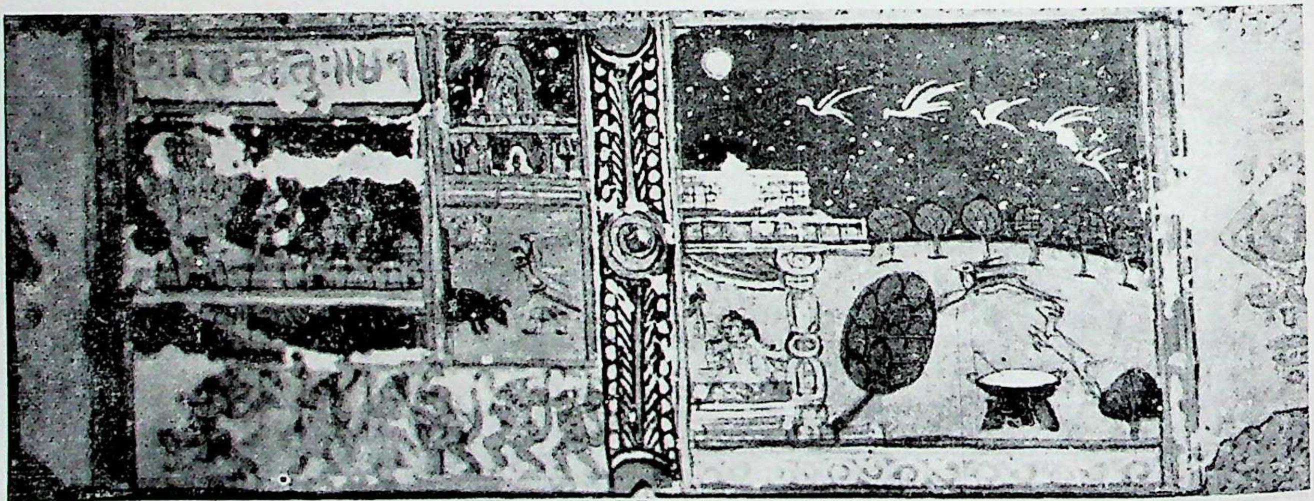
10. पाणिग्रहण 1423 ई. सुपार्सनाह चारियम् (देलवाड़ा)
श्रीहेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञान मन्दिर, पाटण



11. धर्मोपदेश 1423 ई. सुपार्सनाह चारियम् (देलवाड़ा) श्रीहेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञान मन्दिर, पाटण



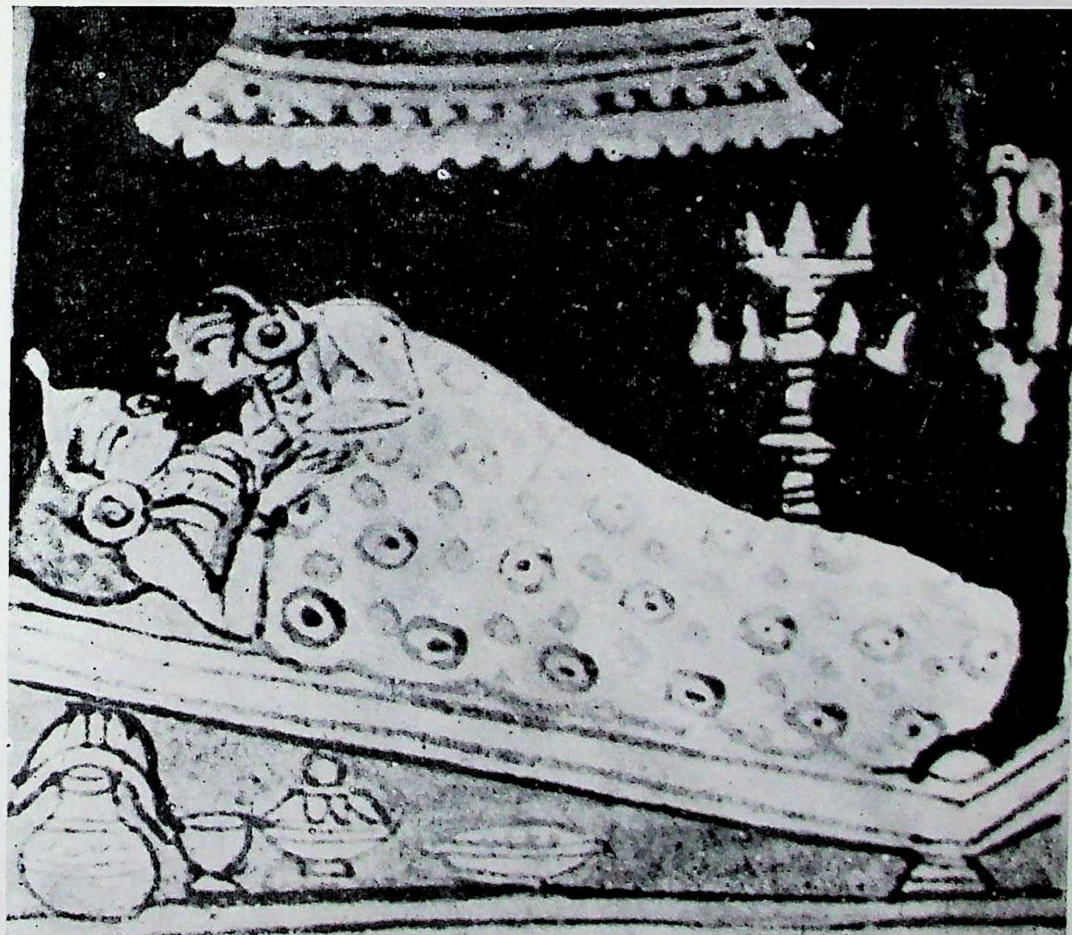
12अ. युगल प्रतिमा
1438 ई., महावीर जैन मन्दिर
चित्तौड़गढ़



12ब. शरद ऋतु
1435 ई., रसिकाष्टक
एक निजि संग्रह, बीकानेर

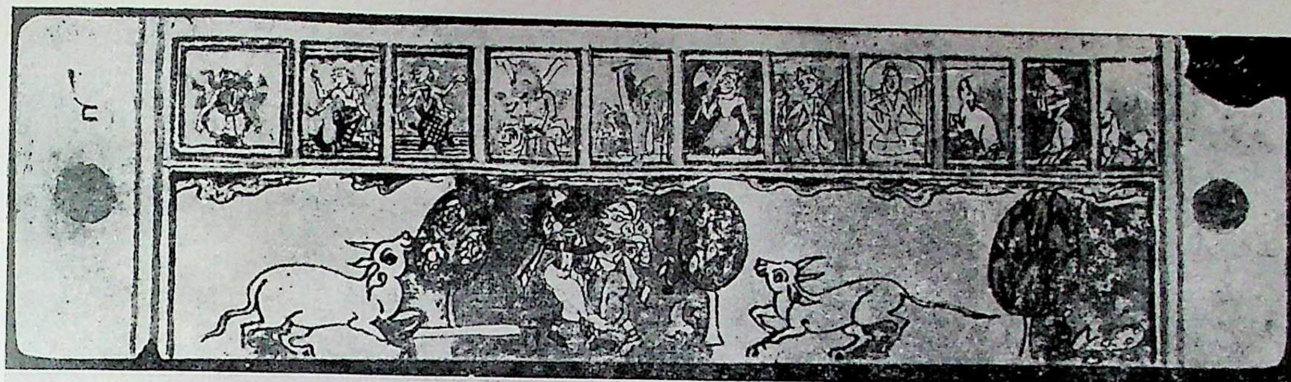


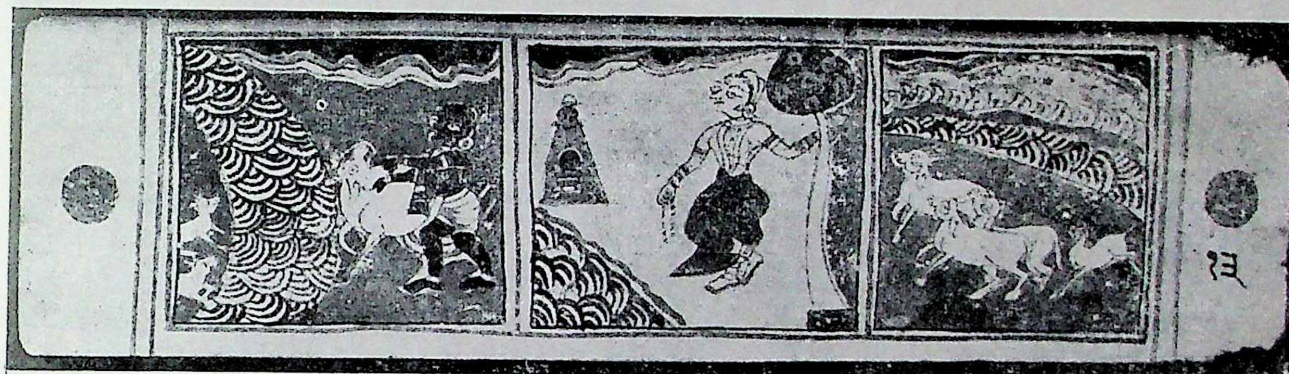
13. शयन 'गीत गोविन्द आख्यान के पृष्ठ'
1456 ई. लगभग, गोगुन्दा
अज्ञात संग्रह, जयपुर



14. युद्ध दृश्य
1520 ई. लगभग
अज्ञात संग्रह, न्यूयार्क

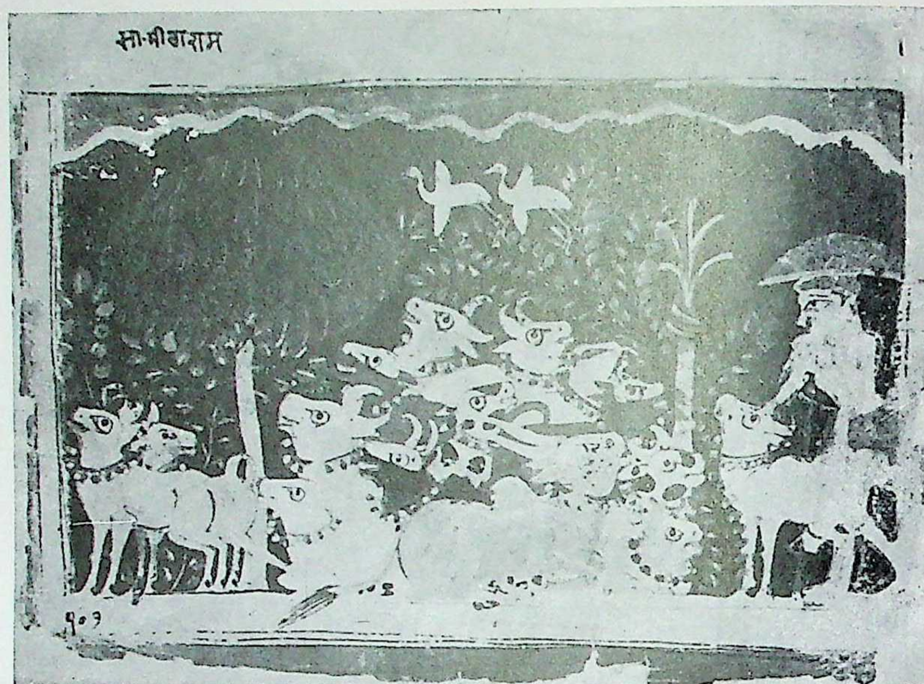








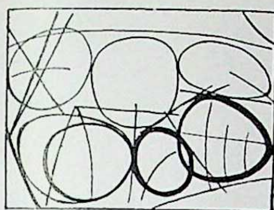
15. कृष्ण की लीलाएँ 9″ × 3″ 1545 ई. लगभग, जावर गीतगोविन्द सार के पृष्ठ, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली



16अ. पवित्र पशु 8¾"×6"
1525 ई. लगभग, भागवद पुराण
जैम्स आईवरी संग्रह, न्यूयार्क

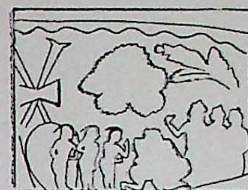


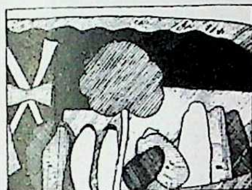
16ब. बालक कृष्ण का स्नान 8"×4¾", 1550 ई. लगभग, भागवत पुराण, माधुरी देसाई संग्रह, बम्बई



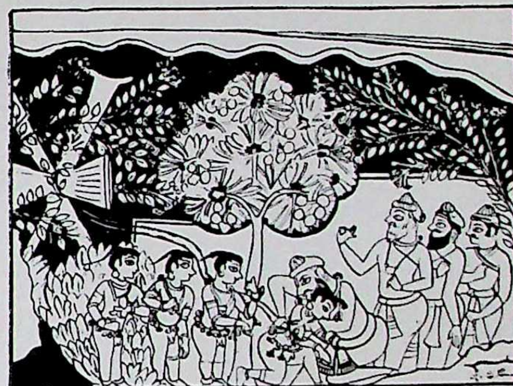
i

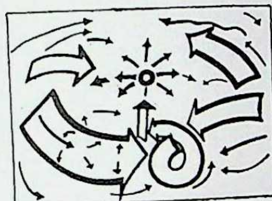
17. ऊखल बंधन (एक अध्ययन) 8½" × 6"
1575 ई. लगभग भागवत पुराण
कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर



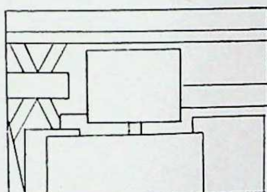


ii



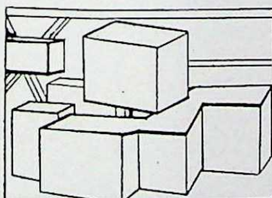


iii

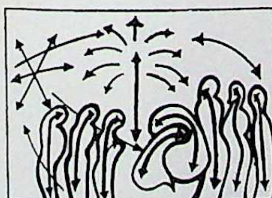


iv

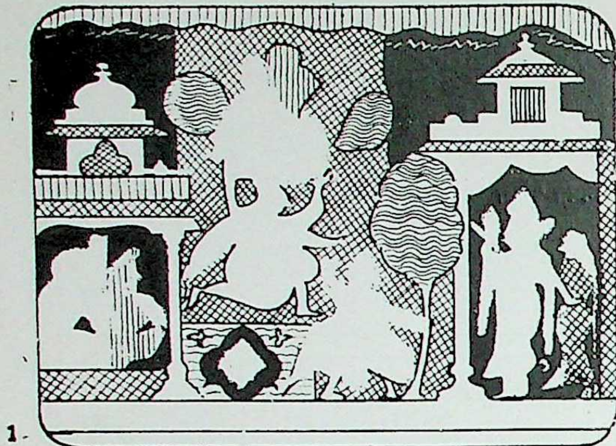


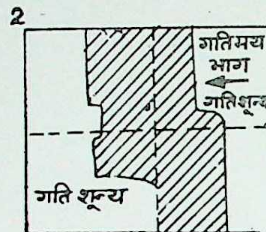


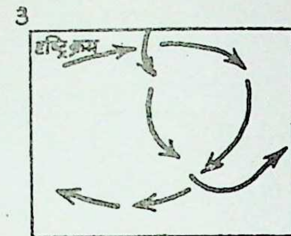
v



vi

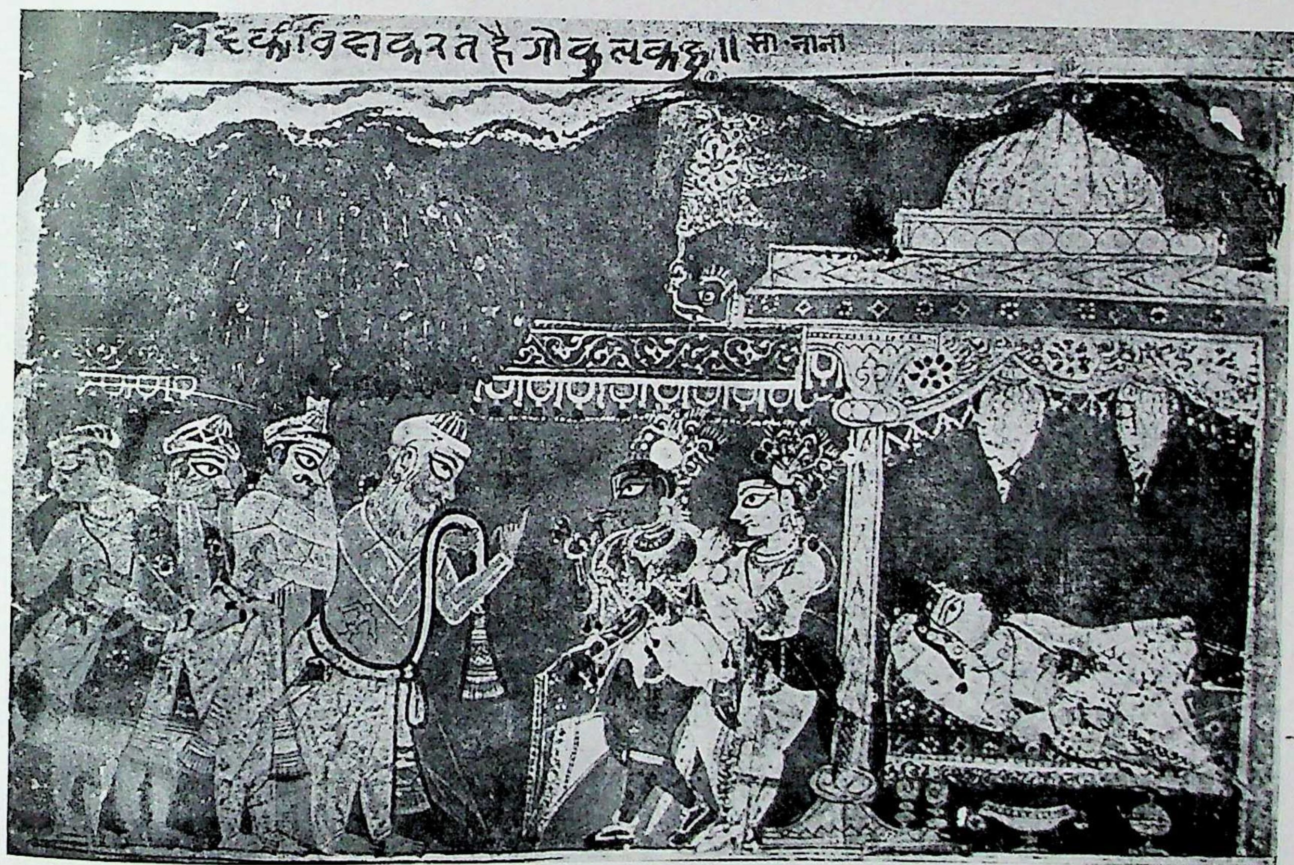
1. 

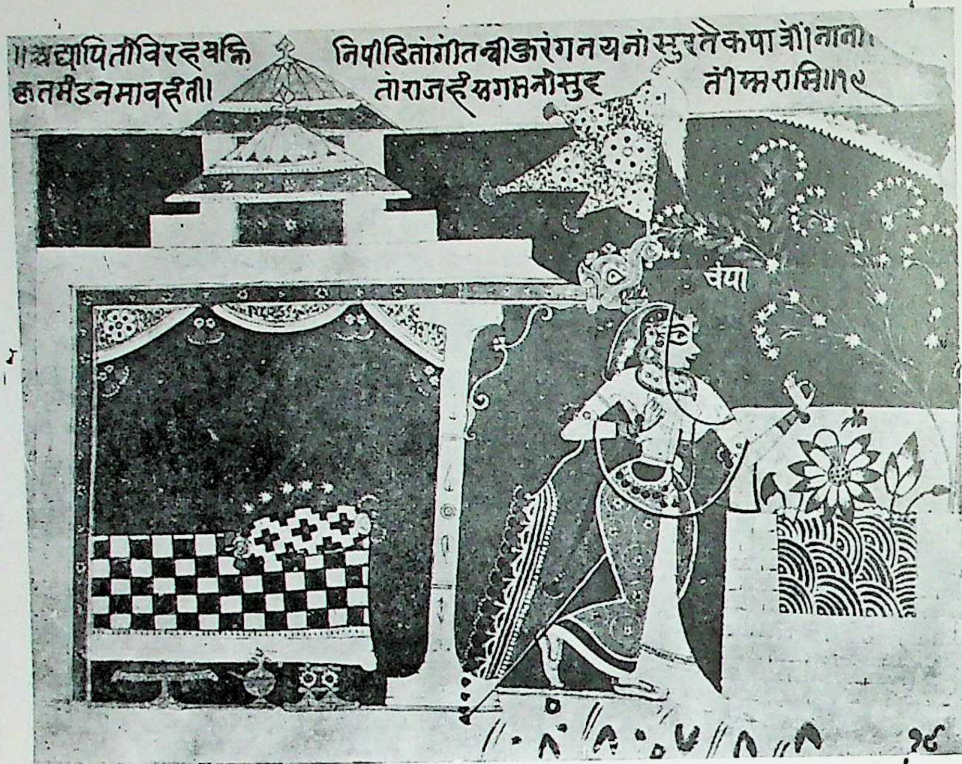
2. 

3. 

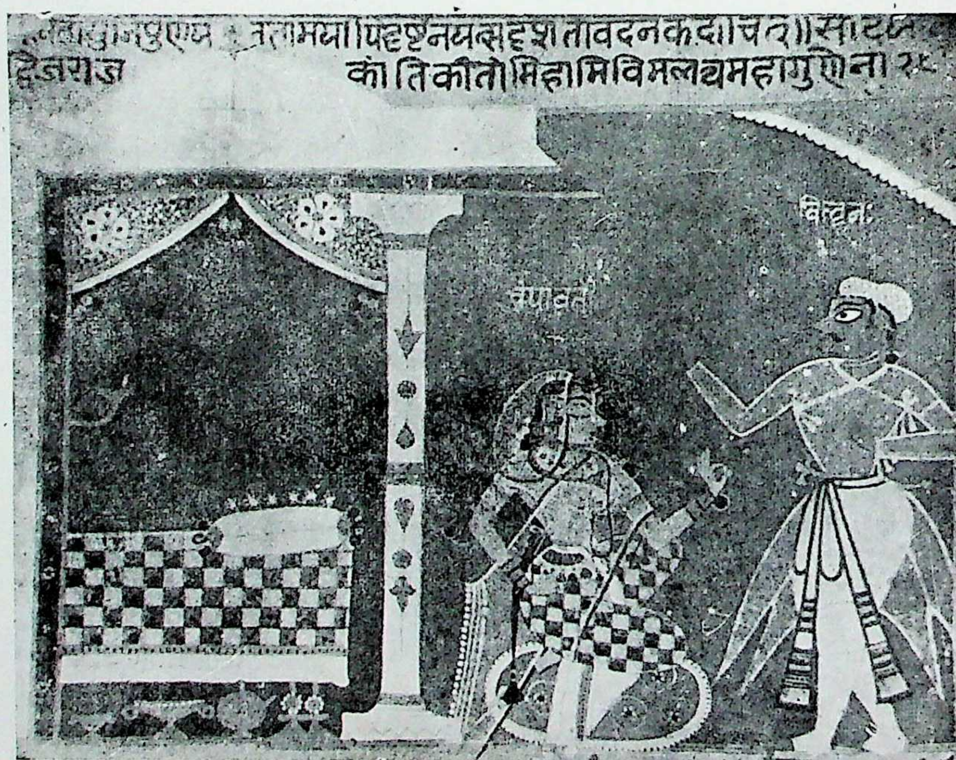
18अ. पारिजात अवतरण 8½"×6"
1540 ई. लगभग, भागवत पुराण
नस्ली हीरामणिक संग्रह, अमेरिका

18ब. नन्द की विदाई $8\frac{1}{2}'' \times 5\frac{1}{2}''$
1580 ई, भागवत पुराण
राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली



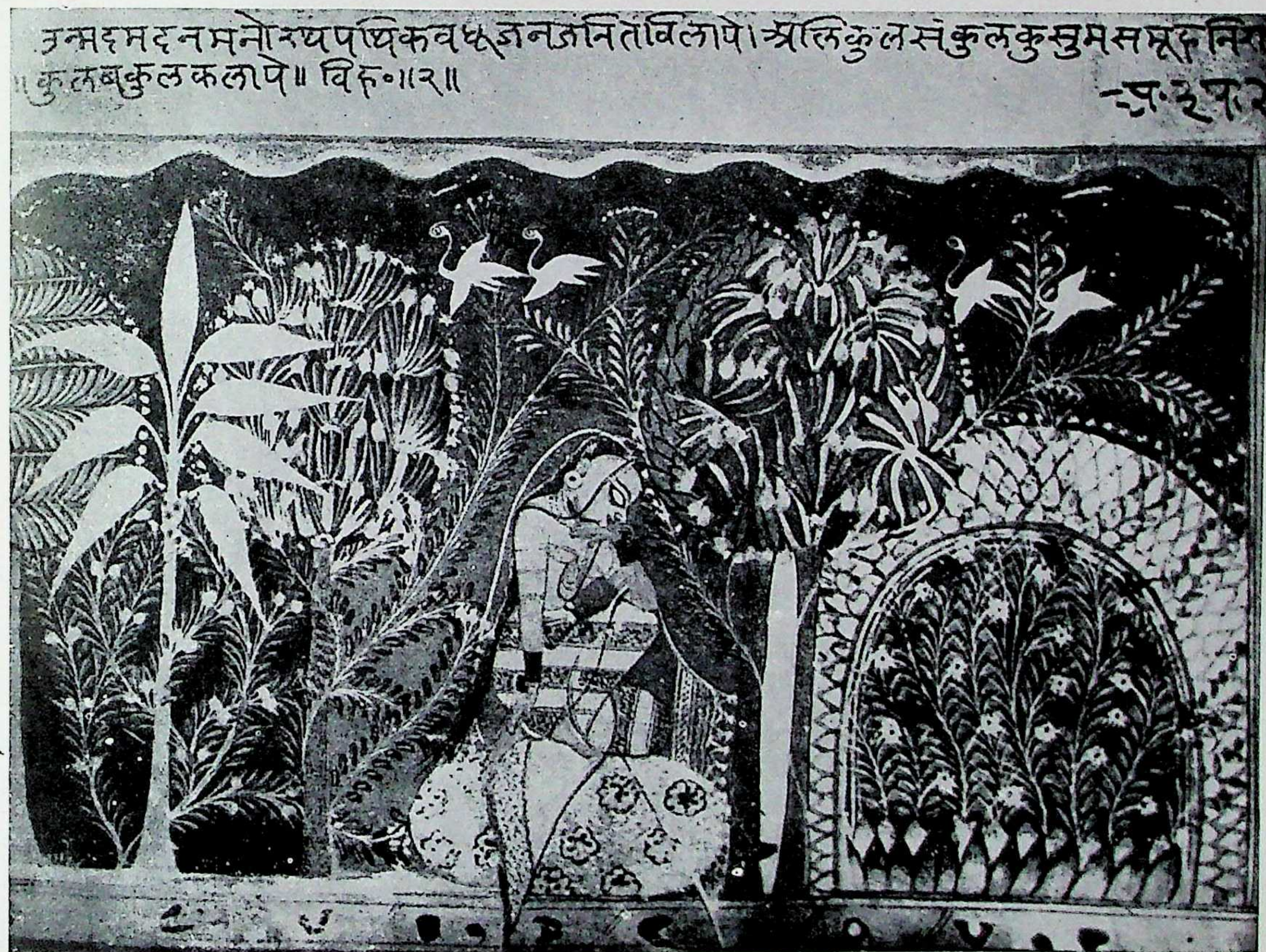


19अ. कमल कुन्ज पर चम्पावती 8½"×6", 1550 ई. लगभग, चौरपंचासिका, संस्कार केन्द्र, अहमदाबाद



19ब. विल्हण एवं चम्पावती 8½"×6", 1550 ई. लगभग चौरपंचासिका, संस्कार केन्द्र, अहमदाबाद

20. विरहणी राधा $8\frac{1}{2}$" × 6"
1550 ई. लगभग, गीतगोविन्द
प्रिंस ऑफ वैल्स संग्रहालय, बम्बई



21. सुभद्रा एवं अर्जुन का विवाह $8\frac{1}{2}" \times 6\frac{1}{2}"$
1550 ई. लगभग, भागवत पुराण
राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली





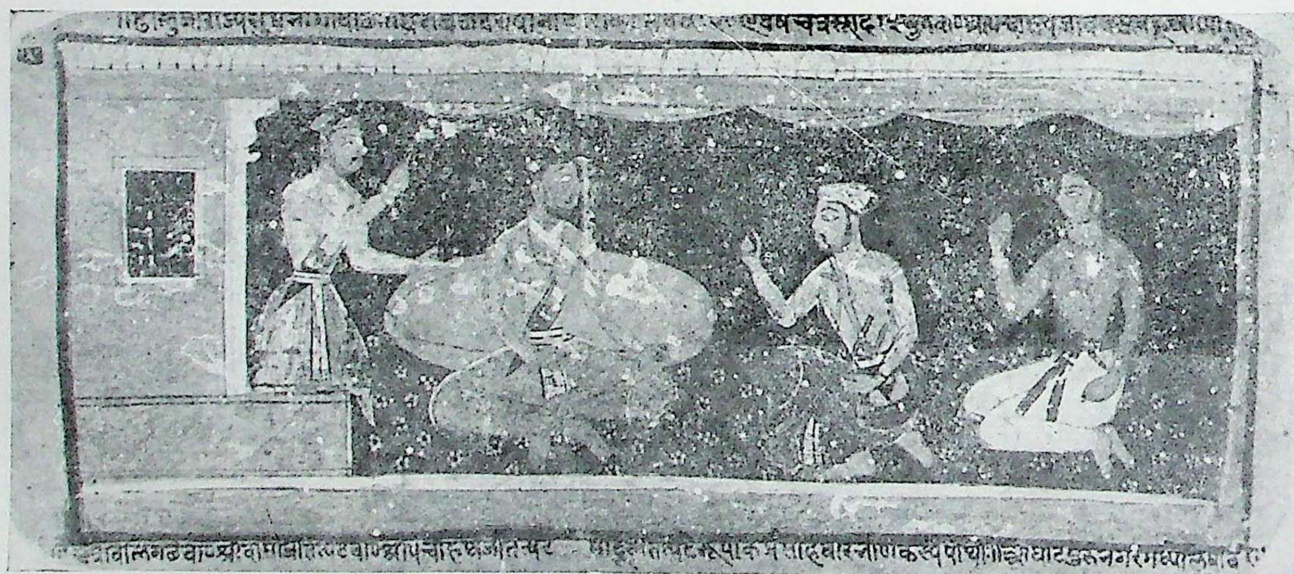
22अ. घुड़सवारों के काफिले, 1592 ई. लगभग, ढोलामारू री चौपाई, आहड़, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली



22ब. शिकारी, 1592 ई. लगभग, ढोलामारू री चौपाई, आहड़, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली



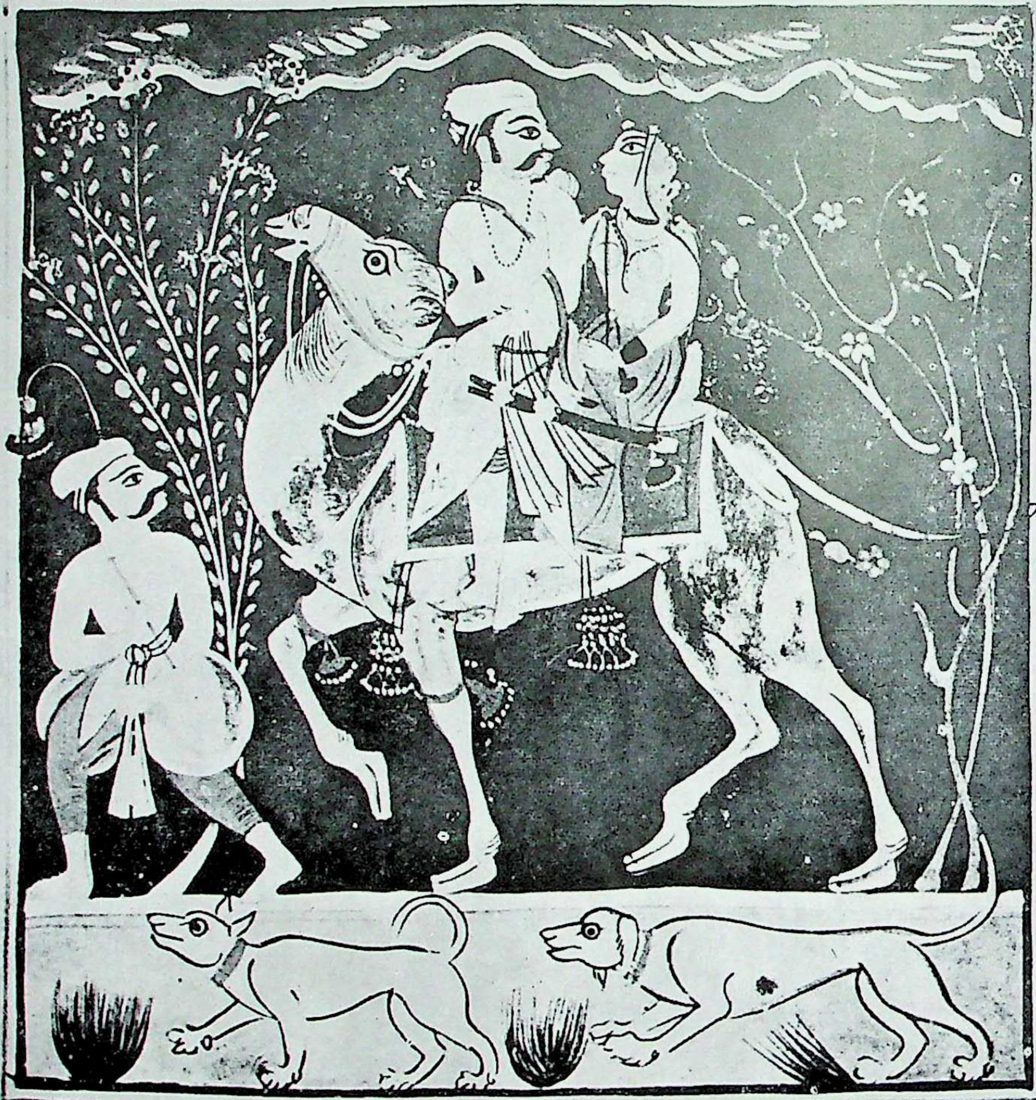
22स. ढोला व मारूणी की वार्ता, 1620 ई. लगभग, ढोलामारू री चौपाई, आहड़, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली



23. ढोलूजी पुष्पिका, 1620 लगभग, ढोलामारू री चौपाई, आहड़, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

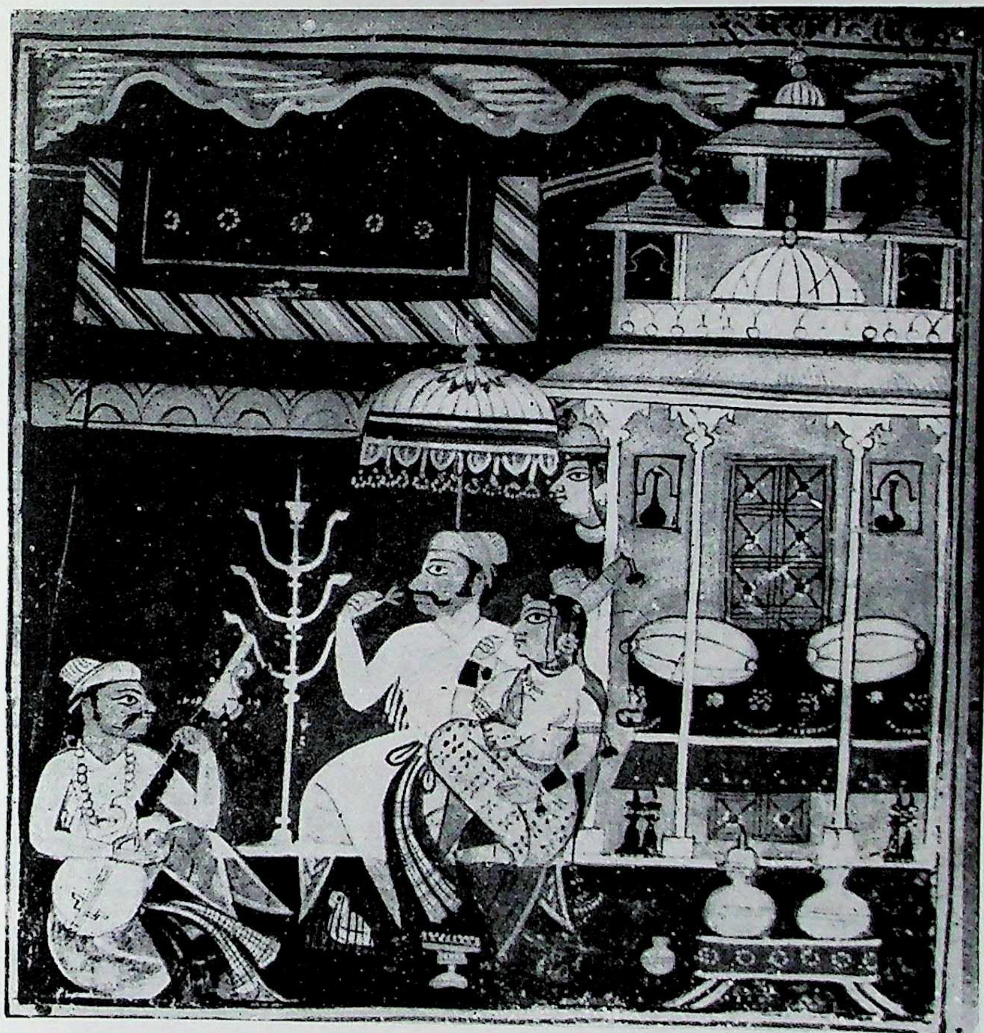
24. राग केदार $5\frac{1}{2}''\times10''$, 1608 ई., रागमाला गिलूण्ड, बड़ौदा संग्रहालय, बड़ौदा

25. राग गूजरी $5\frac{1}{3}''\times10''$, 1608 ई. रागमाला गिलूण्ड, बड़ौदा संग्रहालय, बड़ौदा



26अ. मारू राग (तिथि युक्त)
1605 ई., चावण्ड
गोपीकृष्ण कानोडिया संग्रह, कलकत्ता

26ब. दीपक राग
1605 ई., चावण्ड
गोपीकृष्ण कानोडिया, कलकत्ता





27अ. वन गमन $5\frac{1}{2}'' \times 6\frac{1}{2}''$
1615 ई. लगभग, रसिक प्रिया
राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली



27ब. मारूराग रागिनी $6'' \times 8\frac{1}{2}''$
1628 ई., साहीबदीन, उदयपुर
राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

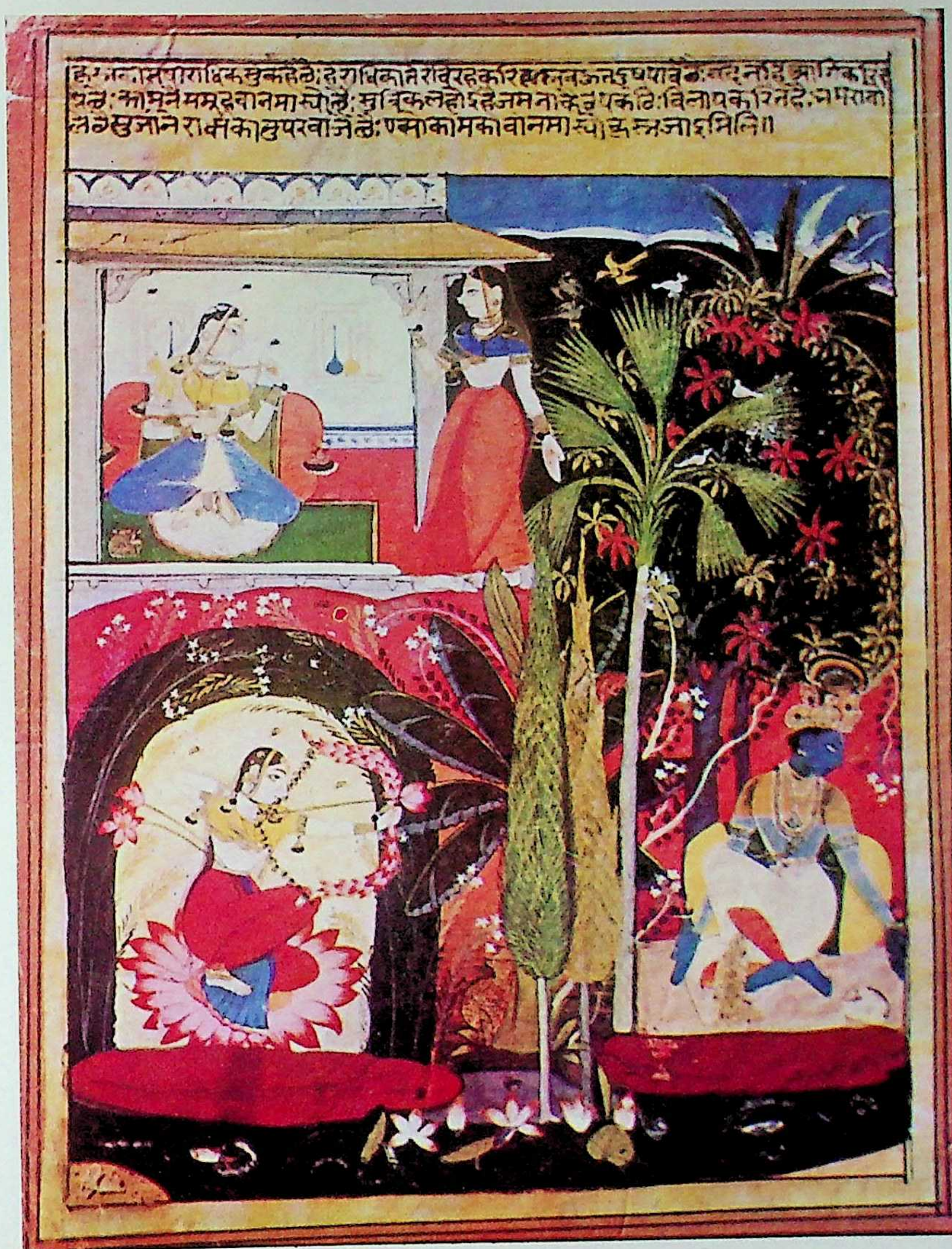


28. मेघमल्हार 6" × 8½"
1628 ई. साहीबदीन, उदयपुर
राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली



29. हिण्डोल राग 9" × 7½"
1605 ई. लगभग, चावण्ड
वेदपाल शर्मा 'बन्नू' संग्रह, जयपुर





30. काम बाण 15" × 9"
1630 ई. लगभग गीत गोविन्द
कुंवर संग्रामसिंह संग्रहालय, जयपुर

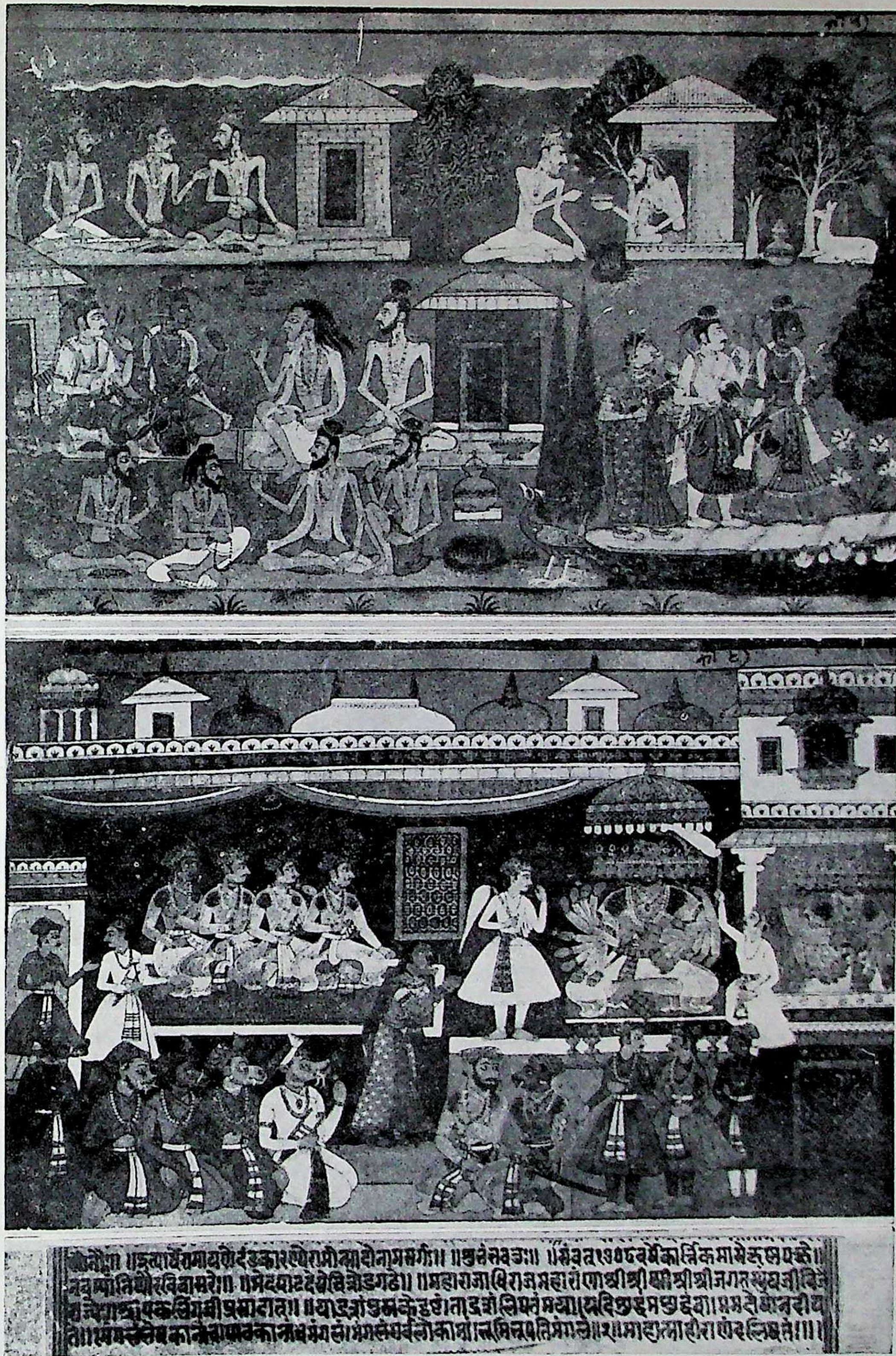




31. प्रतीक्षा $6\frac{1}{2}'' \times 8''$
1650 ई. लगभग, रसिकप्रिया
राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

32. परशुराम मिलन 10⅓"×6"
1649 ई., चि. मनोहर
प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय, बम्बई





33, 34. तापस आश्रम में राम 5" × 9" एवं रावण के दरबार में सूर्पणखा 15½" × 9" 1651 ई.
आर्ष रामायण, प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान शाखा, उदयपुर



35. ग्रनवन 9$\frac{1}{3}$"×7", 1650 ई. लगभग, गीतगोविन्द, कुंवर संग्रामसिह संग्रह, जयपुर



36. युद्ध क्षेत्र 15$\frac{1}{2}$×"9", 1660 ई. लगभग महाभारत, प्रताप राजकीय संग्रहालय, उदयपुर



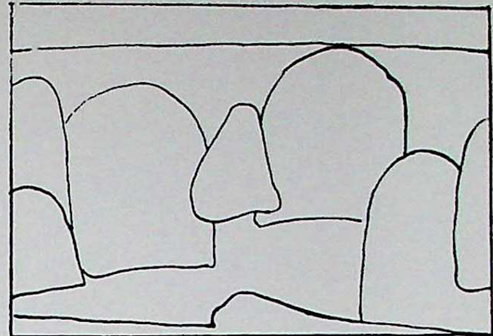
37. रावण जटायु युद्ध 15½" × 9"
1651 ई. आर्य रामायण
प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, शाखा उदयपुर



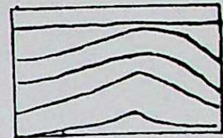


38. शृंगार क्रीड़ा 15" × 9"
1714 ई. गीत गोविन्द
राजकीय प्रताप संग्रहालय, उदयपुर



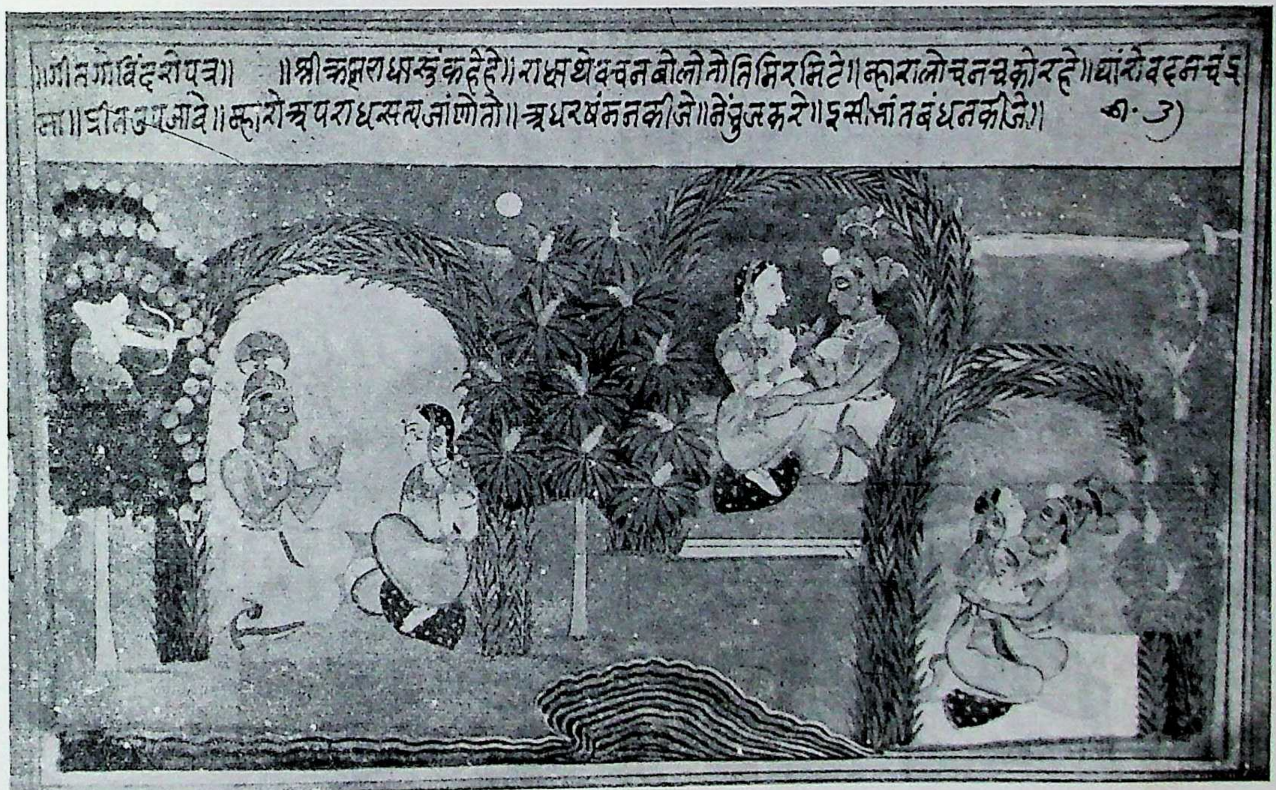


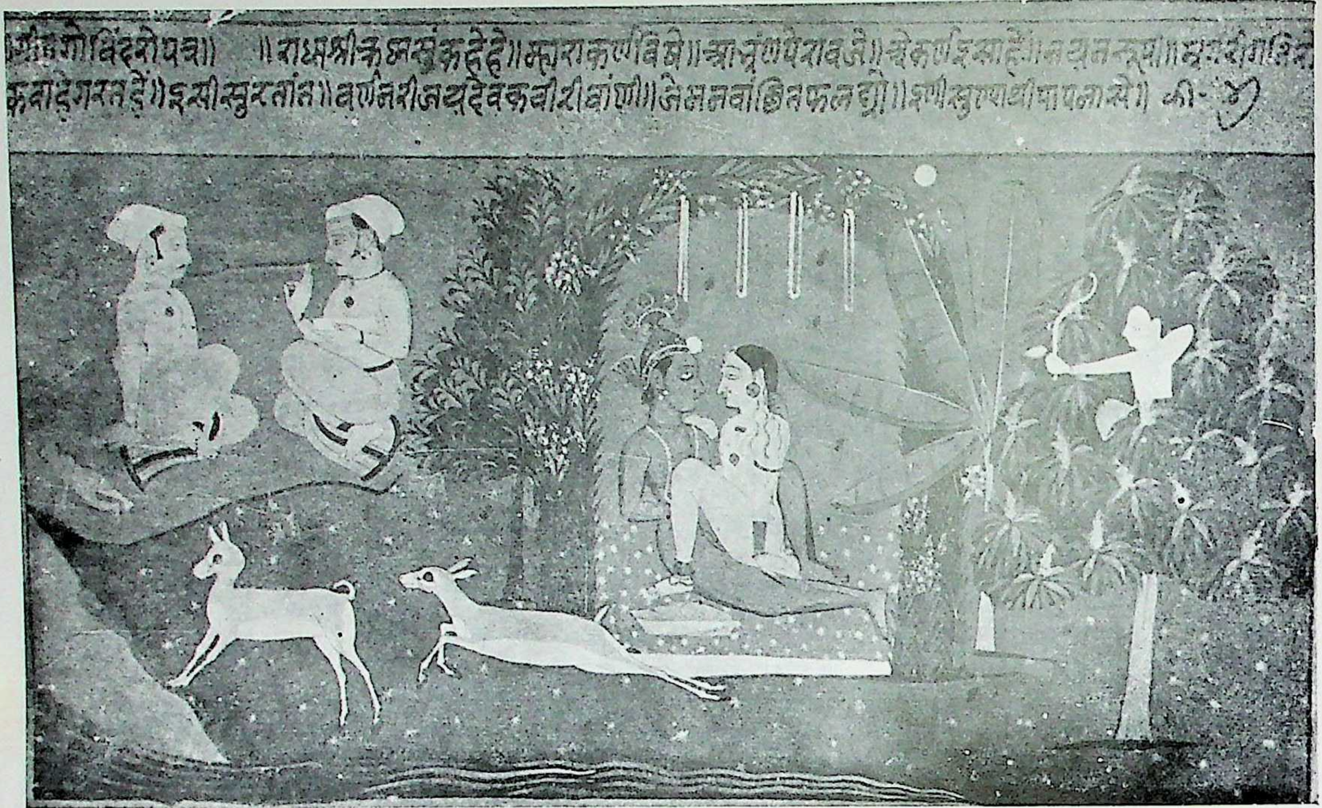
निर्माणात्मक रेखाऐं



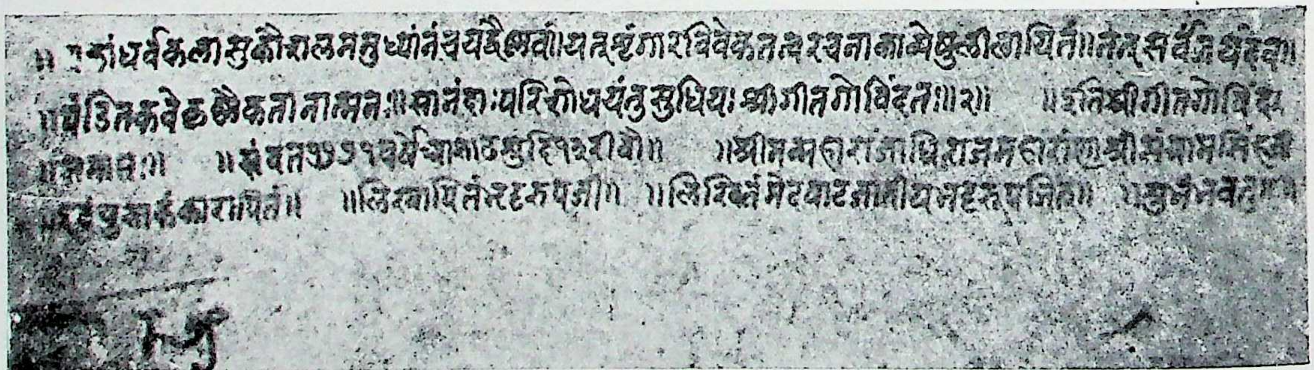
दृष्टिक्रम एवं प्रवाह

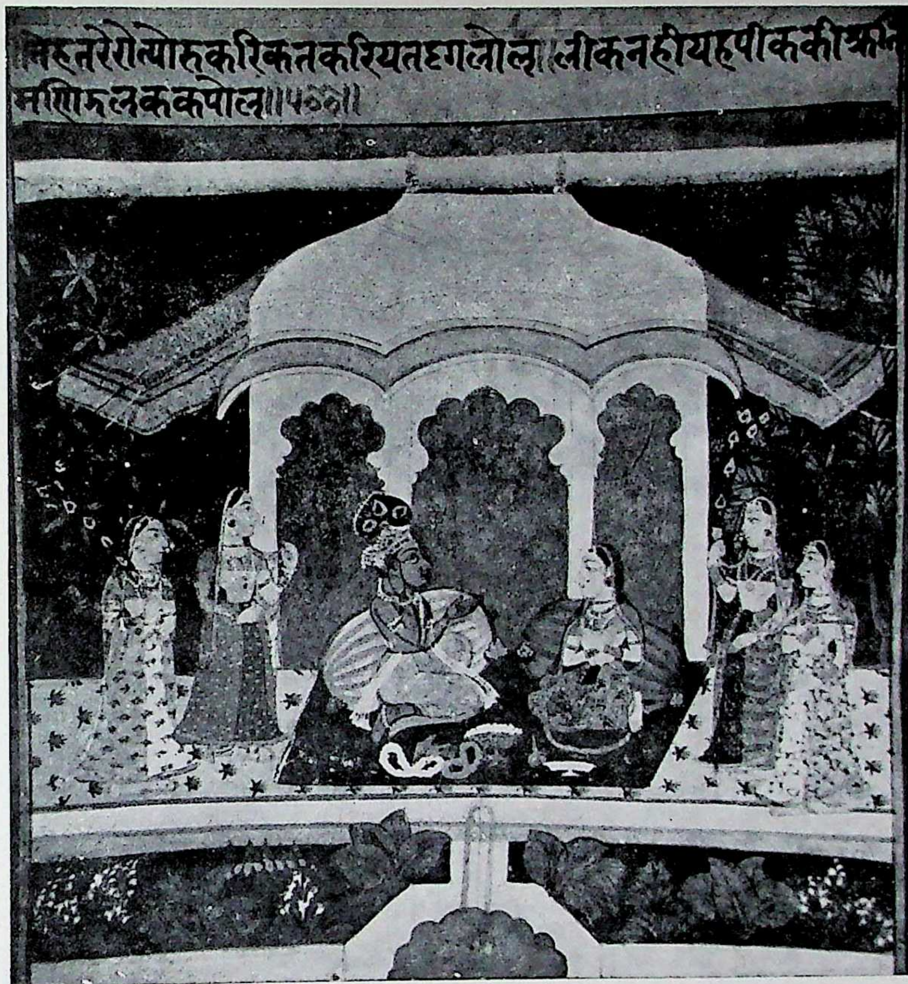
40. राधा व कृष्ण की प्रेम क्रीड़ाऐं 15" × 9"
1714 ई. गीतगोविन्द,
राजकीय प्रताप संग्रहालय, उदयपुर





41. रतिचित्र एवं पुष्पिका 15"×9", 1714 ई. गीतगोविन्द, राजकीय प्रताप संग्रहालय, उदयपुर





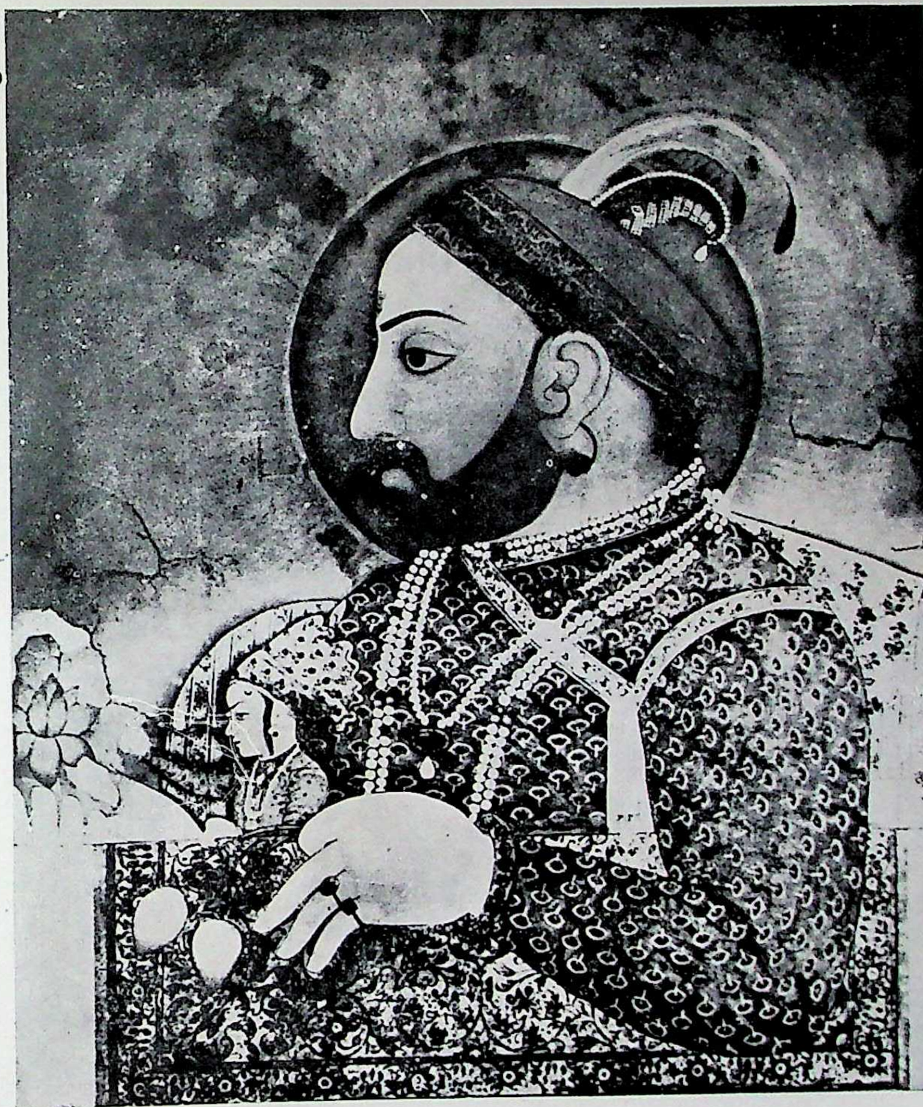
42. राधा एवं कृष्ण 9"×9"
1719 ई. बिहारी सतसई, चि. जगन्नाथ
कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर

॥सत्रहसैनुछहत्तराबैनमासमास्तुरान। रूसपतगुरुपंचमी
।सोत्यानुचित्रममाज॥२॥महारानसंग्रामकेसरसकुन
रकाज॥क॥वाचिचित्रनसतसईजगनाथकविरान॥
॥इतिश्रीबिहारीसतसईसंपूर्णम्॥ ॥श्री

पुष्पिका—रा. सरस्वती भण्डार पुस्तकालय, उदयपुर के सम्पुट से

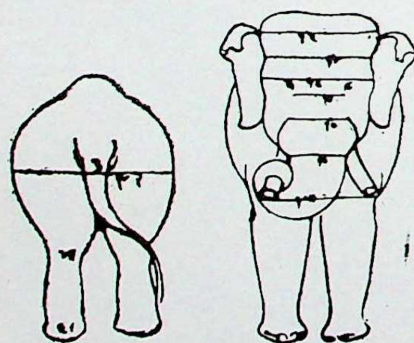


43अ. पृथ्वीसिंह देवलिया 8"×11", 1720 ई. प्रतापगढ़, कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर

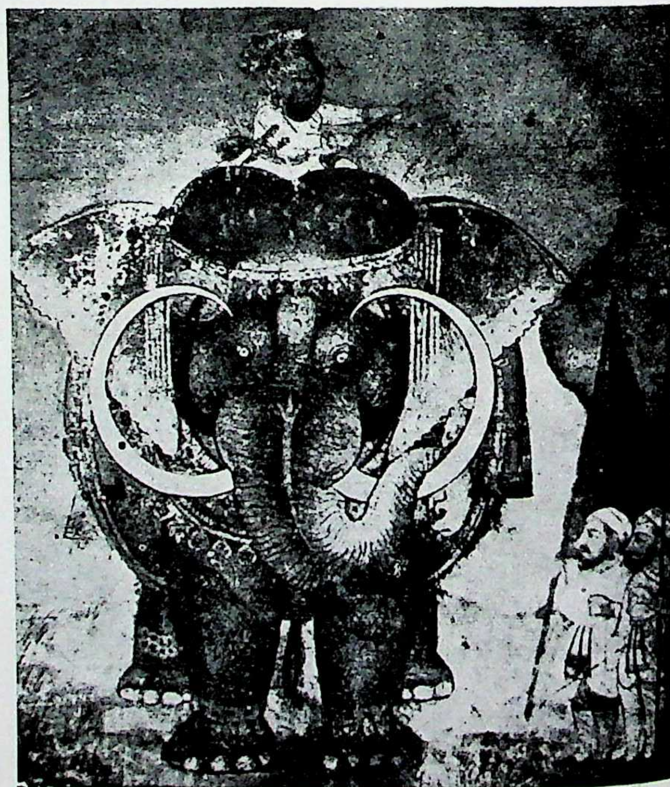


43ब. महाराणा संग्रामसिंह द्वि. 18"×24"
1720 ई. व्यक्ति चित्र,
कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर

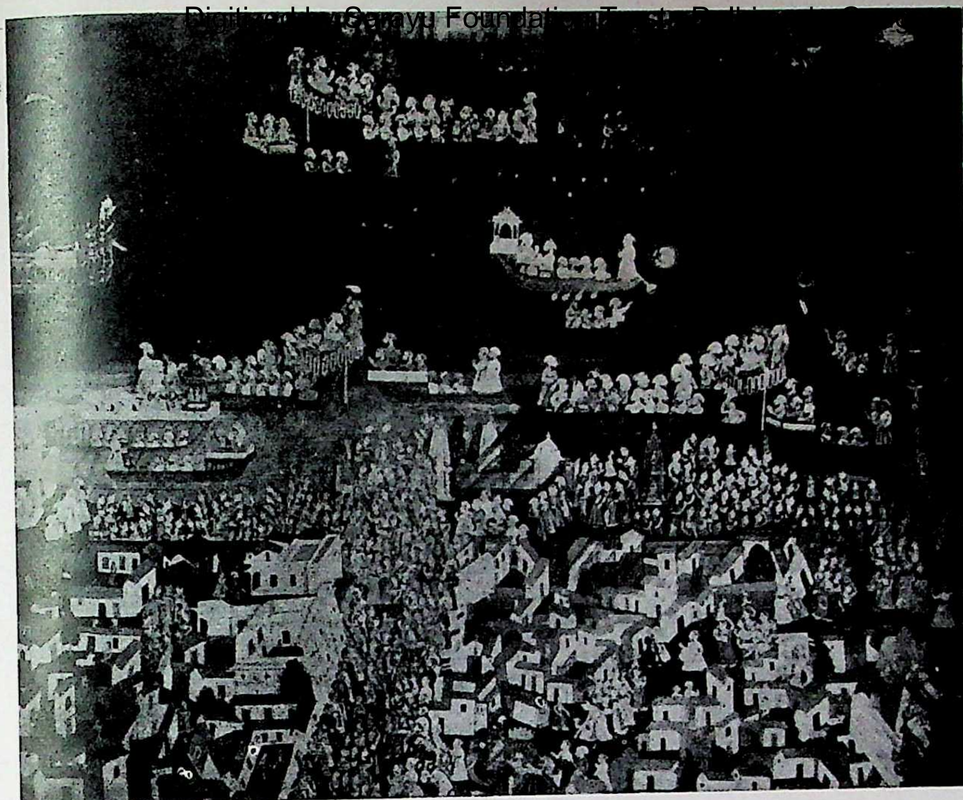
44. जगमन्दिर में मनो विनोद 24"×21", 1720 ई. लगभग, कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर



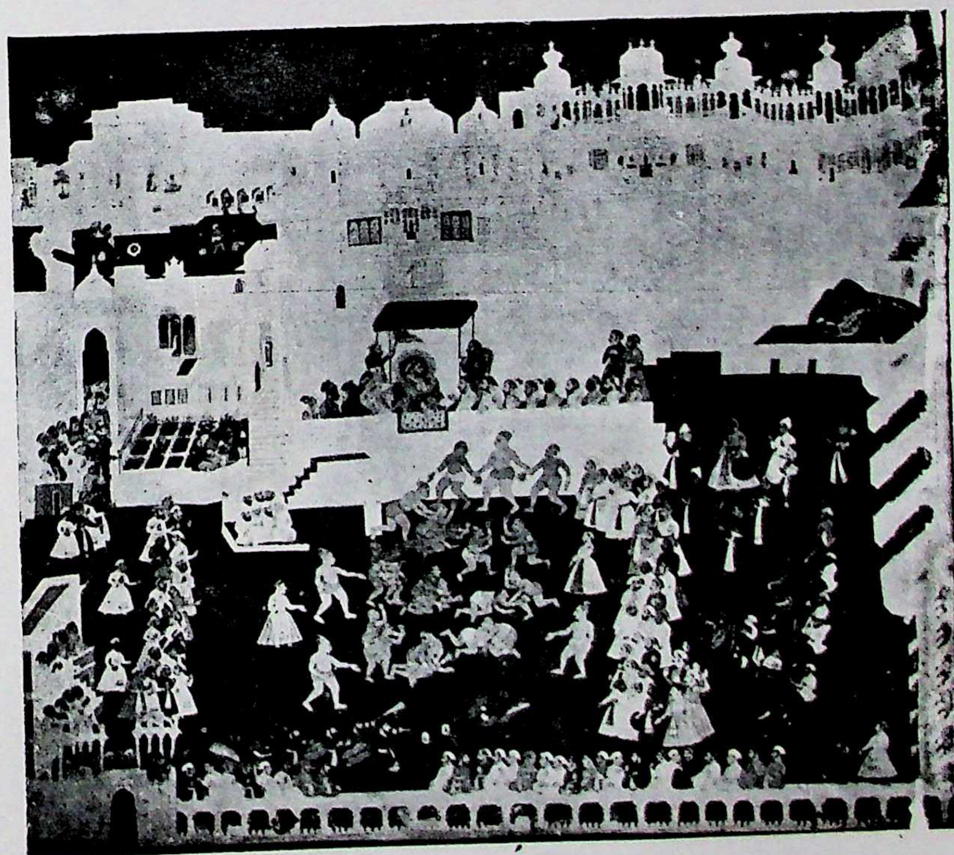
45अ. हाथी को अभ्यास रेखाएें



45ब. वृहद दन्त हाथी 6"×8"
1745 ई. लगभग
दामोदर सोनी संग्रह, उदयपुर



46. धींगा गणगौर 28" × 28"
1725 ई. लगभग
राजप्रसाद संग्रहालय, उदयपुर



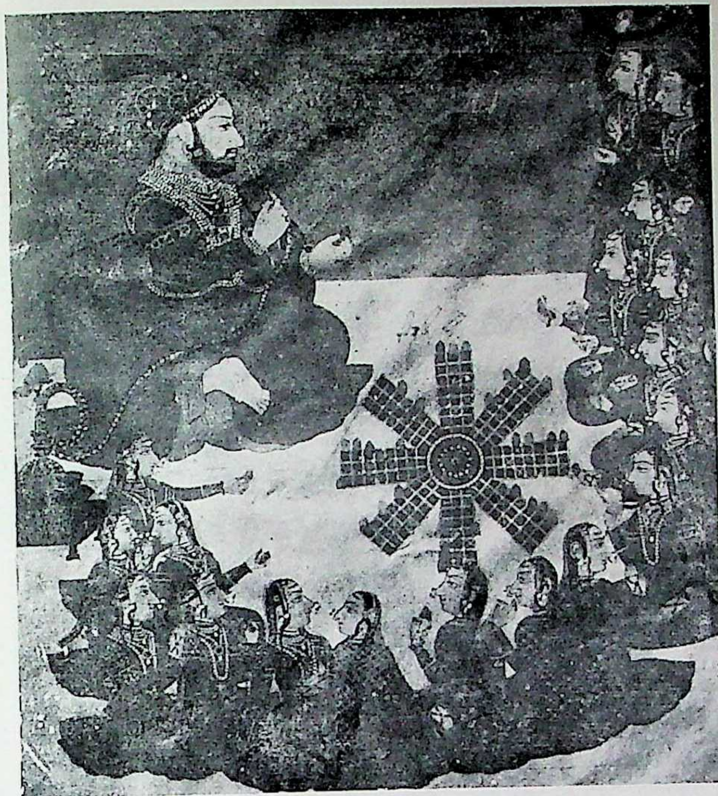
47. जेठियों की कुश्ती 34" × 29"
1720 ई. लगभग
राजप्रसाद संग्रहालय, उदयपुर





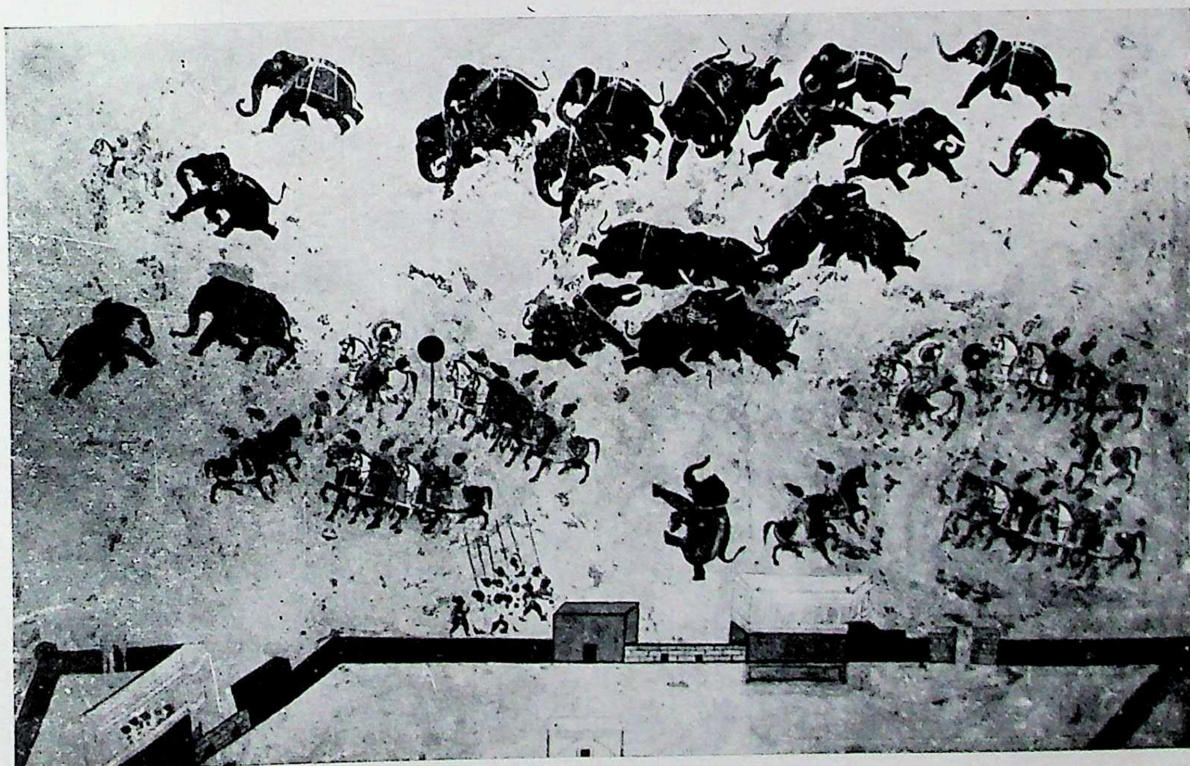
48अ. कृपण 9" × 15"
1750 ई. लगभग, मुल्ला दो प्याजा
राजकीय प्रताप संग्रहालय, उदयपुर

48ब. बाजार का दृश्य 1" × 50"
1750 ई. लगभग, विज्ञप्ति पत्र
साराभाई केमीकल्स, अहमदाबाद

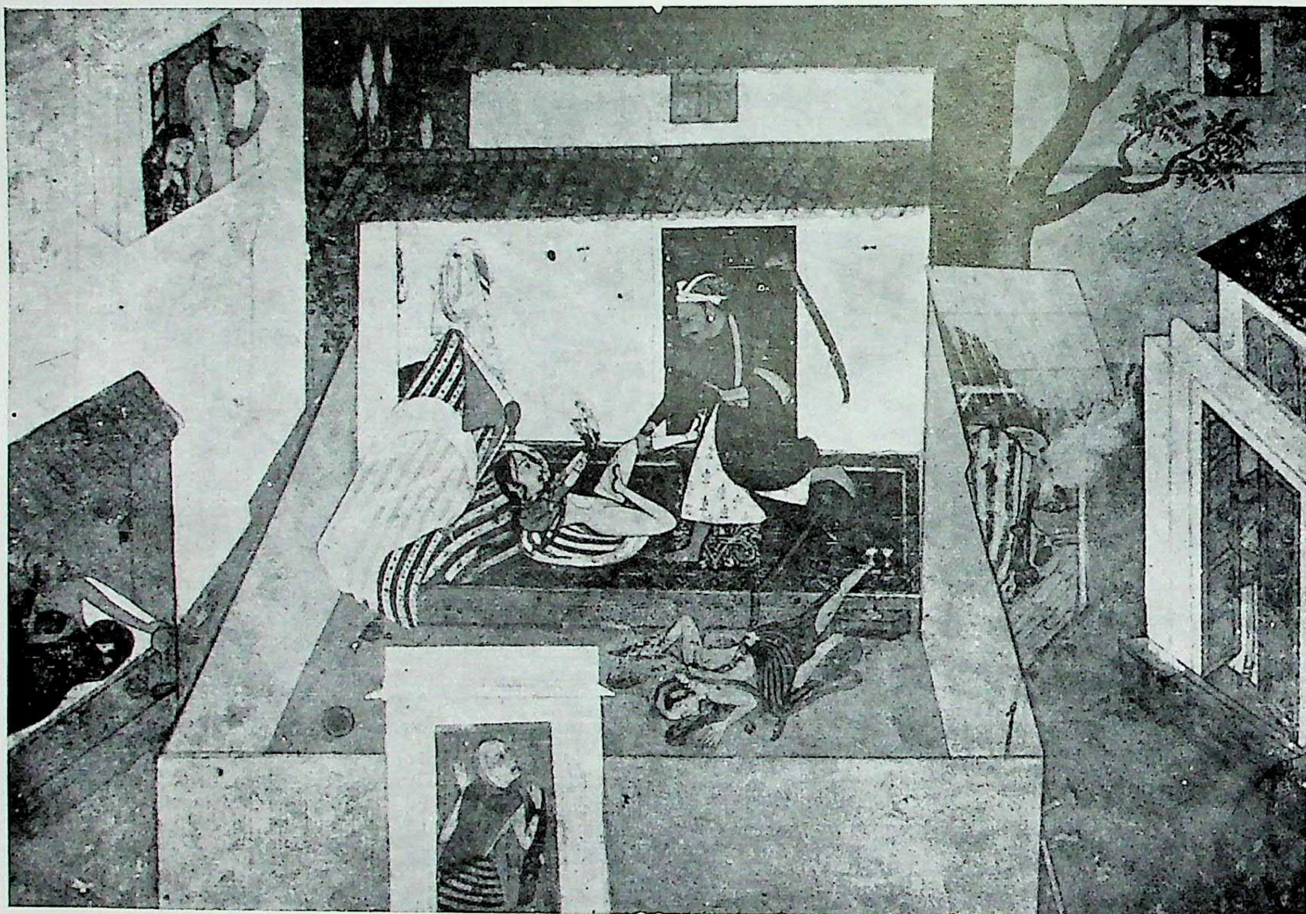


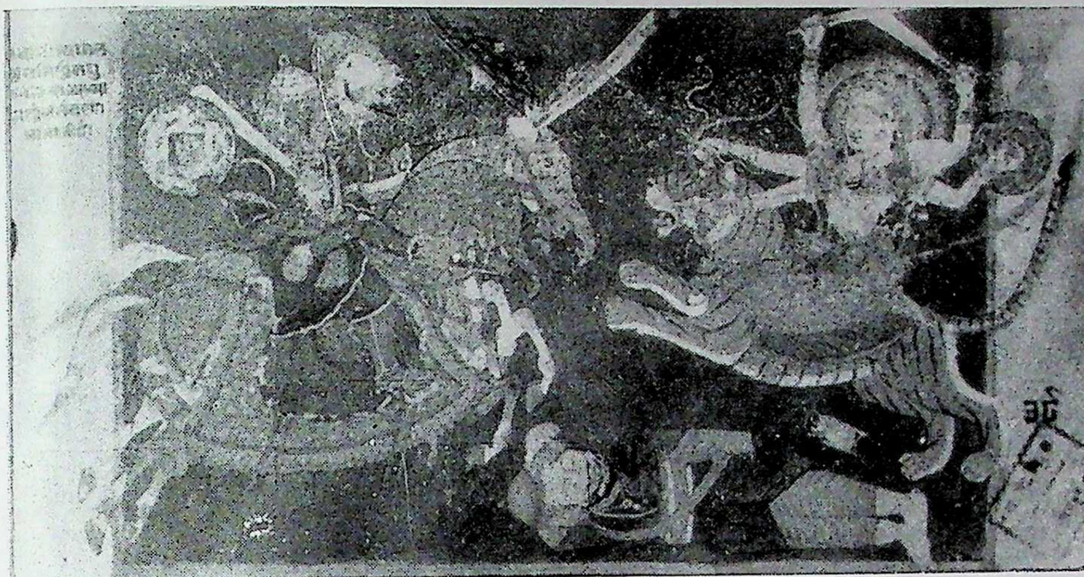
49. रानियों के साथ अटखड़ खेल 9" × 15"
1743 ई. लगभग
पुरुषोत्तम कन्हैयालाल सोनी संग्रह, उदयपुर

50. हाथियों की क्रीड़ायें 40½" × 29"
1750 ई. लगभग,
राजप्रसाद संग्रहालय, उदयपुर

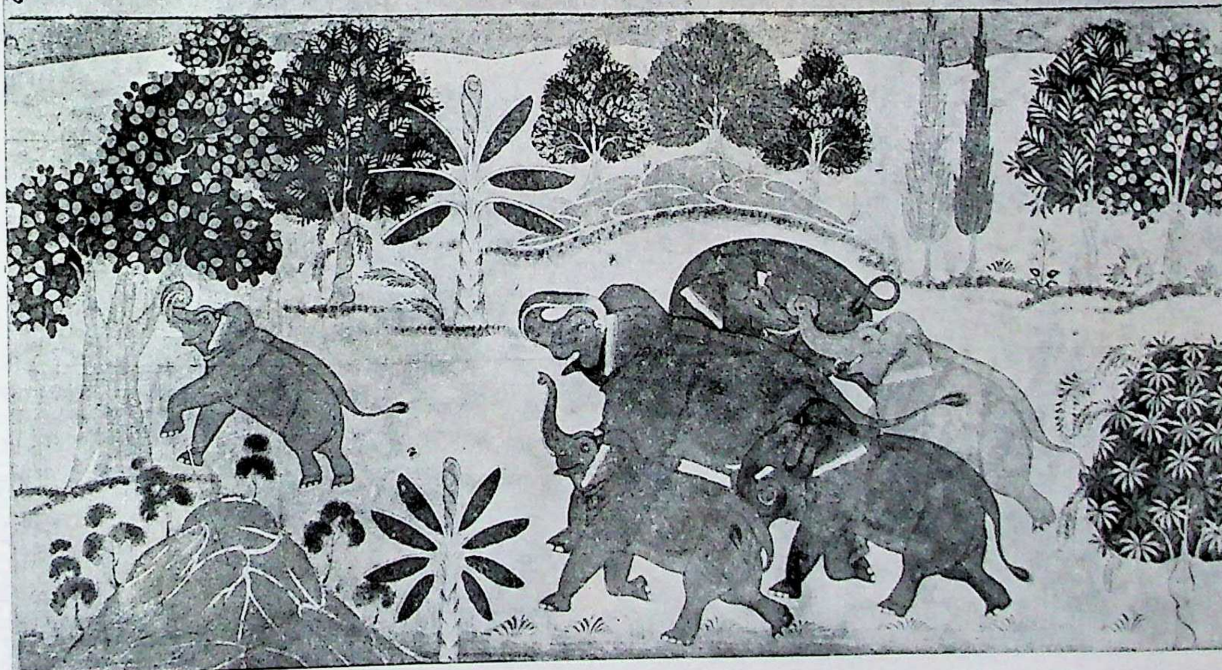


51. दुश्चरित्रा नारी 8"×6"
1745 ई., चि. गंगाराम, केलवा
कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर



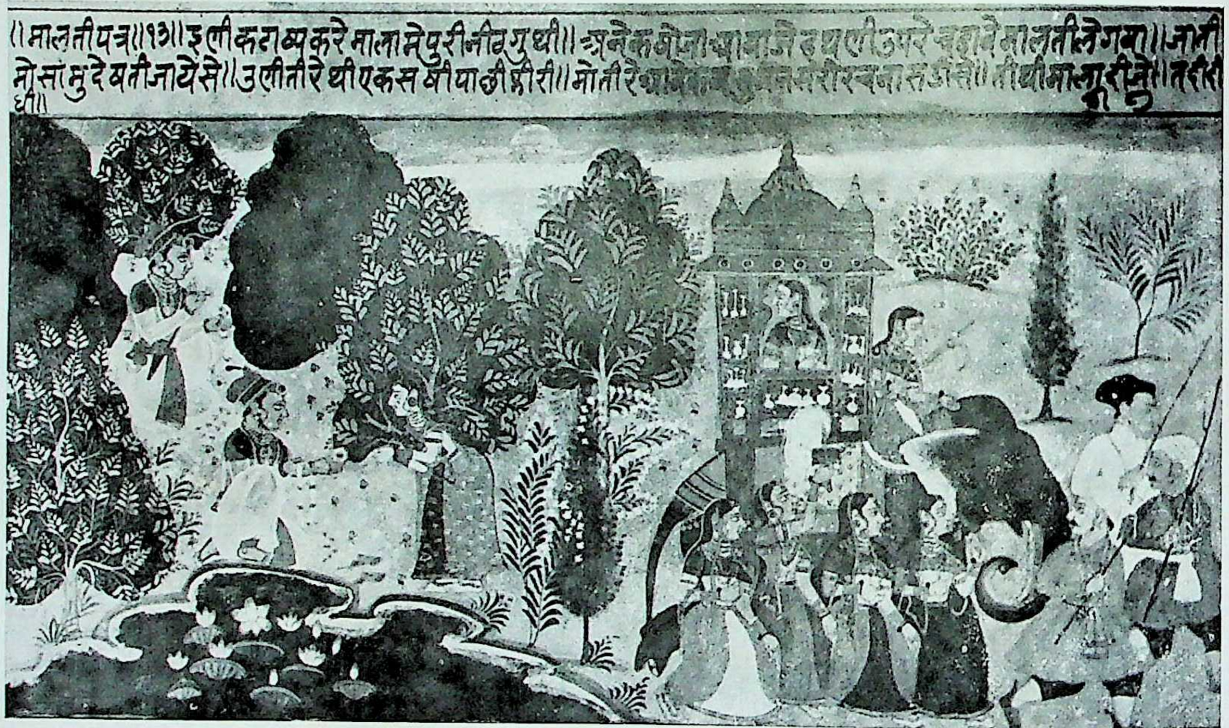


52अ. संहार 8"×5", 1740 ई., दुर्गाशप्तशती, प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान शाखा, उदयपुर



52ब. वन भ्रमण 15"×9", 1750 ई. लगभग, गजेन्द्र मोक्ष, प्रताप संग्रहालय, उदयपुर

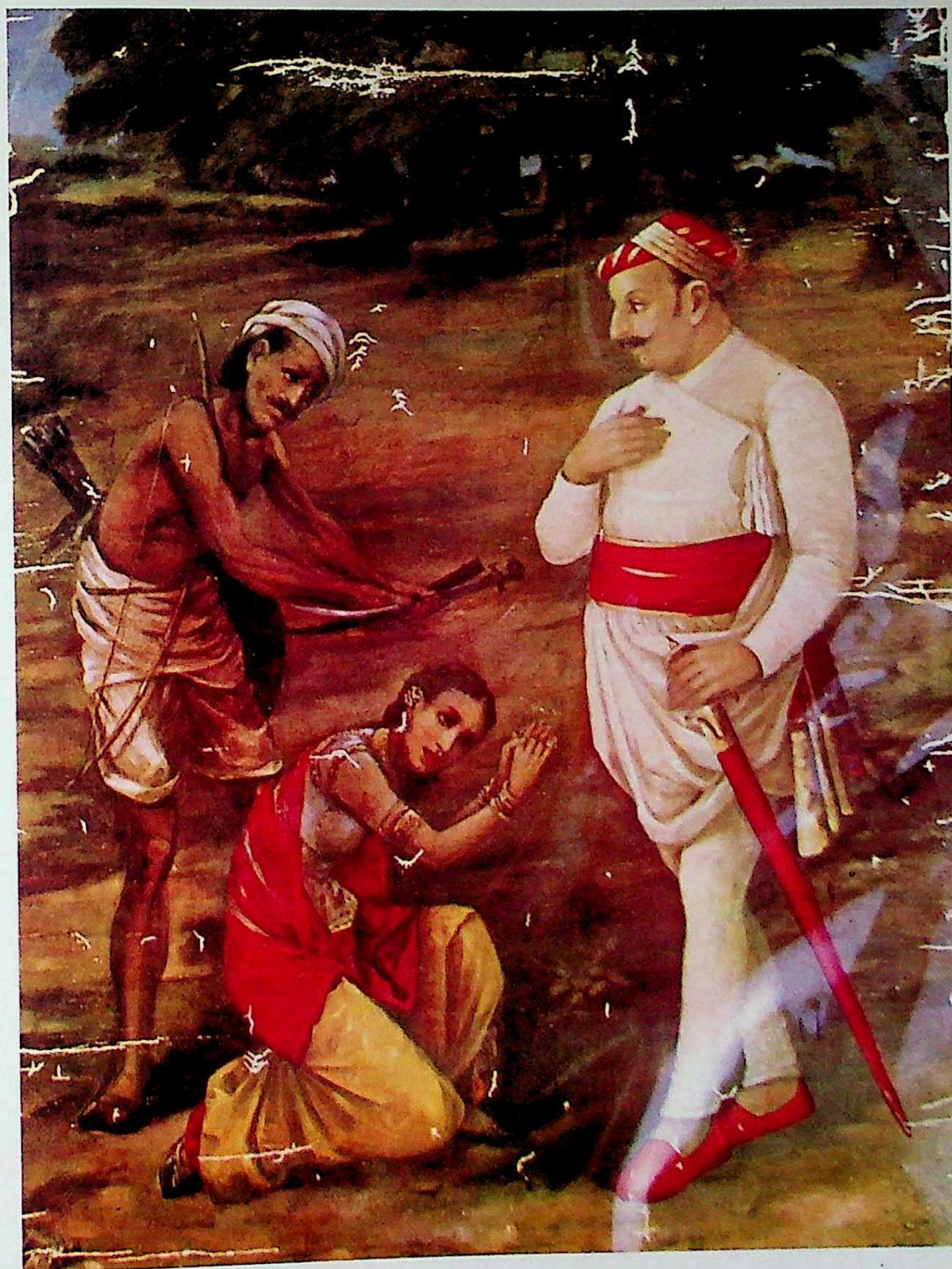
52अ. संदेश 15" × 9"
1750 ई. लगभग, मालती माधव
राजकीय प्रताप संग्रहालय, उदयपुर





54. गोगुन्दा शादी में पधारे 45" × 28"
1753 ई. चि. शिवा, दयाल एवं अलाबगस
राजप्रसाद संग्रहालय, उदयपुर

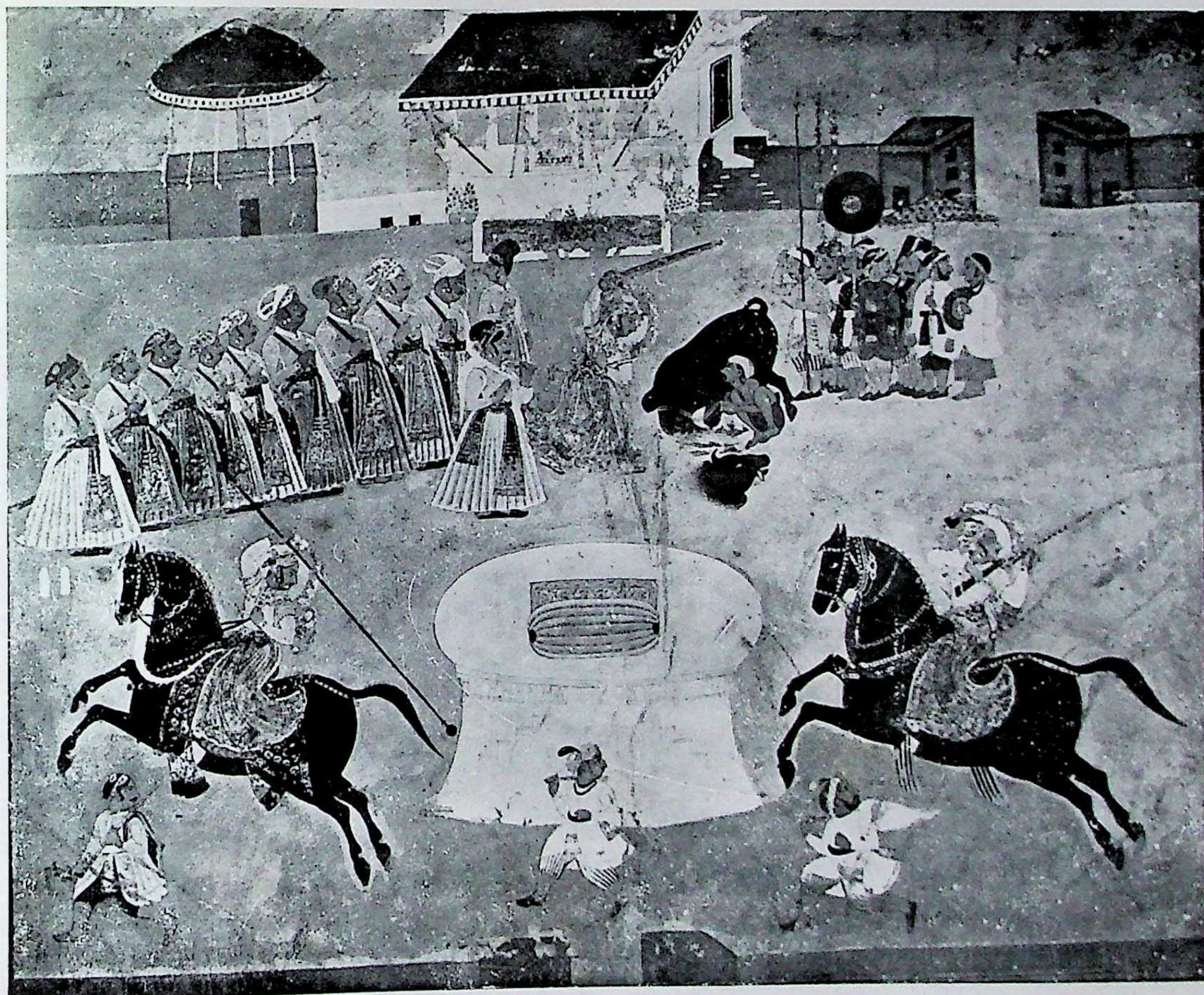


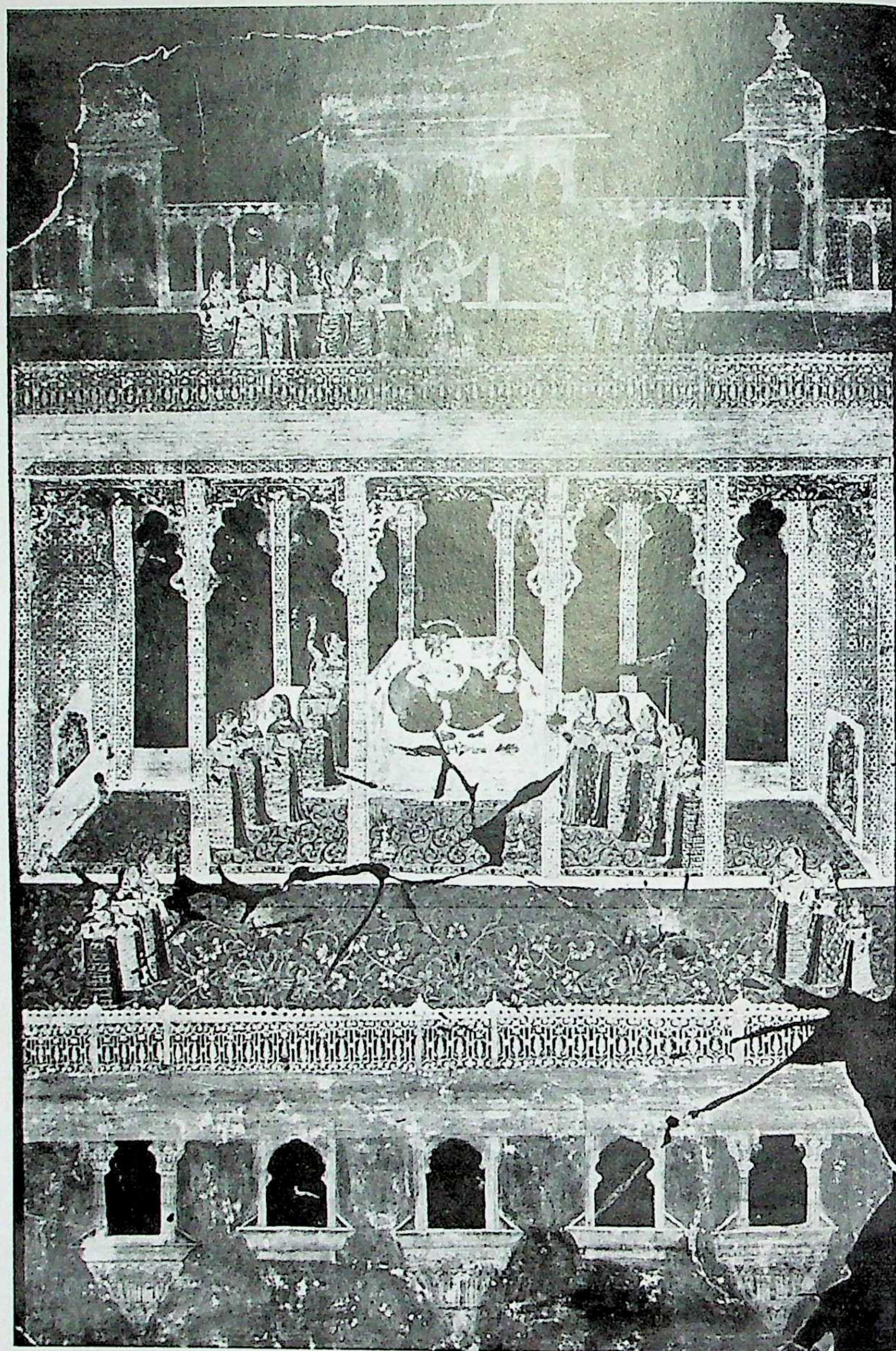


82. क्षमा याचना 30" × 20"
1897 ई. तैलचित्र चि. कुन्दनलाल
हरिशचन्द्र सोनी संग्रह, उदयपुर



55. नवरात्री स्थापना 17" × 14"
1755 ई., चि. शाहजीमीयां
कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर



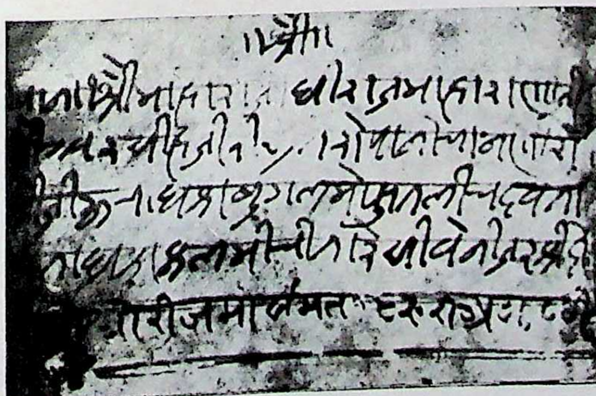


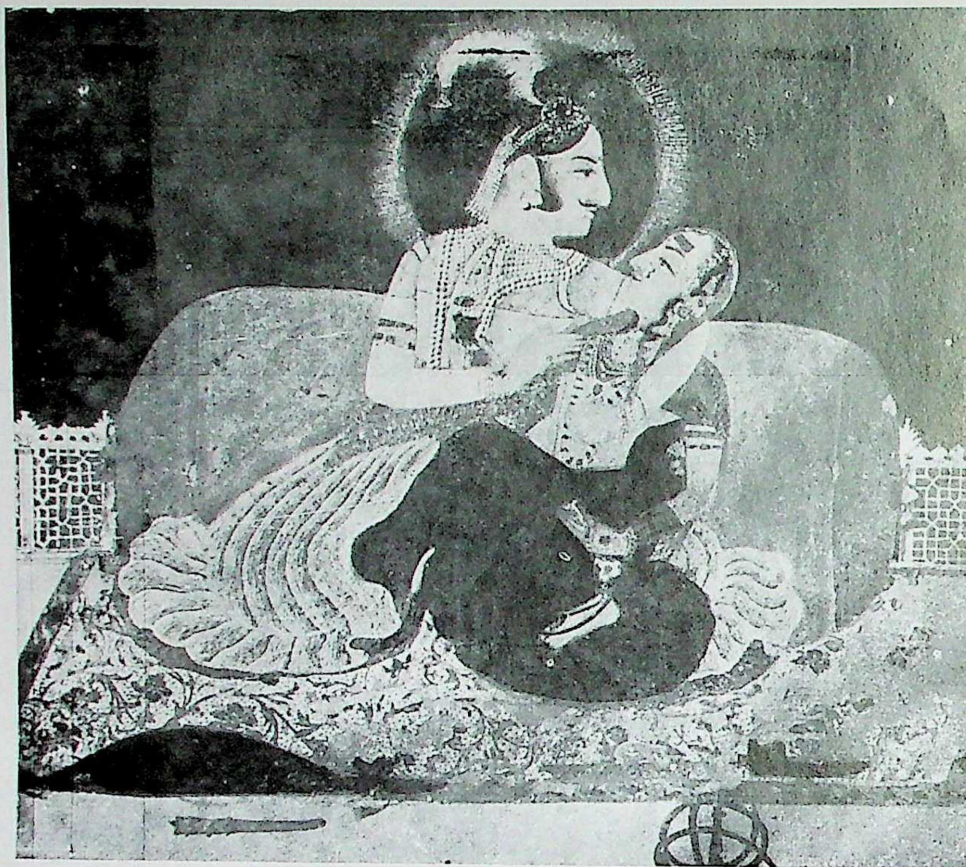
56. श्रीजी चीणीरीनवी छत्री में 15" × 21"
1756 ई., चि. रूगनाथ
कुंवर संग्रामसिह संग्रह, जयपुर

॥श्री॥

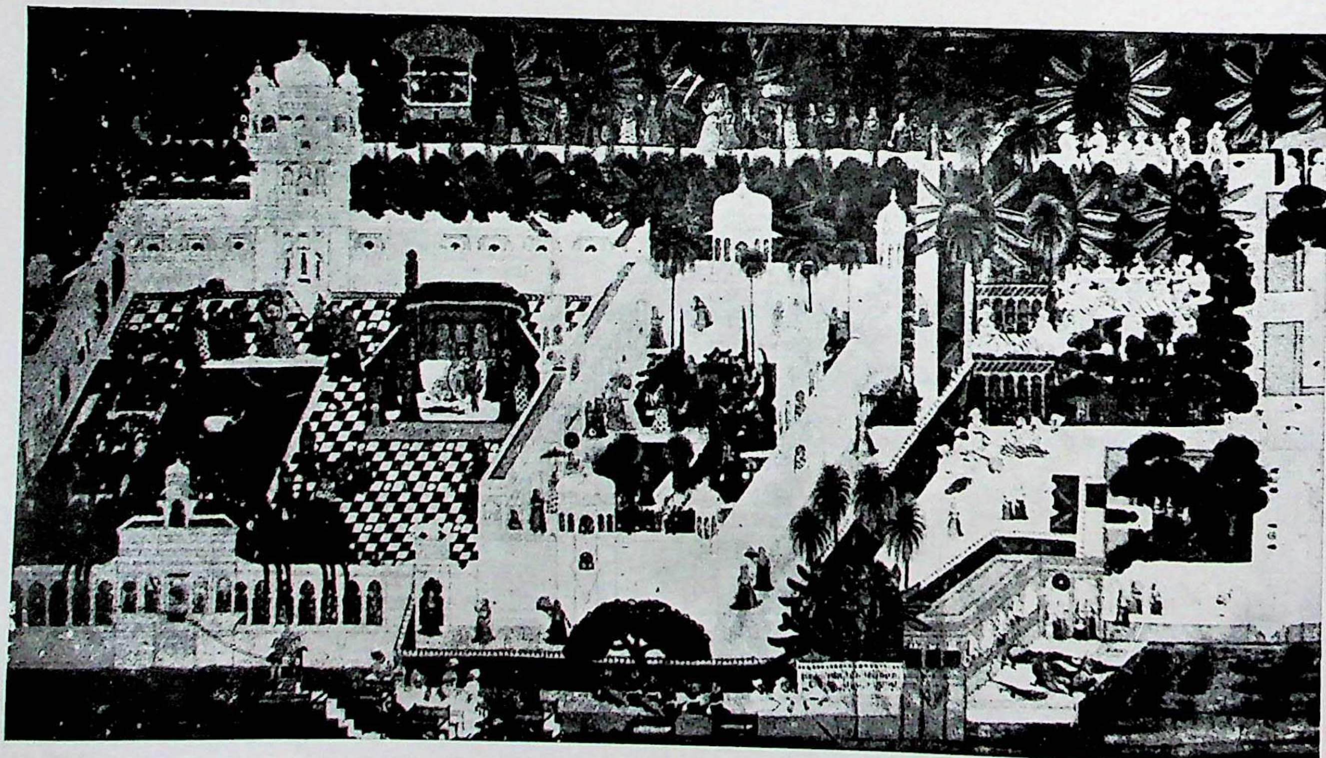


57. महा. अरिसिंह एवं प्रेयसी $5\frac{1}{4}'' \times 7\frac{1}{4}''$
1763 ई., चि. शिवा
पुरुषोत्तम कन्हैयालालसोनी संग्रह, उदयपुर





58. आलिंगन, 7" × 9", 1761 ई, चि. शिवा, पुरुषोत्तम कन्हैयालालसोनी संग्रह, उदयपुर

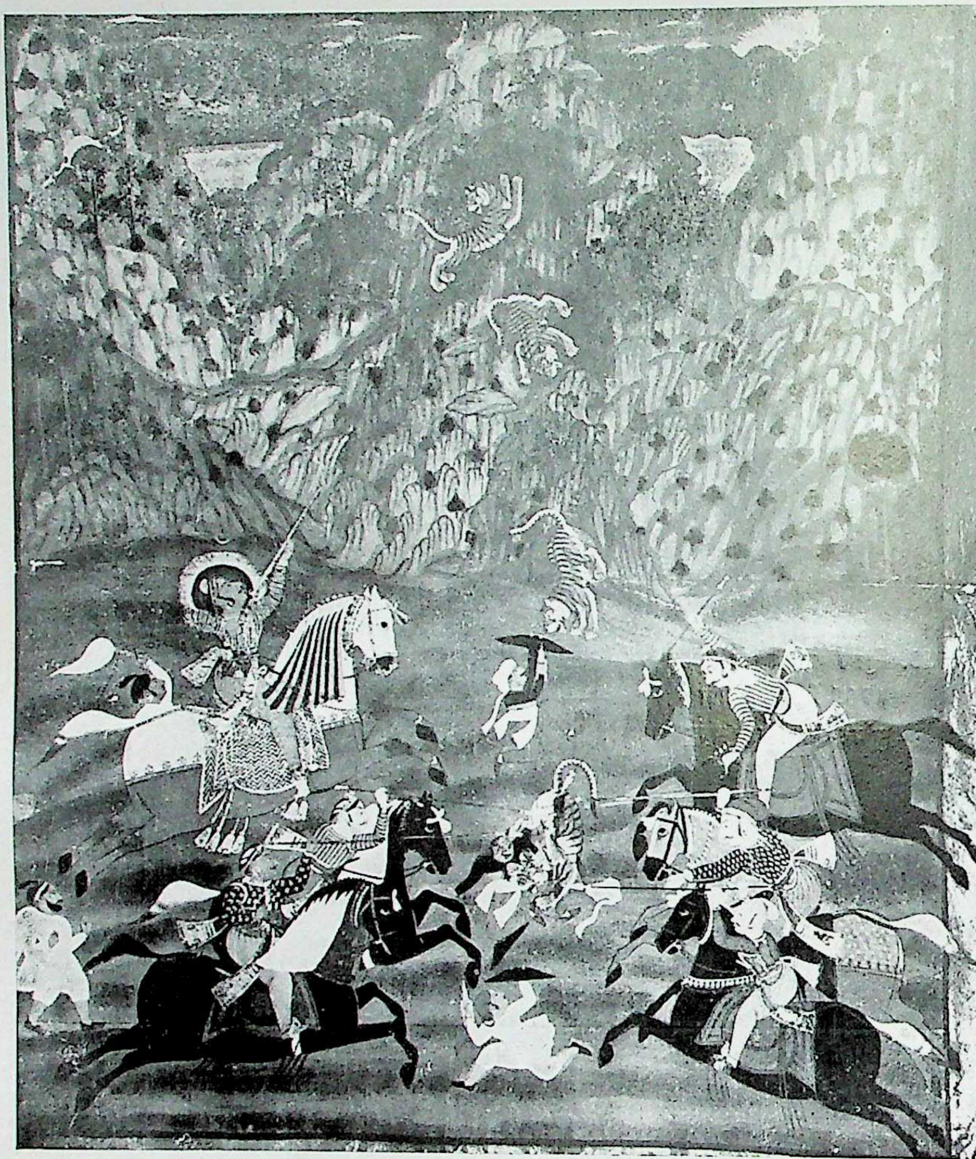


59. महाराणा अरिसिंह जगमंदिर में, 44" × 22", 1769 ई. लगभग, राजप्रसाद संग्रहालय, उदयपुर



60. हिरण का शिकार 8" × 12"
1765 ई., चि. भोपा
कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर

61. हिरणों का आखेट 14" × 21", 1766 ई., चि. जुगरसी, कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर



62. बाघ का शिकार एवं पुष्पिका 21" × 23", 1761 ई., चि. शाहजी, कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर

63. रणवास में होली 6" × 8"
1766 ई., चि. शिवा
कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर





64. घोड़े को प्रशिक्षण 18" × 12"
1766 ई, चि. शिवा
कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर

।घानोछ्वोरीजमालसंमत१८२३राजेगोदज्जु चीत्रायीवारोसीद।



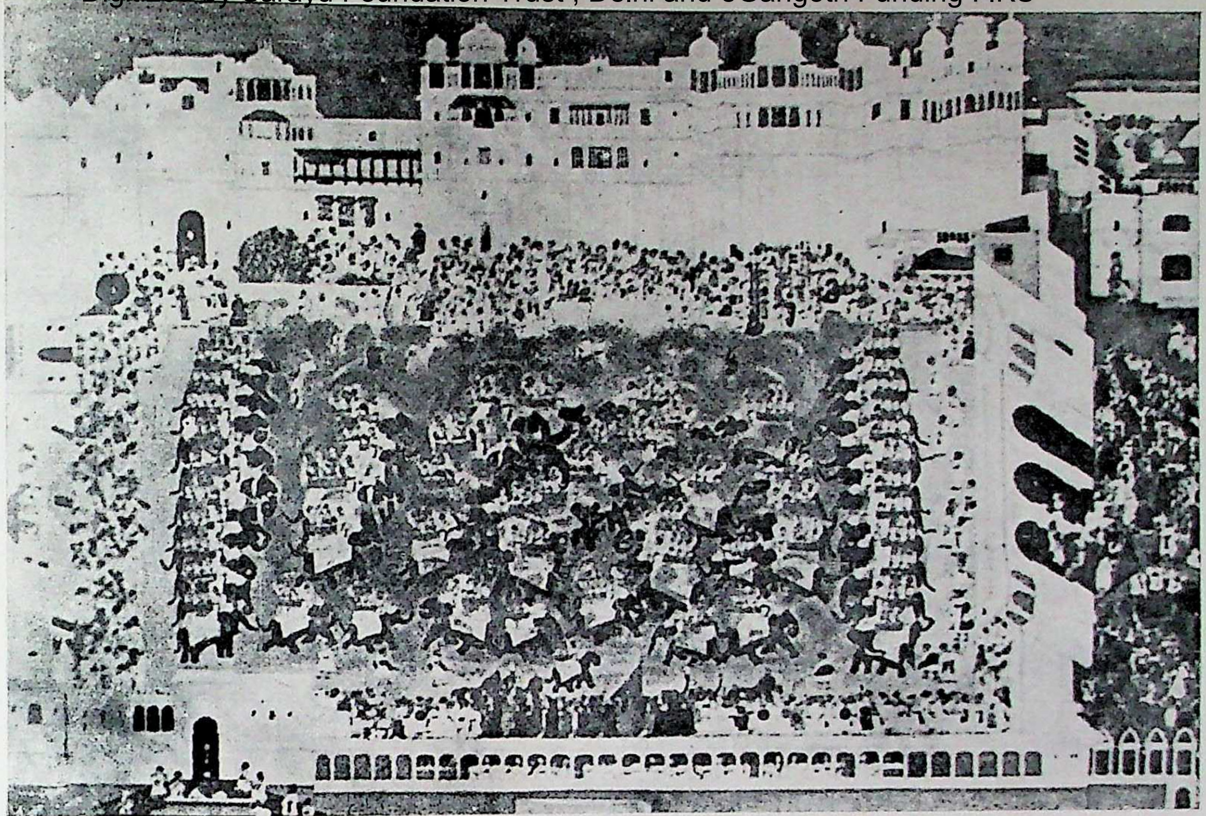
65. स्वर्ण दण्डिका से शिकार 15" × 10", 1766 ई. चि. शिवा, कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर

66. शेर व अजदा का संघर्ष 10" × 8"
1775 ई. लगभग का एक चरबा
दामोदर सोनी संग्रह, उदयपुर

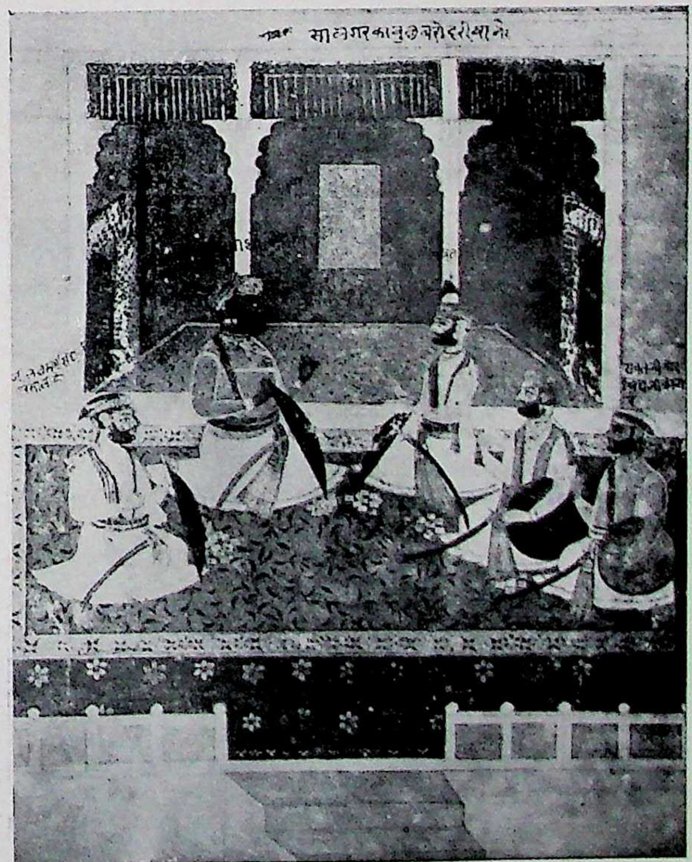




67. हाथी व घोडे का संघर्ष 8"×10½"
1794 ई. चि. ताजू, शाहपुरा
कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर



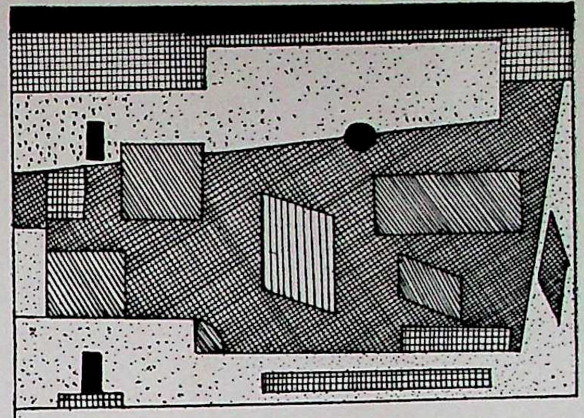
68. हाथियों का फाग 45"×28"
1750 ई. लगभग,
राजप्रसाद संग्रहालय, उदयपुर

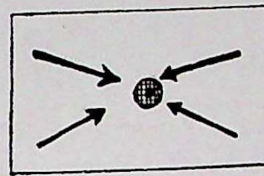


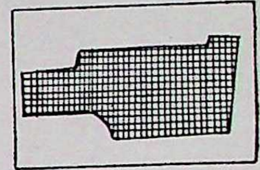
69. सालगिरह की प्रातः 9"×15"
1850 ई. शाहपुरा
श्री रामचरण प्रा. वि. संग्रहालय, जयपुर

70. रावत राघवदास 6"×9"
1778 ई., चि. कंवला, देवगढ़
कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर







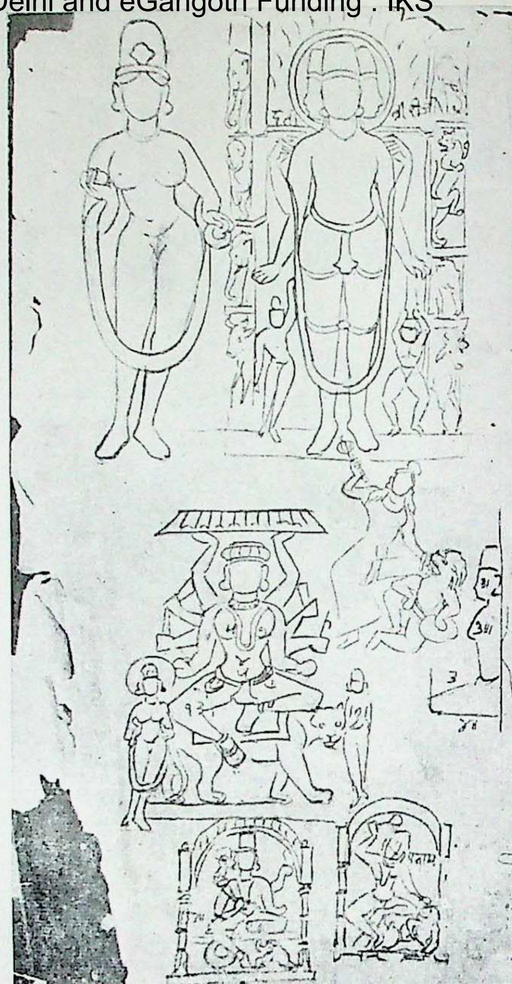


71. म. भीमसिंहजी एवं राजकुमार 20"×15"
1780 ई. लगभग
कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर

फलक में आकार संयोजन की कलात्मक पृष्ठभूमि

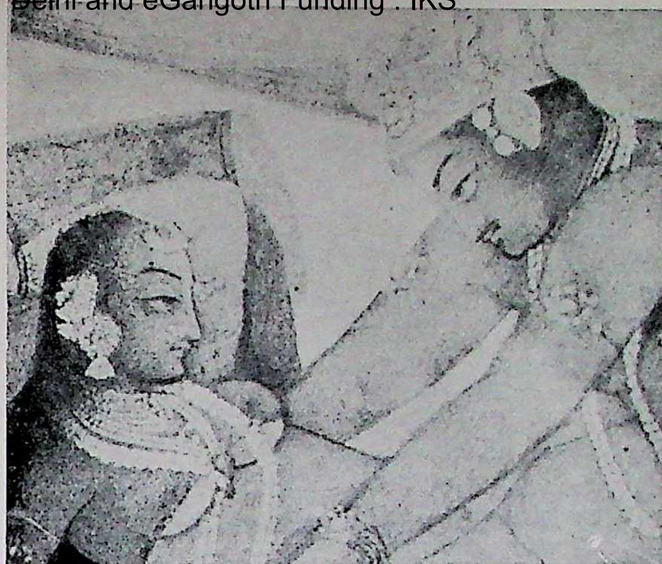


चित्रकार ऊंकारजी



72. रेखांकन 'कसरे' 8"×6"
1800 ई. लगभग, चि. उंकारजी
गुलाबजी शर्मा नाथद्वारा सौजन्य से

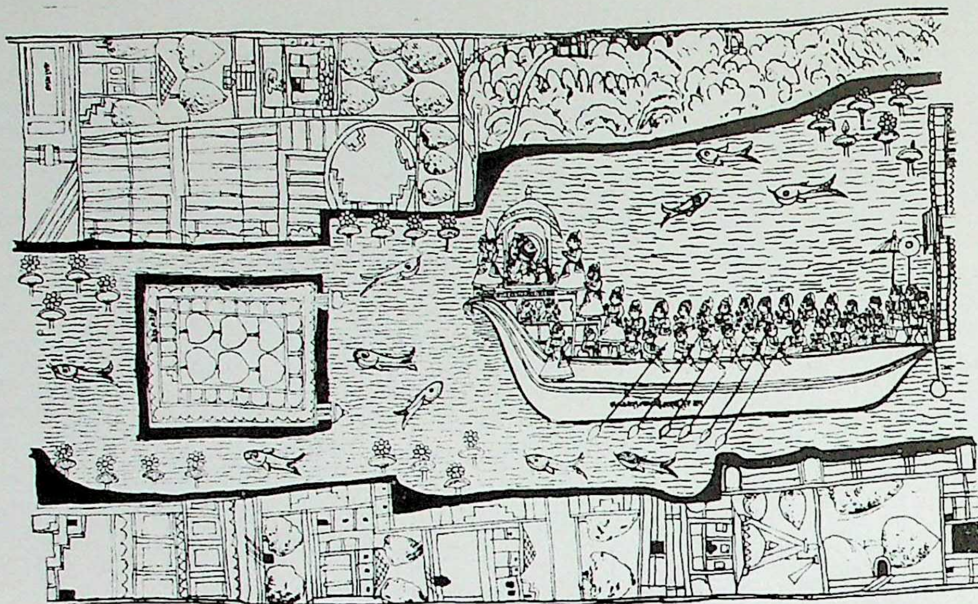
73. सूअर का शिकार 15"×10"
1887 ई., अपूर्ण चित्र, देवगढ़
कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर



74. रति क्रीड़ा 6"×9"
1810 ई. लगभग, चि. चोखा
कुंवर संग्रामसिंह संग्रह, जयपुर

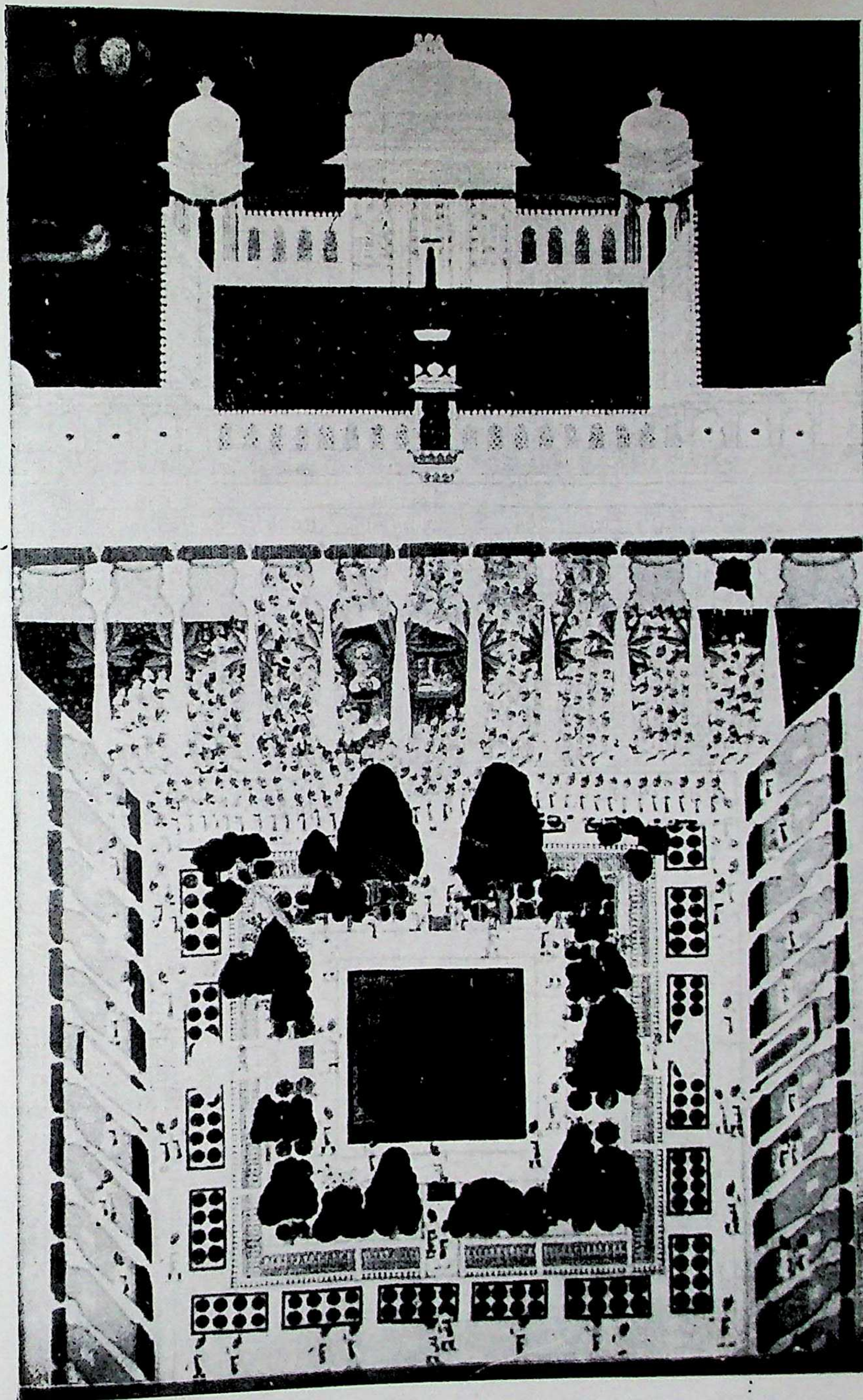


75. शिकार के पश्चात् गोठ, 1810 ई., चि. बगता, देवगढ़, प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय, बम्बई



76. पिछोला झील 1’ × 70’, 1830 ई., विज्ञप्ति पत्र, अगरचन्द नाहटा संग्रह, बीकानेर सोजन्य से

77. गणगोर की सवारी 20” × 15”, 1815 ई., चि. वग्ता देवगढ़, कुंवर संग्रामसिह संग्रह, जयपुर



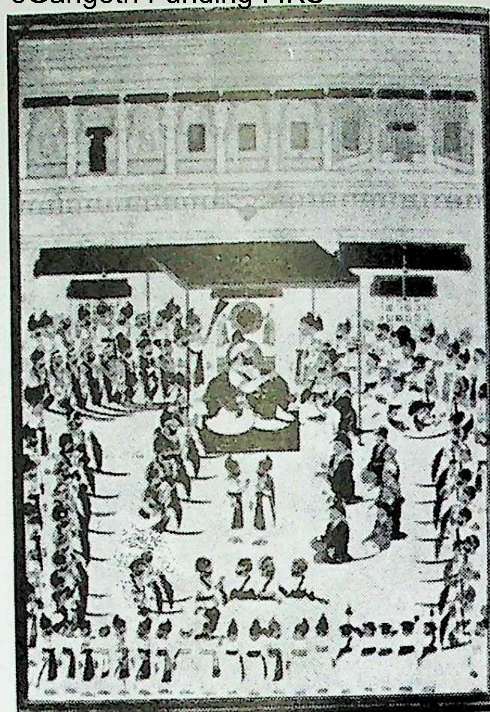
78. भागवत श्रवण 53"×35", 1830 ई., राजप्रसाद संग्रहालय, उदयपुर



चि. ताराचन्द 1851 ई.

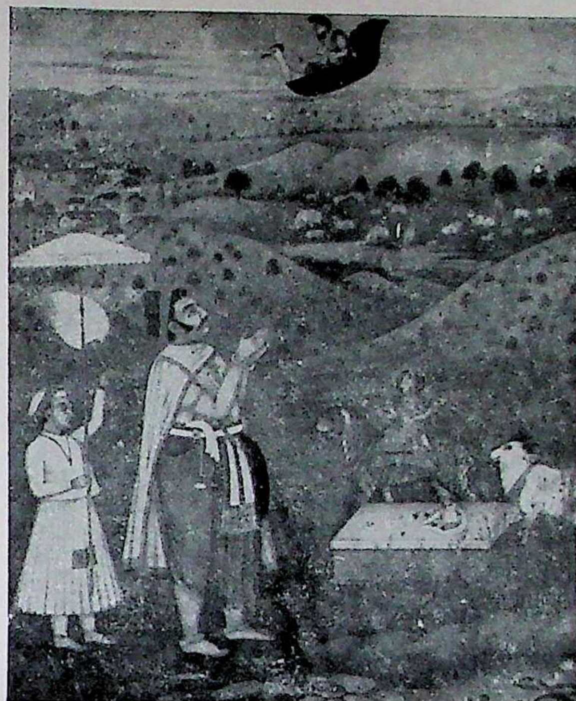


79. चि. परसराम गौड़



म. भीमसिंह के दरबार में कर्नल टॉड
राजप्रासाद संग्रहालय, उदयपुर

80. घोड़ों पर फाग खेलते हुए 45" × 25", 1850 ई. लगभग, चि. तारा, परसराम एवं शिवलाल, राजप्रासाद संग्रहालय, उदयपुर



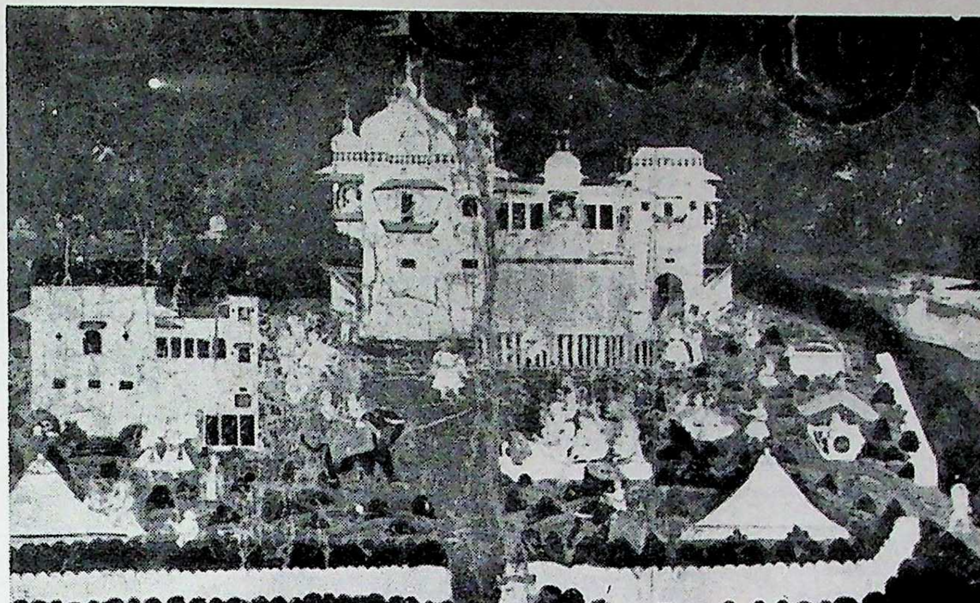
81. बाप्पा को हरित ऋषि का प्रसाद 30" × 22"
1925 ई. लगभग, चि. पन्नालाल गौड़
राजप्रासाद संग्रहालय, उदयपुर



82. भालू का शिकार 21" × 16", 1890 ई. लगभग, राजप्रासाद संग्रहालय, उदयपुर

83. मेवाड़ नेरेशों के व्यक्ति चित्र 14" × $17\frac{1}{2}$"
1900 ई. लगभग, चि. पन्नालाल गौड़
रूलर्स ग्राफ इण्डिया पुस्तक के सोजन्य से

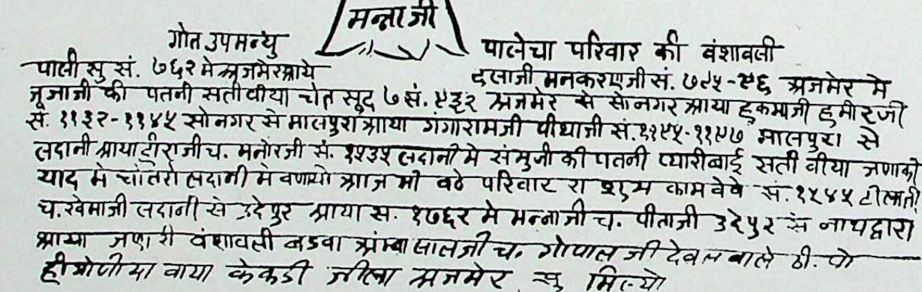




84. शाही सवारी (विस्तारीय भाग) 5'×6', पिछवाई 1775 ई. लगभग, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली



84अ. गजानन्द चरित्र (पुष्पिका) 8"×6", 1811 ई., चि. नाथू, हरीशसोनी संग्रह, नाथद्वारा, उदयपुर


गोत उपमन्यु पालेचा परिवार की वंशावली
पाली सु सं. ७६२ मे अजमेर आये दलाजी मनकरणजी सं. ७९५-९६ अजमेर मे
नूजाजी की पतनी सती वीया चेत सुद ७ सं. ९३२ अजमेर से सोनगर आया हुकमाजी हमीरजी
सं. ११३२-११४५ सोनगर से मालपुरा आया गंगारामजी पीथाजी सं. ११९५-११९७ मालपुरा से
लदानी आया टीराजी च. मनोरजी सं. १२३१ लदानी मे संमुजी की पतनी प्यारीबाई सती वीया जणाको
याद मे चोंतरो लदानी मे वणयो आज भी वठे परिवार रा धरम काम वेवे सं. १२४५ टीलाजी
च. खेमाजी लदानी से उदेपुर आया सं. १७६२ मे मन्नाजी च. पीताजी ३२५२ से नाथद्वारा
आया जणा री वंशावली बडवा आंबालालजी च. गोपाल जी देवल वाले ठी. पो
हीमोजी या वाया केकडी जीला अजमेर सु मिल्यो

परिशिष्ट 2–वंश वृक्ष, उपमन्यु गौत्र, चि. नवीन पालेचा, नाथद्वारा के सोजन्य से



चि. नारायणजी पालेचा



85. राजा-रानी 5" × 8"
1900 ई., चि. नारायणजी
श्री नरोत्तम शर्मा सोजन्य, नाथद्वारा



86. महाप्रभुजी एवं श्रीनाथजी 8" × 6", 1900 ई., नाथद्वारा, रामगोपाल विजयवर्गीय संग्रह, जयपुर

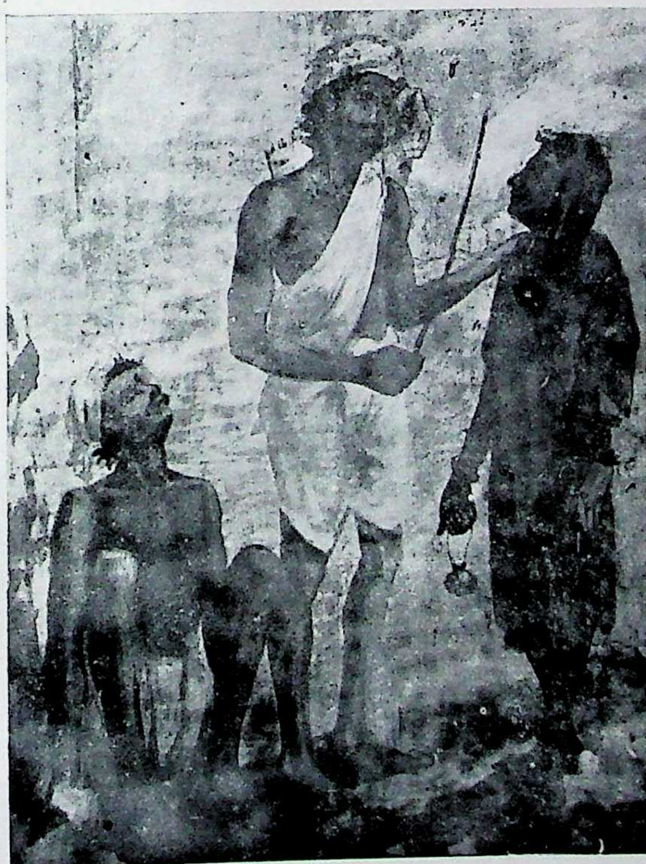


चि. पन्नालाल मेवाड़ा

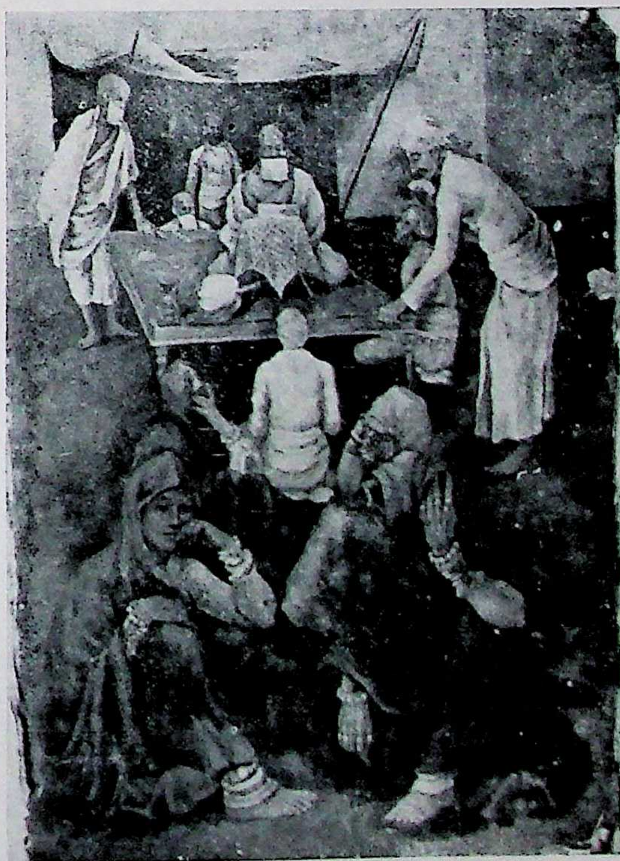
87. रघुवरदासजी महन्त 20" × 15"
1899 ई., चि. पन्नालाल मेवाड़ा
मीठाराम मन्दिर, उदयपुर



चित्रकार कुन्दनलाल



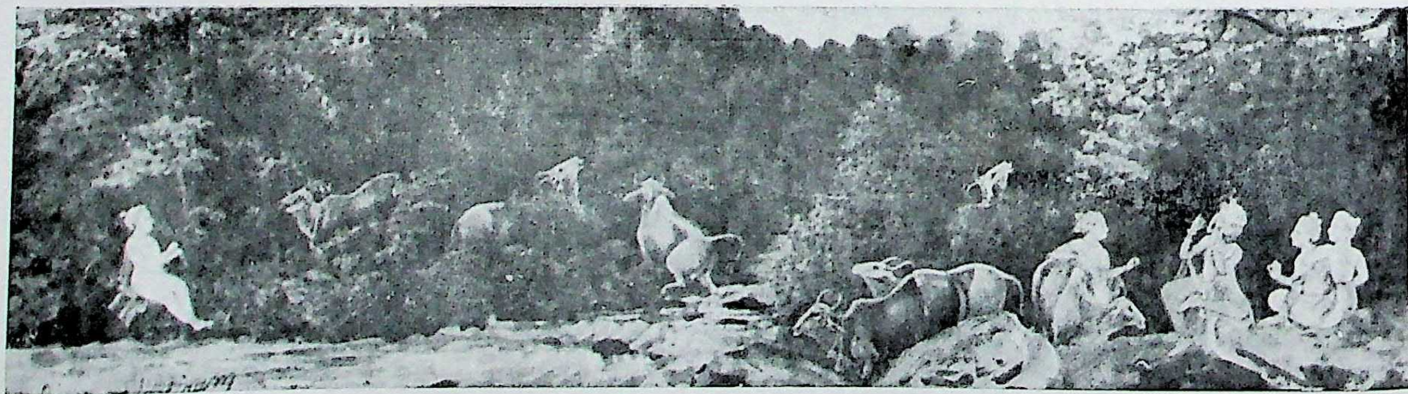
88. ग्रामीण 22" × 30" 1897 ई. कानजी भगवानजी सोजन्य नाथद्वारा



89. जैन श्रावक, 1905 ई. तेलचित्र, हरीशसोनी संग्रह, उदयपुर



89अ. कुम्हारिन बाजार की ओर 22"×28"
1897 ई., चि. कुन्दनलाल
कानजी-भगवानजी सौजन्य, नाथद्वारा



89ब. ग्वालबाल का वनविहार 20"×15", 1920 ई., चि. घासीरामजी, नरेन्द्रसिंह संग्रह, उदयपुर



चि. घासीराम

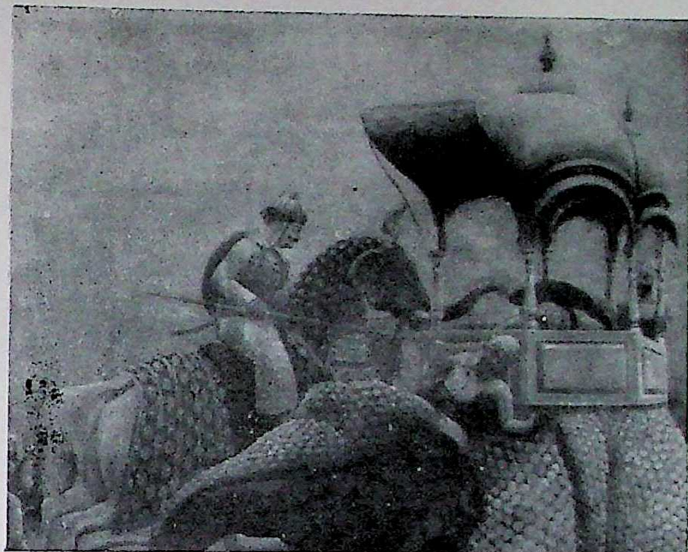
89स. बन्दरों के रेखांकन 12″ × 15″
1920 ई., चि. घासीराम
प्रेमनरेन्द्रशर्मा सौजन्य, नाथद्वारा



90. राणा प्रताप 22" × 30"
1930 ई., चि. प्रेमनरेन्द्र शर्मा
हिम्मतसिंह स्वरूपरिया सौजन्य, उदयपुर

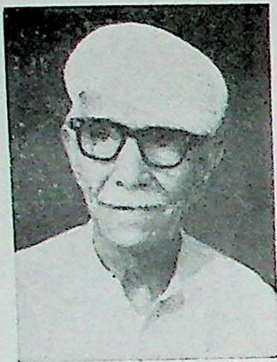


चि. प्रेम नरेन्द्र शर्मा



91. मानसिंह पर प्रहार 30" × 45"
1940 ई., चि. रघुनाथजी
राजप्रासाद संग्रहालय, उदयपुर

92. हल्दीघाटी 84" × 51", 1945 ई., चि. चतुर्भुजजी, राजप्रासाद संग्रहालय, उदयपुर



चि. नरोत्तम नारायण शर्मा



चि. लक्ष्मीलाल पालेचा



92अ. दीपावली पूजन 20"×28"
1945 ई, चि. लक्ष्मीलाल
श्याम सुन्दर दास ब्रजवासी, बम्बई



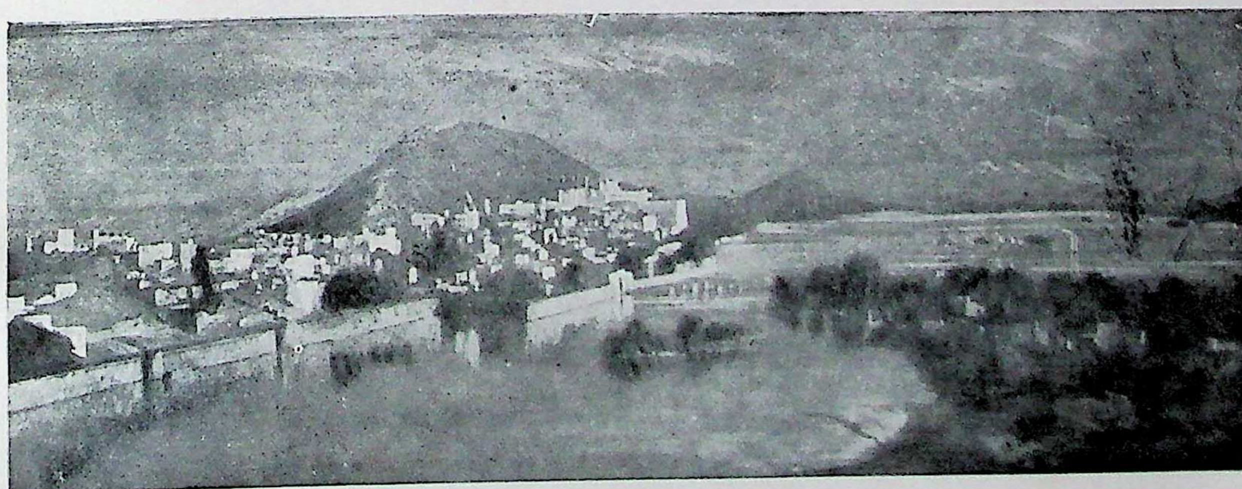
92ब. मनोहर गोपाल 28"×22"
1942 ई, चि. नरोत्तम शर्मा
हरनारायण एण्ड संस सौजन्य, जोधपुर



चि. नन्दलाल शर्मा



93अ आक्रोश 9"×13"
1940 ई., चि. नन्दलाल शर्मा
सुभाष भारद्वाज सौजन्य, उदयपुर



93ब. झीलों की नगरी उदयपुर 27"×8½", 1945 ई., चि. नन्दलाल शर्मा, सुभाष भारद्वाज सौजन्य, उदयपुर



94. अभिसारिका 15" × 22"
1947 ई. लगभग, चि. भंवर शर्मा
निजी सौजन्य से, नाथद्वारा

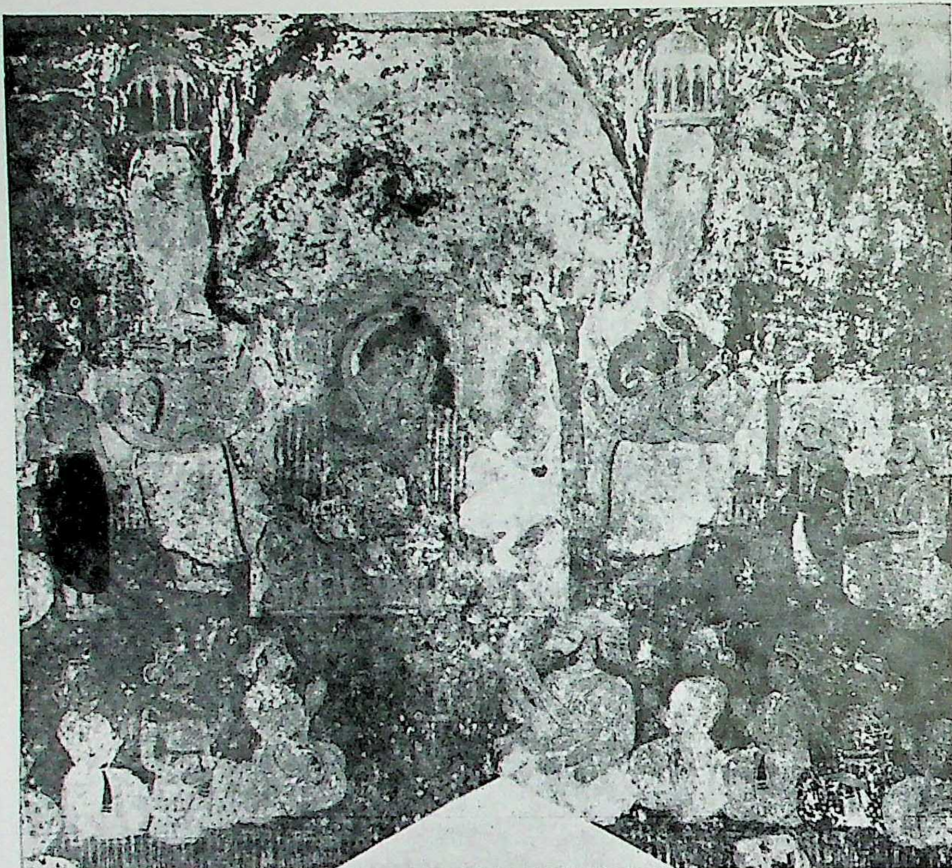
94अ. बरात 27" × 8"
1947 ई. लगभग, चि. गोर्वधन जोशी
बगदाद एयरपोर्ट सौजन्य, काहिरो



भित्ति-चित्रावशेष

95. आकाश चारिकाएँ
1700 ई. लगभग
सर्वऋतु विलास, उदयपुर



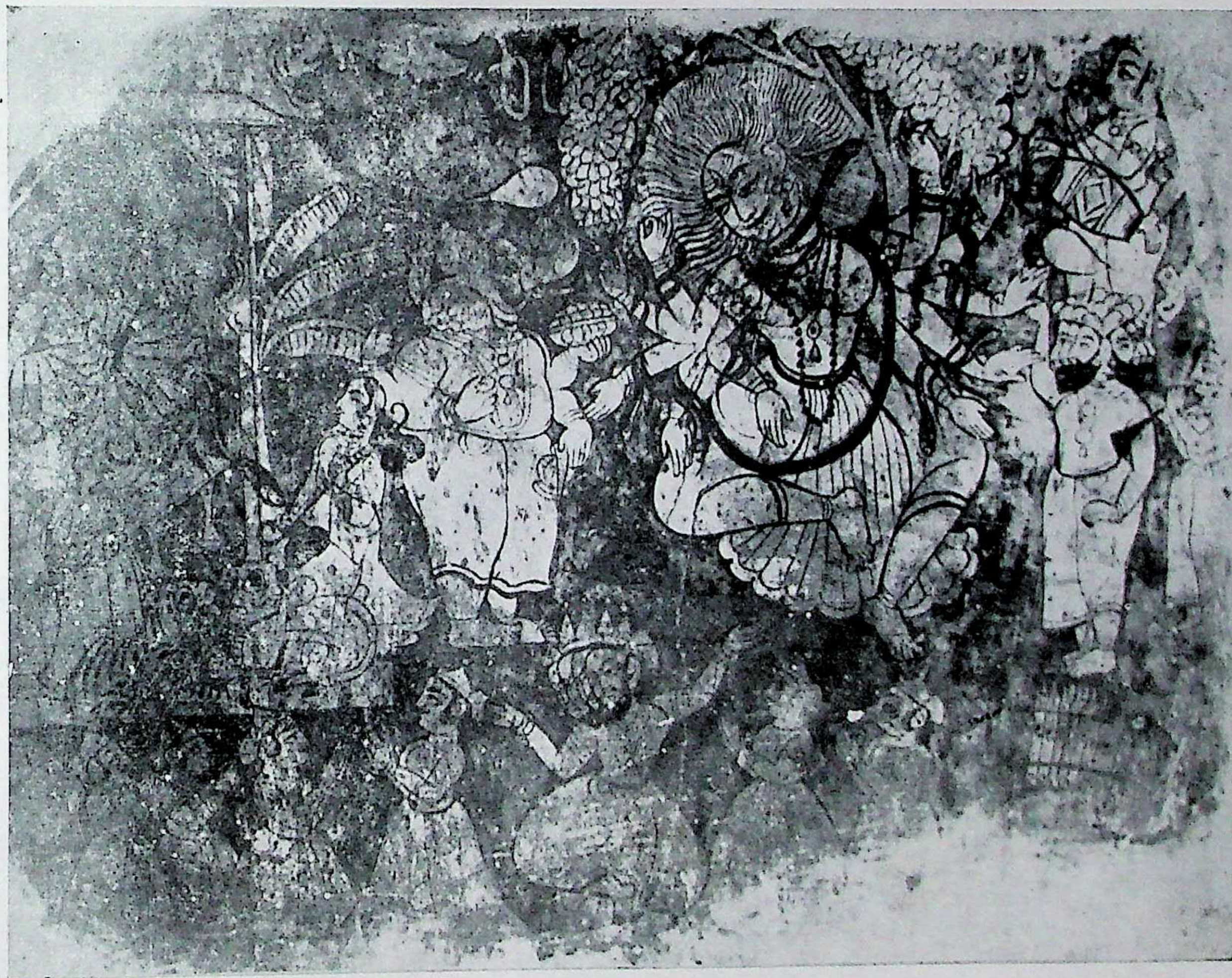


96. शिव परिवार, 1725 ई. लगभग, गुसाई आश्रम एकलिंग मन्दिर, कैलाशपुरी



96अ. एकलिंग सवारी, 1750 ई. लगभग, गुसाई आश्रम एकलिंग मन्दिर, कैलाशपुरी

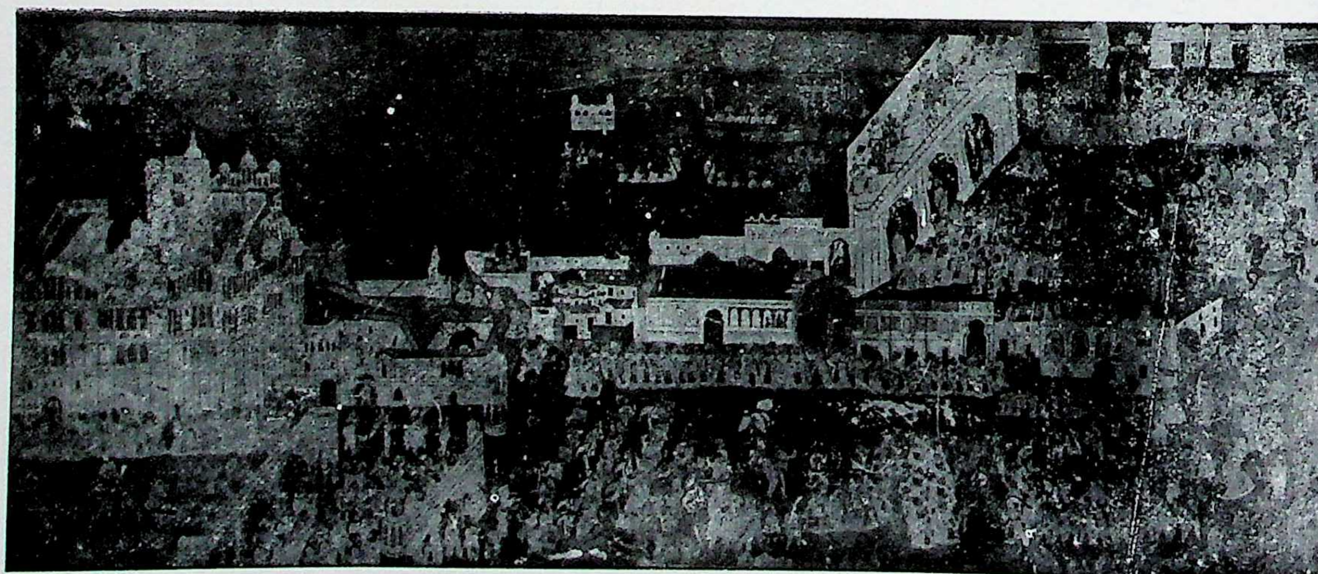
97. भवानी के दरबार में ताण्डव
1750 ई. लगभग
अम्बामाता मन्दिर, उदयपुर





98अ. महाराणा जगत सिंह द्वि. (व्यक्ति चित्र)
1753 ई. लगभग
कर्ण निवास राजप्रासाद, उदयपुर

98ब. गणगौर की सवारी
1850 ई. लगभग
कृष्णा निवास राजप्रासाद, उदयपुर





99. गणेश एवं रिद्धि सिद्धि
1800 ई. लगभग
जनानी ड्योढी, राजप्रासाद, उदयपुर

100. पृथ्वीराज एवं गौरी
1865 ई. लगभग
वरदिया निवास, सलूम्बर



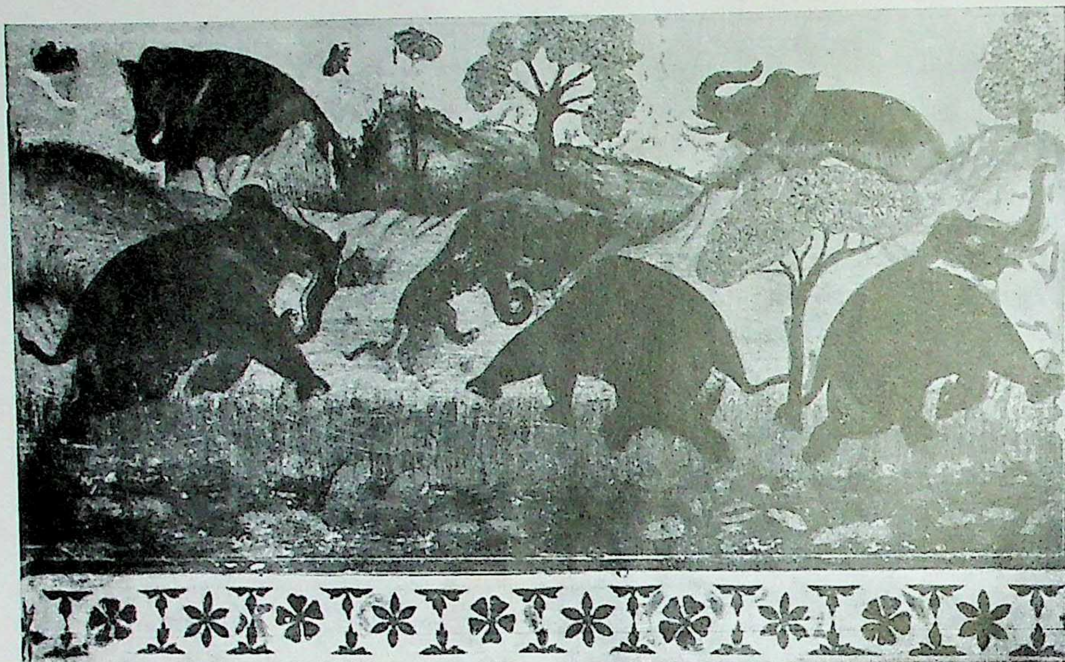
101. पाबूजी की कथा
1750 ई. लगभग
धोबियों का देवरा, दिलखुशहाल बाग, शाहपुरा



102. युद्ध दृश्य
1868 ई., इजारे
मालाजी मंदिर गोर्वधन कुण्ड, नाथद्वारा



103. मृगावती
1850 ई. लगभग
महुआ वाला अखाड़ा, नाथद्वारा



104. सिंह एवं हाथियों का संघर्ष, 1850 ई. लगभग, कुम्भलगढ़ दुर्ग के ईजारों से



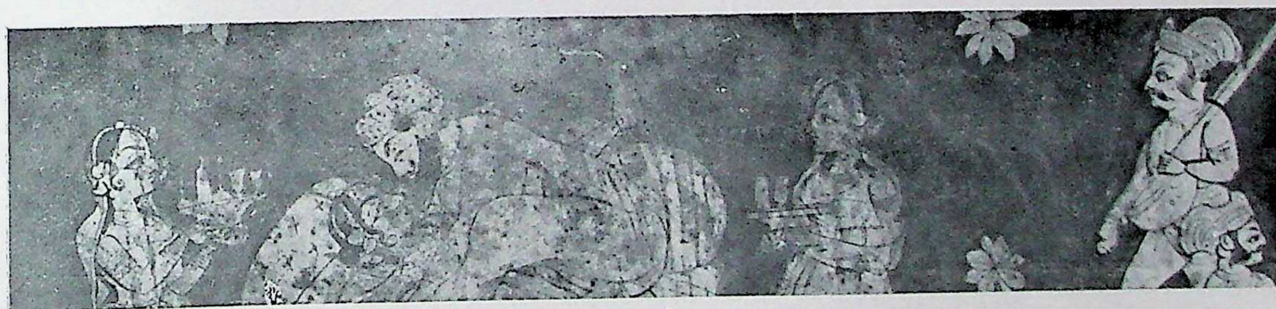
105. गोवंधन धारण, 1875 ई. लगभग, शम्भूलालजी दोषी निवास, सलम्बर

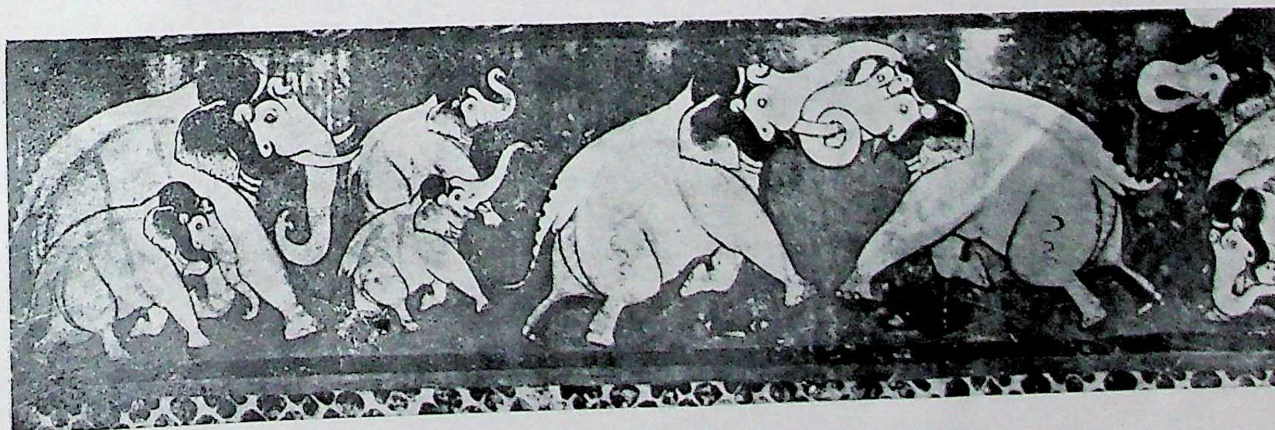




106. आरती एवं आलेख
1879 ई., चि. चतुर्भुज पालेचा
बांकियाजी का देवरा, सनवाड़

107अ. रति उत्सव
1875 ई. लगभग
कमरलालजी कालाजी जडिया निवास, उदयपुर



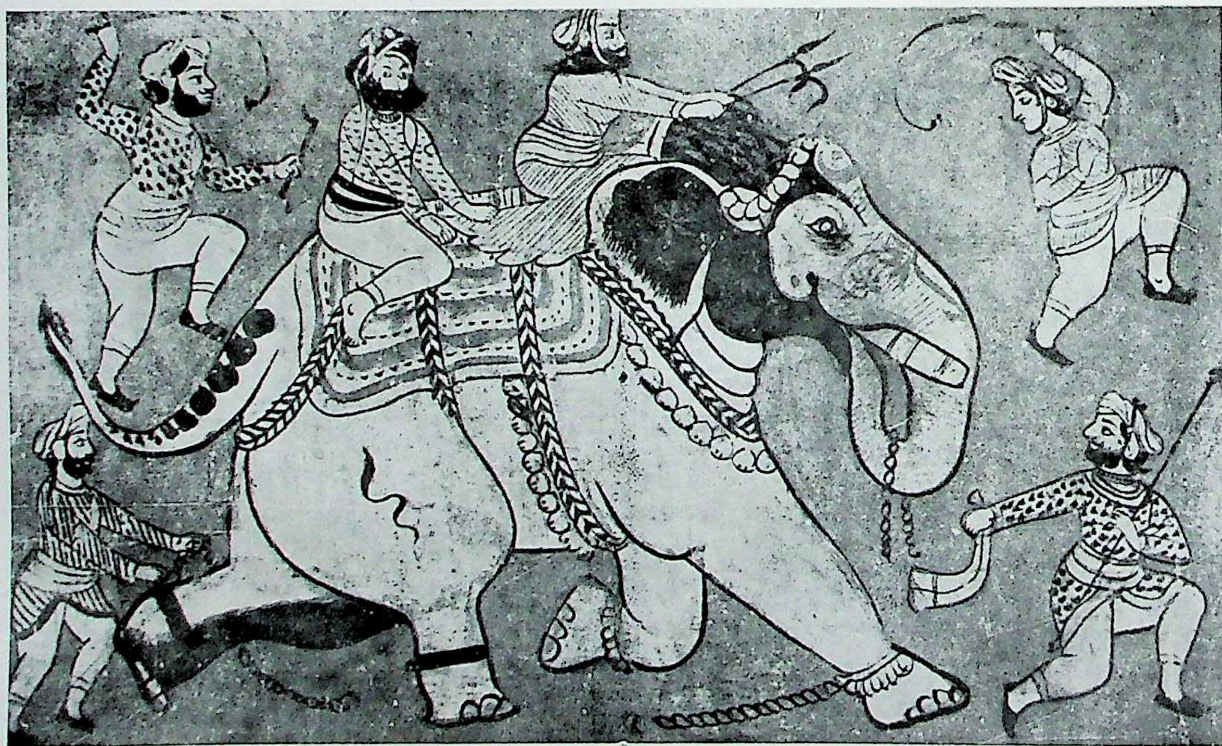


107ब. हाथियों का परिवार, 1850 ई. लगभग, बापना हवेली, उदयपुर के ईजारों से



108अ. सूअर का शिकार
1850 ई. लगभग
बारहट हवेली, उदयपुर

108ब. पागल हाथी
1850 ई. लगभग
बारहट हवेली, उदयपुर





109अ. ढोला मारू, 1875 ई. लगभग, सिघवी हवेली, गंगापुर





109ब. राजा रानी
1800 ई. लगभग,
सिघवी हवेली, गंगापुर



110. आलस्य कन्या, 1850 ई. लगभग, बापना हवेली, उदयपुर



अनुसंधान, शिक्षण एवं चित्रांकन के क्षेत्र में उदयपुर के चित्रकार घराने में जन्मे डा. राधाकृष्ण वशिष्ठ राजस्थान के जाने माने लेखक एवं चित्रकार हैं। राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से 1966 ई. में चित्रकला में एम. ए. प्रथम श्रेणी में सफलता प्राप्त करने वाले राजस्थान के प्रथम अध्येता हैं जिन्हें आगरा विश्वविद्यालय द्वारा "मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा" शोध पर 1975 ई. में पी.एच.डी. की उपाधि प्रदान की गई।

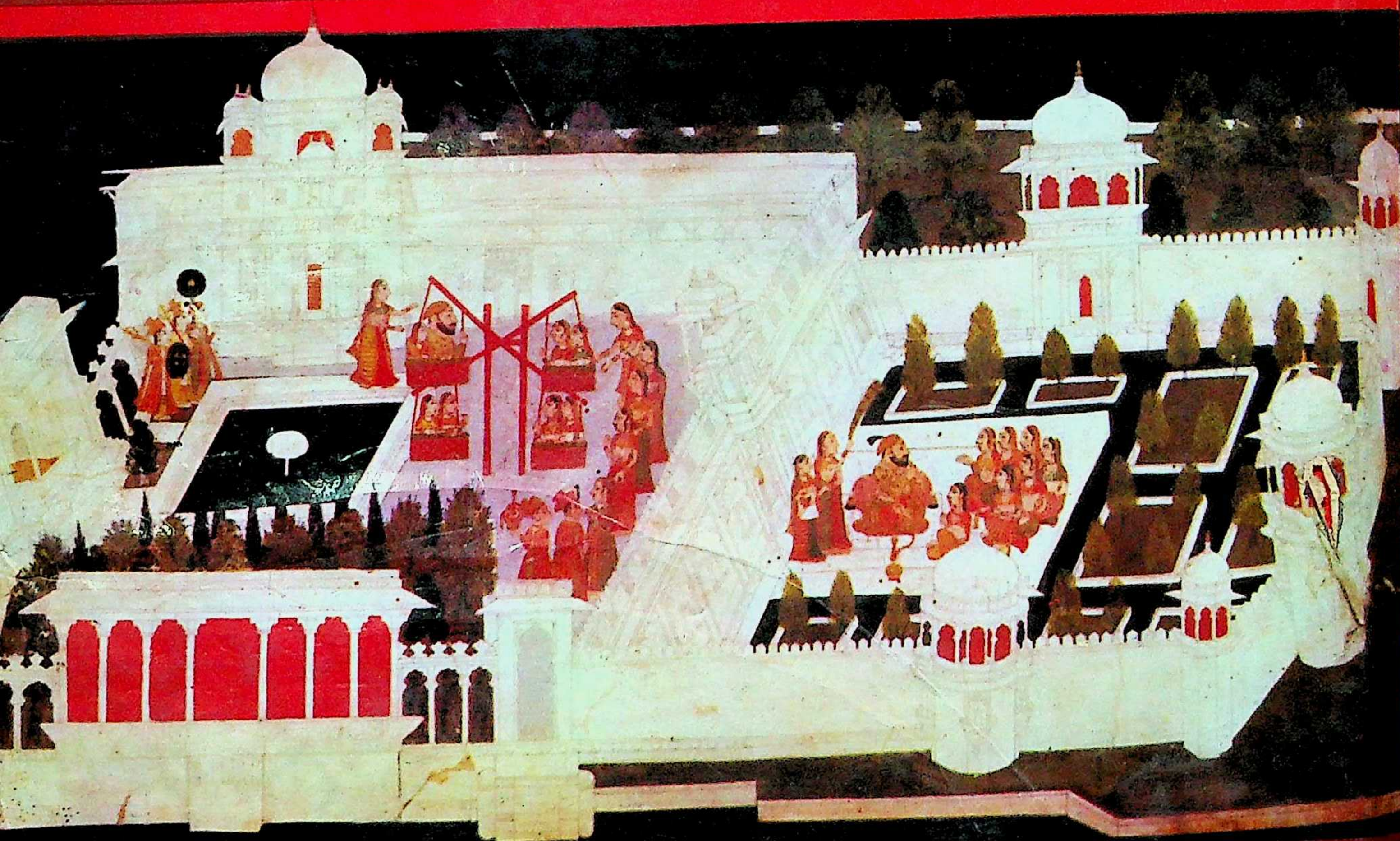
पिछले दो दशकों से उच्चस्तरीय विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आपकी शताधिक शोध रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। कला अध्यापन के साथ ही आपने अखिल भारतीय ललित कला सेमीनार, राजस्थान हिस्ट्री कॉन्फ्रेंस, आल इण्डिया ओरियण्टल कॉन्फ्रेंस, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् आदि में अपने शोध पत्रों से तिथियुक्त आलेखों व अज्ञात चित्रकारों को प्रकाश में लाने के महत्वपूर्ण कार्य किये हैं।

कला समीक्षक के साथ ही आप सृजनशील चित्रकार हैं। कला शिक्षक पुरस्कार 67, तूलिका पुरस्कार 79 व 81, प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट पुरस्कार 80 से आप पुरस्कृत किये जा चुके हैं। राष्ट्रीय एवं राज्यस्तरीय कला संस्थाओं एवं समूहों के भी सक्रिय सदस्य हैं।

सम्प्रति राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के चित्रकला विभाग में प्राध्यापक एवं स्थानीय विभागाध्यक्ष हैं, जहाँ कई शोध छात्र आपके शोध निर्देशन से लाभान्वित हो रहे हैं। आप "ए स्टेडीज ऑफ द इन्सेप्सन ऑफ मॉडर्न पेन्टिंग इन राजस्थान" पर डी. लिट शोध में कार्यरत हैं। आपका अन्य ग्रन्थ "आर्ट एण्ड आर्टिस्टस ऑफ मेवाड़" निकट भविष्य में प्रकाशित हो रहा है।

□

मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा



डा॰ आर॰ के॰ वशिष्ठ